पुस्तक-वार्ता

71 ■ वर्धा, जनवरी-फरवरी, 2018

संरक्षक संपादक
गिरीश्वर मिश्र (कुलपति)

संपादक
अशोक मिश्र

सह-संपादक
अमित कुमार विश्वास

प्रकाशक
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
Website: www.hindivishwa.org

संपादकीय संपर्क
संपादक : पुस्तक-वार्ता
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
मो. : संपा. 7888048765, सह-संपा. 9970244359
ई-मेल : amitbishwas2004@gmail.com

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं विश्वविद्यालय की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से विश्वविद्यालय या संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायक्षेत्र वर्धा (महाराष्ट्र)।

एक अंक : रु. 20/-
वार्षिक सदस्यता : रु. 120/- (व्यक्तिगत)
: रु. 180/- (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)
(नोट : केवल बैंक ड्राफ्ट स्वीकार किए जाएँगे। कृपया मनीऑर्डर एवं चेक न भेजें।)

किसी भी राष्ट्रीयकृत बैंक का ड्राफ्ट महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के नाम देय होगा और उसे निम्नलिखित पते पर भेजने की कृपा करें-
प्रकाशन प्रभारी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
फोन : 07152-232943

PUSTAK-VARTA
A Bimonthly journal of Book Reviews in Hindi published by Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Post - Hindi Vishwavidyalaya, Gandhi Hills, Wardha-442001 (Maharashtra)

मुद्रण : क्विक ऑफसेट, दिल्ली - 110032

38

इस बार

जयशंकर प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में संस्कृति-चिंतन अत्यंत प्रगाढ़ एवं गंभीर है। वे भारतीय इतिहास, साहित्य और संस्कृति के सुधी अध्येता हैं। इसी प्रकार सुभद्रा जी के लेखन और उनके संकल्पशील संघर्ष का दौर भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास की श्रृंखला में एक युगांतकारी और क्रांतिकारी समय था। इन दोनों रचनाकारों को याद करते हुए आलेख शामिल किए गए हैं।

जयशंकर प्रसाद : किया मूक को मुखर / कृष्ण कुमार सिंह	04
स्वाधीनता की हलचल और सुभद्रा कुमारी चौहान / कुमुद शर्मा	07
साहित्य और राज्यसत्ता / श्रीभगवान सिंह	11
गांधी : एक टीस-सी उठती है / प्रभु जोशी	17
मर्म का स्पर्श / प्रयाग शुक्ल	19
विमर्श से आगे / इंदिरा दांगी	21
हिंदी वाचिकता का रचाव / बुद्धिनाथ मिश्र	24
चिंताएं देशकाल की / दामोदर खड़से	27
एक कारवां आ रहा है जिंदगी से भरा हुआ! / रामदेव शुक्ल	29
हाशिए का गल्प / रमा प्र. नवले	32
मिथिला की स्त्री / संजय कुमार	37
चिंतन के स्वर / श्रीराम परिहार	40
लोकतंत्र का अंतिम क्षण! / अरुण कुमार त्रिपाठी	43
भारतीय बाल साहित्य पर एक जरूरी विमर्श / दिविक रमेश	47
लिपि की लड़ाई / कंवल भारती	51
कथा एक दुर्धर्ष जीवन की / अखिलेश कुमार दुबे	55
एक नई दुनिया का दरवाजा / विजया सती	58
साहित्यिक पुरखों का स्मरण / अशोक नाथ त्रिपाठी	61
पुस्तकें मिलीं	66

आवरण पृष्ठ : जयशंकर प्रसाद एवं सुभद्रा कुमारी चौहान

अक्षरा

अंक 188 नवंबर 2020

सम्पादकीय

सबद निरंतर

अदला-बदली : **रमेशचन्द्र शाह** 7

आलेख

कृष्ण बिहारी मिश्र के दो ललित निबंध : **अजयेन्द्रनाथ त्रिवेदी** 10

छायावादी काव्य में मातृभूमि वंदना : **सदानन्दप्रसाद गुप्त** 15

वर्तमान चुनौतियाँ और आज का साहित्य : **रंजना अरगड़े** 21

सनातन गाँधी 'महात्मा इन मेकिंग' पर पुनर्विचार : **अम्बिकादत्त शर्मा** 26

जनमाध्यमों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से सृजित मूल्य : **कुमुद शर्मा** 32

दिनमान के सम्पादक और उनका योगदान : **मनीषचंद्र शुक्ल** 37

विष्णु नागर की कहानी : शैली मेरी बाकी उसका : **सरिता कुमारी** 40

रामचरितमानस में वर्णित राम राज्य की प्रासंगिकता : **बिजेन्द्र कुमार** 43

हिंदी गद्य साहित्य में राष्ट्रीयता : **सुरेन्द्र कुमार जैन** 49

आधुनिक असमिया कहानियों के नारी पात्रों में विद्रोही स्वर : **कुल प्रसाद उपाध्याय** 52

समकालीन हिंदी सिनेमा और सामाजिक संदर्भ : **विजय कुमार मिश्र** 57

लोकविधा और गुमनाम कलाकारों का दस्तावेज : सुर बंजारन : **नेहा गुप्ता** 61

जाम्भाणी साहित्य में पर्यावरणीय चिंतन : संत वील्होजी : **प्रेम सिंह** 66

ललित निबन्ध

एक दीया होता है : **सुमन चौरे** 70

कहानी

खुलती गाँठ : **आर. एस. खरे** 75

अपनी-अपनी संतुष्टि : **श्याम नारायण श्रीवास्तव** 79

लघुकथा

मार्गदर्शन : **सीमा वर्मा** 83

[illegible] : **ममता सरन सोना** 85

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक :		₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक :		₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेम 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष: 44, अंक: 1, जनवरी-फरवरी 2021

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

तवांग की यात्रा

आत्मनिर्भर भारत के लिए

याददाश्त वापस लौट रही है

पांडेय जी और उनका छज्जा

जेल में संगीत, संवाद और मीडिया

भारतीय संस्कृति, मूल्यबोध एवं विश्व मानवता

मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं में जीवन मूल्य

हिंदी साहित्य के फलक पर घासलेटी आंदोलन की हलचल

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अत: प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

गगनांचल

अनुक्रम

वर्ष 44, अंक 1, जनवरी-फरवरी 2021

प्रकाशकीय

3 नया वर्ष, नई उम्मीद, नई दुनिया
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

4 संस्कृति : मानसिक एवं मानवीय विस्तार
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

7 केरल : संस्कृति और साहित्य की समृद्ध परंपरा
धर्मेन्द्र प्रताप सिंह

जीवन-दर्शन

11 जीवन के लिए चाहिए हरित मानसिकता
प्रो. गिरीश्वर मिश्र

जेल-साहित्य

13 जेल में संगीत, संवाद और मीडिया
डॉ. वर्तिका नन्दा

कथा-सागर

15 याददाश्त वापस लौट रही है
अलका सिन्हा

17 घात-प्रतिघात
प्रभा ललित सिंह

19 किधर
जय वर्मा (इंग्लैंड)

सांस्कृतिक-विरासत

35 भारतीय संस्कृति, मूल्यबोध एवं विश्व मानवता
प्रियंका यादव

दृष्टि-सृष्टि

38 हिंदी साहित्य के फलक पर घासलेटी आंदोलन की हलचल
डॉ. कुमुद शर्मा

चिंतन-मंथन

43 मॉरीशस की भोजपुरी लोककथाओं में जीवन मूल्य
डॉ. नूतन पाण्डेय

48 21वीं सदी के कवितामयी दो दशक
डॉ. रचना विमल

शोध-संसार

54 मानवीय मूल्यों का विघटन और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबंध
नेहा चतुर्वेदी

59 नरेन्द्र कोहली कृत अभ्युदय का वस्तु विन्यास
कीर्ति त्रिपाठी

साहित्य-वैविध्य

63 पर्यावरण-चिंता, भूमंडलीकरण और हिंदी कविता
डॉ. नीरज

यात्रा-संस्मरण

68 तवांग की यात्रा
विरेन्द्र कुमार यादव

व्यंग्य-वीथिका

71 पांडेय जी और उनका छज्जा
लालित्य ललित

73 रामबाबू और घटते पानी की मछली
अनीता यादव

लघुकथा-सरोवर

75 बलराम अग्रवाल

पुस्तक-समीक्षा

77 चक्रव्यूह के घेरे में
सुमन कुमारी

79 पीठ पर रोशनी : जनपक्षधरता और प्रेम को अभिव्यक्त करती कविताएँ
डॉ. नीलोत्पल रमेश

वोकल फॉर लोकल

81 आत्मनिर्भर भारत के लिए
संजय कुमार मिश्र

योग एवं उपचार

84 थायरायड : अभ्यास एवं औषधि
विराज आर्य

काव्य-मधुवन

85 उषा उपाध्याय
86 माधव कौशिक
87 विजय स्वर्णकार
88 क्षमा पाण्डेय
89 आरती सिंह 'एकता'
90 कोमल वर्मा

हिंदी-संसार

91 विश्व हिंदी दिवस : एक दृष्टि
नेहा गौड़

92 गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.

ISSN : 2581-7353

खंड-2 अंक-3
आश्विन-मार्गशीर्ष-पौष, 2076/अक्टूबर-दिसंबर, 2019

संवाद पथ

जनसंचार एवं पत्रकारिता केंद्रित पत्रिका

अनुक्रम

प्रधान संपादक की कलम से

1. भारतीय मीडिया : गरिमा बहाली की चुनौती	प्रो. संजय द्विवेदी	13
2. स्वच्छता, आत्मनिर्भरता एवं सांस्कृतिक पहचान : भारतीय जनसंचार तंत्र की भूमिका	डॉ. नागेंद्र कुमार सिंह	17
3. हिंदी के माध्यम से कंप्यूटरीकरण और डिजिटलीकरण : चुनौतियाँ एवं समाधान	डॉ. साकेत कुमार सहाय	25
4. 'मुंशी प्रेमचंद' और उनकी पत्रकारिता	डॉ. कल्याण प्रसाद	32
5. पं. राधाचरण गोस्वामी की हिंदी पत्रकारिता	डॉ. संजीव श्रीवास्तव	38
6. ग्रामीण पत्रकारिता : स्वरूप, परिवर्तन और चुनौतियाँ	डॉ. सुरेश सिंह राठौर	45
7. विज्ञान पत्रकारिता के मूल स्वर	प्रो. (डॉ.) दिनेश मणि	52
8. बिहार का 'बिहार-बंधु'	डॉ. आशा कुमारी	55
9. जनसंचार माध्यम और हिंदी	डॉ. विनय कुमार शर्मा	61
10. वेब पत्रकारिता का परिचयात्मक अनुशीलन	डॉ. जितेंद्र कुमार सिंह	67
11. हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की डगर पर एक ऐतिहासिक विवाद	कुमुद शर्मा	73
12. 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका में स्त्री-चेतना का विकास	अरुण रंजन	80
13. ग्लोबल पत्रकारिता का सशक्त माध्यम है ब्लॉगिंग	डॉ. हरीश अरोड़ा	85
14. साहित्य, सिनेमा और भूमंडलीकरण	डॉ. विपुल कुमार	91
15. विमर्श के दौर में मीडिया एवं साहित्य में भाषिक व्यवहार	प्रकाश उप्रेती	99
16. हिंदी पत्रकारिता और समकालीन परिदृश्य	साधना	104
इस अंक के लेखक		111

भारतीय भाषाओं और साहित्य में समरसता और एकात्मता के सूत्र

• कुमुद शर्मा

लेखिका समीक्षक, मीडिया विशेषज्ञ और स्त्री विमर्शकार। स्त्री विमर्श और मीडिया पुस्तकों पर भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार, साहित्यश्री सम्मान, बालमुकुंद गुप्त साहित्य सम्मान तथा प्रेमचंद्र रचनात्मक सम्मान से सम्मानित। 'साहित्य अमृत' की पूर्व संयुक्त संपादक। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर तथा निदेशक, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

हमारे देश के मूल स्वभाव में सहिष्णुता और समन्वयात्मकता है। भारतीय जीवन-दर्शन मुक्त भाव से आत्मीयता की पुकार लगानेवाला, सबको आत्मसात् कर लेनेवाला दर्शन है। उसकी सर्वसमावेशी दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मूल मंत्र से जुड़ी हुई है। जिसमें 'अहिंसा परमो धर्म', 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' जैसे मानव मूल्य सन्निहित हैं। भारतीय चिंतन परंपरा में विविधता तथा अनेकता में जो एकत्व है, उसकी अनुभूति हमारे विविध भारतीय भाषाओं के रचनाकार कराते रहे हैं।

भारतीय रचनात्मकता के लंबे इतिहास में विविध भारतीय भाषाओं और साहित्य में समरसता और एकात्मता के संधान का सूत्र हमारा सांस्कृतिक बोध है। एक समग्र अखंडित और संपूर्ण चेतना की संवाहिका भारतीय संस्कृति की जीवनधारा समूचे भारतीय साहित्य में समाहित है। हम अलग-अलग प्रांतों में बसते हैं, हमारे खान-पान, हमारी बोली, हमारी वेशभूषा में भिन्नता है, लेकिन हम सब अपने देश की महान् और जीवंत परंपराओं से, अपने देश के गौरवशाली इतिहास से, अपने पौराणिक और सांस्कृतिक मिथकों से और स्मृतियों से एक जैसा जुड़ाव महसूस करते हैं। इन सबसे हमारा एक ही जैसे ही नाता है, इसीलिए विभिन्न प्रांतों और जातियों के वैशिष्ट्य के बावजूद एक केंद्रीय जीवन दृष्टि के समग्रता बोध ने साहित्य के फलक पर भारतीयता के स्वरों की संवाद चेतना को निरंतर जीवंत बनाए रखा। भारतीय रचनाकारों की आत्मसजगता सांस्कृतिक अनुभवों से पुष्ट हैं। जहाँ परंपरा और स्मृति के असंख्य सूत्र समाविष्ट हैं। इतिहास, मिथक और संस्कृति की जमीन पर भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य की सृजनात्मकता अपना वैशिष्ट्य निरूपित करती है।

हमारे सांस्कृतिक बोध में, हमारे जीवन दर्शन में समरसता और एकात्मता के सूत्र बिखरे पड़े हैं। इन्हीं सूत्रों से भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य नैतिक संवेदन और मानवीय विवेक के बिंदुओं का स्पर्श करते हुए हमें जाग्रत् करता है। बराबर संकेत करता चलता है कि तुम यहाँ कहाँ गलत हो, यहाँ सही हो।

भाषाओं के बीच एकात्मता का महत्त्वपूर्ण आधार यह है कि भारतीय भाषाओं का उद्गम संस्कृत से हुआ है। हमारे चिंतक भारतीय भाषाओं में एकात्मता का कारण उनके 'मूल सांस्कृतिक संस्कारों' को मानते हैं, जिनकी निर्मिति में संस्कृत की केंद्रीय भूमिका रही है—"चिंतन, तत्त्वज्ञान और दर्शन के क्षेत्रों में संस्कृत एक जीवंत माध्यम के रूप में भारतीय भाषा के साहित्य को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पोषित करती रही। विभिन्न भारतीय भाषाओं के भीतर एक ही सांस्कृतिक धारा प्रवहमान होती रही।" (निर्मल वर्मा)

यह ध्यान आकर्षित करनेवाली बात है कि सभ्यताओं का इतिहास लिखनेवाले विश्व प्रसिद्ध अमेरिकी इतिहासकार, चिंतक विल ड्यूरेंट संस्कृत और उससे निःस्सृत संस्कृति के प्रति कैसी कृतज्ञता व्यक्त की है— "India was the motherland of our race. And Sanskrit the mother of Europe's languages: she was the mother of our philosophy; mother, through the Arabs, of much of our mathematics; mother through the Budha, of the ideals embodied in Christianity; mother, through the village community, of self government and democracy. Mothe India is in many ways the mother mother of us all."

इस संदर्भ में ब्रिटेन के विश्व प्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेन की भावना को भी देखा जाना चाहिए—"India is the cradle of the human race, birthplace of human speech, mother of history, grandmother of legend and the great grandmother of traditions. Our most valuable and instructive materials in the history of man are treasured up in India only."

इन दोनों विश्व प्रसिद्ध चिंतकों, लेखकों के इन उदाहरणों को यहाँ प्रस्तुत करने की खास वजह है। हिंदुस्तान में प्रचलन यह हो गया है कि

Jankriti International Magazine
Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018

जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

स्त्री- विमर्श

विस्थापन और आदिवासी स्त्री

डॉ. स्नेह लता नेगी
सहायक प्रो. हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 8586036430

भारत में हर आदिवासी समुदाय की अपनी भाषा, संस्कृति, रीति–रिवाज, इतिहास और सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं। आदिवासी स्त्रियों की स्थिति का मूल्यांकन करने के लिए हमें इसकी ऐतिहासिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को भी देखने की जरूरत है। आदिवासी समाज की विविध भाष, संस्कृति और इतिहास है ऐसे में स्त्रियों से जुड़ी बहुत सी समस्याएँ सभी आदिवासी समाज में कमोबेश एक जैसे हैं जिसका संबंध हर आदिवासी स्त्री से है। लंबे समय की अंग्रेजी हुकुमत हो या आज की पूंजीवादी व्यवस्था का दमन–शोषण, इन सबसे आदिवासी स्त्रियाँ सबसे ज्यादा प्रभावित हुई हैं।

अंग्रेजों के आगमन से पहले यहाँ के गैर आदिवासी लोगों ने आदिवासियों को उनके उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों से खदेड़ कर उन्हें दुर्गम पहाड़ों–जंगलों की ओर पलायन करने के लिए विवश किया। उन दुर्गम पहाड़ों जंगलों में भी श्रमशील आदिवासियों ने अपने अनुकूल और स्वतंत्र समाज को विकसित किया। विस्थापन की इस प्रक्रिया को रामायण जैसे महाग्रंथों में भी देखा जा सकता है जहाँ आदिवासी, मनुष्य की गिनती में ही नहीं है। इस तरह की भेदभाव पूर्ण दृष्टि हमारे इतिहास में देखी जा सकती है। अंग्रेजी औपनिवेशिक शोषण तंत्र के साथ ही आदिवासियों के संसाधनों का दोहन तेज गति से

Scanned with CamScanner

होने लगता है। ये अंग्रेजों के लिए अपनी पूँजीवादी व्यवस्था को सुदृढ़ करने का सुअवसर भी था। जिसका परिणाम यह हुआ कि आदिवासी अपने ही प्राकृतिक संसाधन, जल–जंगल–जमीन से बेदखल होने लगे। अंग्रेजों द्वारा आदिवासियों की जमीन पर व्यवसायिक फसलें उगाई जाने लगीं जिसमें अंग्रेजों को अधिक से अधिक लाभ हो। "वन तथा खनिज संपदा के दोहन, व्यवसायिक फसलों के लिए चाय कॉफी और रबड़ के बागानों के लिए मज़दूरों की आवश्यकता थी। अपने जंगल–जमीन से उजड़े ये आदिवासी सस्ते मजदूर की भूमिका में खपाए गए। अंग्रेजी साम्राज्यवादी व्यवस्था की खुशहाली के लिए आवश्यक था कि आदिवासी व्यवस्थाएँ समूल उखाड़ी जाएँ।"[1] अंग्रेज जानते थे कि आदिवासी ईमानदारी, साहसी और लडाकू कौम है जो अन्याय के विरूद्ध अगर संगठित हो गए तो उनके लिए खतरा पैदा कर सकते हैं इसलिए उन्हें अपने स्थान से विस्थापित करना ज़रूरी है। संस्थानों पर भी आप तब तक कब्जा नहीं कर सकते जब तक उन्हें खदेड़ेंगे नहीं, उन्हें हीन साबित नहीं करेंगे। अंग्रेजों ने कूटनीतिक ढंग से यह सब किया और विस्थापन का सिलसिला चलता रहा।

अपनी जड़ों से उखड़ने और विस्थापन का खामियाज़ा सबसे ज्यादा आदिवासी स्त्रियों को उठाना पड़ा। आदिवासी स्त्री परिवार समाज और अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है। विस्थापन के साथ धीरे–धीरे अर्थव्यवस्था की उत्पादन प्रक्रिया में उसकी भूमिका सिमटने लगी और पुरुषों के साथ खेत–खलिहान छोड़ चाय बागानों, खदानों और फैक्ट्रियों में मजदूरी के लिए सिर पर गठरी में अपनी गृहस्थी समेटे एक जगह से दूसरी जगह भटकने को मजबूर होने लगी। कारखानों, खदानों का वातावरण बच्चों और स्त्रियों के स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अनुकूल नहीं होता था। "विस्थापन के कारण अनेक ग्रामीण और आदिवासी समुदाय

Scanned with CamScanner

Jankriti International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
Volume 3, Issue 33, January 2018

जनकृति अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 2.0202
www.jankritipatrika.in
वर्ष 3, अंक 33, जनवरी 2018

न केवल बेघर हुए बल्कि उन्हें अपने परंपरागत पेशों से भी वंचित होना पड़ा। खासकर आदिवासी स्त्रियाँ जो प्राकृतिक संसाधनों पर अपनी आजीविका के लिए पूरी तरह निर्भर थी। विस्थापन के बाद दूसरों के घरों में नौकरानी बनने को विवश हो गयी।"[2]

विस्थापन ने आदिवासियों से उनके संसाधन ही नहीं छीने बल्कि उनकी कला, संस्कृति और इतिहास को भी नष्ट कर दिया। विस्थापन के बाद स्त्रियाँ अपने पति पर आश्रित रहने लगीं और बाहरी समाज के साथ आदिवासी समाज के संपर्क में आने के साथ–साथ दीकुओं की पितृसत्तात्मक मानसिकता धीरे–धीरे आदिवासी समाज के पुरुषों पर भी असर करने लगी। वैसे देखा जाए तो ज्यादातर आदिवासी समाज पितृसत्तात्मक समाज है लेकिन हिंदू पितृसत्तात्मक समाज की तरह दमन शोषण के मापदंडों की तरह नहीं और न ही दमन–शोषण को वंश या शास्त्रीय आधार प्राप्त है। पितृसत्तात्मक समाज होने पर भी स्त्री पुरुष में बराबरी का दर्जा इस समाज की अमूल्य धरोहर है। जैसे–जैसे मुख्य धारा से संपर्क हुआ आदिवासी समाज की स्त्रियों के प्रति मुख्यधारा की सीमित समझ और दृष्टि अपने ही मापदंडों में देखने की आदी मुख्यधारा के पुरुषों के दमन और शोषण का शिकार आदिवासी स्त्रियाँ होती रही हैं। यह मुख्यधारा का संकीर्ण दृष्टिकोण ही है जो उनके घोंटुल और भगोहरिया जैसी पारंपरिक प्रथा को भी यौन संबंधों को बनाने के केन्द्र के रूप में देखता है।

1990 के बाद भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की प्रक्रिया के चलते आदिवासियों का विस्थापन और तेजी से होने लगा। सरकार राष्ट्रहित के नाम पर कॉरपोरेट घरानों को आदिवासियों की जमीन औने–पौने दामों में बेचकर आदिवासियों के भविष्य के साथ

Scanned with CamScanner

खिलावाड़ कर रही है। देश का यह कैसा विकास है, समझने की जरूरत है जहाँ एक के विकास के लिए दूसरे के जीवन को खतरे में डालना पड़े। हद तो तब हो जाती है जब विस्थापितों के लिए पुनर्वास की कोई व्यवस्था सरकार नहीं करती है। रोज केरकेट्टा की चिंता इस संदर्भ में उल्लेखनीय है "जो सबसे ज्यादा निराशाजनक है वह यह है कि संसद और विधान सभाओं में जनता द्वारा चुनकर भेजे गए प्रतिनिधियों ने कभी भी अपने क्षेत्र से पलायन करने वाली जनता की सुध नहीं ली यह खेद की बात है कि आम आदमी के पास जीवन के प्रति दूर दृष्टि नहीं है। लेकिन उससे भी अधिक निराशाजनक यह है कि इन प्रतिनिधियों के पास तक दूर दृष्टि का अभाव है।"[3] निश्चित ही आदिवासी क्षेत्र का प्रतिनिधि ही उनके लिए काम नहीं करेगा तो दूसरों से क्या उम्मीद की जा सकती है।

विस्थापन ने आदिवासी स्त्रियों की आजीविका ही नहीं छीनी बल्कि स्त्रियों में सामाजिक और मानसिक स्तर पर भी असुरक्षा का भाव पैदा किया है। "विस्थापन स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अलग तरह से प्रभावित करता है। इसके अनेक कारण हैं। इनमें सबसे प्रमुख है स्त्रियों का ज़मीन, प्राकृतिक संसाधनों तथा अपने परिवेश के साथ घनिष्ठ संबंध होना जो न केवल उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति का निर्धारण करता है, बल्कि अपने दैनिक जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"[4] आदिवासी स्त्रियों का अपने परिवेश से करीबी रिश्ता होता है अपने पैतृक समाज के नजदीक रहना उसे विपरीत परिस्थितियों में आत्मबल और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है जिससे विस्थापन के बाद वह वंचित हो जाती है। आदिवासी सामूहिक जीवन में विश्वास रखता है जो उस समाज का जीवन दर्शन है। आदिवासी सामूहिक है इसलिए समाज

Scanned with CamScanner

की व्यवस्था पर सामाजिक नियंत्रण रहता है। जहाँ स्त्रियों की सुरक्षा, अधिकार और न्याय की समुचित व्यवस्था रहती थी। वहाँ विस्थापन ने उस सामाजिक नियंत्रण को लगभग खत्म कर दिया और आज विस्थापित आदिवासी स्त्रियाँ घरेलू हिंसा और दुर्व्यवहार झेलने को विवश हैं। इसके अतिरिक्त विस्थपान विरोधी स्त्रियों को पुलिस प्रशासन की मार भी झेलनी पड़ी।

आदिवासी अर्थव्यवस्था में आदिवासी संस्कृति के संरक्षण में आदिवासी स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इतिहास गवाह है कि अपनी संस्कृति, जल–जंगल–ज़मीन को बचाने के लिए ब्रिटिश हुकूमत से टक्कर लेने वाली आदिवासी क्रांतिकारी स्त्रियाँ फूलों, झानो, माकी और सिनगी दई जैसी स्त्रियों की कुर्बानी अविस्मरणीय है। विस्थापन के इस दौर में भी हमें एकजुट होकर फूलो, झानों और सिनगी दई जैसी साहसी बनने की जरूरत है। जैसे–जैसे विस्थापन की प्रक्रिया बढ़ने लगी विस्थापन के विरोध और सुव्यवस्थित पुनर्वास की माँग को लेकर आंदोलन बढ़ने लगे। ओडिशा में पॉस्को परियोजना और गुजरात में नर्मदा बचाओ जैसे आंदोलन इसका ज्वलंत उदाहरण है। "विकास और विस्थापन के पूरे ताने बाने के भीतर स्त्रियों, खासकर ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियों की स्थिति को ही सामने लाना है। तथ्य बताते हैं कि भूमि अधिग्रहण, पुर्नवास तथा पुर्नस्थापना कानून आदिवासियों तथा वनवासियों के अधिकारों को कानूनी जामा पहनाने वाला अनुसूचित जनजाति तथा अन्य परंपरागत वनवासी अधिनियम, (वन्य अधिकार अधिनियम), 2006 की माँग को लेकर चले लंबे आंदोलन में भी स्त्रियों ने निर्णायक योगदान दिया था। केवल यही नहीं 1970–80 के दशक में वर्तमान उत्तराखंड के चमोली जिले में हुए चिपको आंदोलन में गौरा देवी समेत बहुत सी स्त्रियों ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[5] जब से

Scanned with CamScanner

आदिवासियों के संसाधनों और जंगल–जमीन पर दबाव बढ़ने लगे। तब से अपने संसाधनों को संरक्षित करने की मुहिम भी तेज होने लगी। आदिवासी स्त्रियाँ ही अपने पर्यावरण संस्कृति और संसाधनों की संरक्षिका है। वैसे भी आदिवासी स्त्रियों के विस्थापन के विरूद्ध और भावी पीढ़ी की सुरक्षित और स्थाई भविष्य के लिए एकजुट होकर संघर्ष करने की जरूरत है।

संदर्भ

1. भारत में स्त्री असमानता, गोपा जोशी, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सं. 2015, पृ. 18
2. प्रतिमान, जनवरी–जून 2015, अंक–1, संपा. अभय कुमार दुबे, पृ. 223
3. स्त्री महागाथा की महज एक पंक्ति, रोज केरकेट्टा, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, राँची 2014, पृ. 47
4. प्रतिमान, जनवरी–जून 2015, अंक–1, संपा. अभय कुमार दुबे, पृ. 229
5. वही, पृ. 224
6. भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें, वावसी किंडो संपा. रमणिका गुप्ता, रमणिका फाउंडेशन, 2014

Scanned with CamScanner

अपनी माटी ई-पत्रिका

चित्तौड़गढ़,राजस्थान से प्रकाशित त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका('ISSN 2322-0724 Apni Maati')

आलेख: रामचरितमानस का सामाजिक संदर्भ/ डॉ. स्नेहलता नेगी

रामचरितमानस का सामाजिक संदर्भ

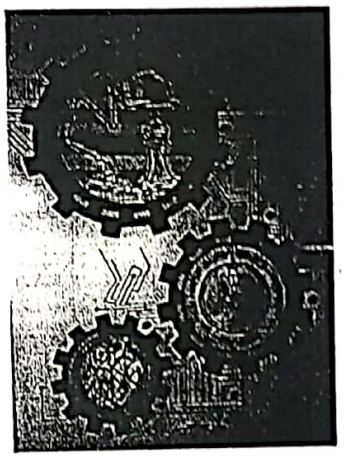

भक्तिकालीन हिन्दी रामभक्तिधारा के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी साहित्य के शीर्ष कवियो में एक हैं। इनका काव्य हिन्दी साहित्य का गौरव है। यद्यपि तुलसीदास से पूर्व रामभक्ति का उदय हो चुका था और रामकाव्य-सृजन की परंपरा भी हिन्दी मे विष्णुदास आदि रचनाकारो की रचनाओं में प्रचलित हो चुकी थी. पर रामभक्ति काव्य-धारा की समस्त विशेषताओ और प्रवृत्तियों के प्रतिष्ठापन का वास्तविक श्रेय तुलसीदास जी को ही जाता है।

रामचरितमानस तुलसीदास का सबसे वृहद सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। यह न केवल रामकाव्य धारा की सर्वश्रेष्ठ काव्य है। न केवल हिन्दी-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है, अपितु विश्वसाहित्य में शीर्षस्थान का अधिकारी महाकाव्य है। इसके अलावा विनयपत्रिका, दोहावली, कवितावली रामगीतावली, रामाजाप्रश्नावली अन्य बडी रचनाएँ हैं। जानकी मगल, पार्वतीमंगल, बरवैरामायण, वैराग्यसदीपनी, कृष्णगीतावली और रामललानहछू छोटी रचनाऐं है।

तुलसी का भक्तिभावना लोकमगलमयी और लोकसंगहकारी है। तुलसीदास की रचनाओं में विशेषतः रामचरितमानस ने समग्र हिंदू जाति और भारतीय. समाज को राममय बना दिया तुलसी के रामचरितमानस पडित और निरक्षर दोनों में अपनी-अपनी महत्व है जो आत्म से होकर व्यापक समाज तक जाता है। तुलसीदास के काव्य का अमिट प्रभाव न केवल भक्तिकाल की रामकाव्य धारा पर पडा अपितु वर्तमान काल के समूचे हिन्दी साहित्य पर उनका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

तुलसीदास को इतिहासकारों ने अकबर के समकालीन स्वीकारा है। उस दौर मे आम आदमी की क्या स्थिति थी वह तुलसी के काव्य में दृष्टव्य है-

जीविकाविहीन लोग सिद्यमान सोचबस
कहै एक एकन सों कहां जाई का करी।

[illegible] शासन के [illegible] की [illegible]
[illegible] के बीच की [illegible] रहे थे.

10

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवनि नरक अधिकारी।"2

तुलसी अपने काव्य में सर्वजन हितायः, सर्वजन सुखायः का भाव रखते हैं लेकिन उनका समाजहित वाला भाव उनके भक्ति भाव के सामने थोड़ा सकुचित हो जाता है। तुलसी ने समसामयिक सामाजिक परिवेश जीवन मूल्यों की वास्तविकता पर अपनी रचनाओं से प्रकाश डाला है और उनकी भक्ति भावना और धार्मिक विश्वासों के आधार पर कहा जा सकता है कि धर्म का मुख्य काम आमजन की सेवा और उनके दुःखो का निवारण करना था। आचार्य शुक्ल लिखते हैं- "धर्म जितने ही अधिक विस्तृत जनसमूह के सुख-दुःख से संबंध रखने वाला होगा उतनी ही उच्च श्रेणी का माना जाएगा। धर्म के स्वरूप की उच्चता उसके लक्ष्य की व्यापकता के अनुसार समझी जाती है।

तुलसीदास की ख्याति 'श्रीरामचरितमानस' से है जो काव्य सृजन से अधिक लोकहित की चिंता के कारण है जो आम व्यक्ति का सुख-दुःख से जुड़ा था। इसलिए तुलसी ने इसे संस्कृत में न रच कर जन सामान्य की बोल-चाल की भाषा में लिखा। विश्वनाथ त्रिपाठी इस संदर्भ में लिखते हैं कि "तुलसीदास की लोकप्रियता का कारण यह है कि उन्होंने अपनी कविता में अपने देखे हुए जीवन का बहुत गहरा और व्यापक चित्रण किया है। उन्होंने राम के परंपरा प्राप्त रूप को अपने युग के अनुरूप बनाया है। उन्होंने राम की संघर्षकथा को अपने समकालीन समाज और अपने जीवन की संघर्ष कथा के आलोक में देखा है।"4

भारतीय जनमानस पर रामचरितमानस का सकारात्मक प्रभाव पड़ा है, जिसका कारण तुलसी की लोक चिंता थी इनके काव्य में हिन्दी समाज की विभिन्न प्रयासों, संस्कारों का सुन्दर वर्णन मिलता है। उन्होंने श्रीराम के चरित्र के द्वारा आदर्श समाज को स्थापित किया है- एक आदर्श पुत्र, आदर्श मित्र, आदर्श राजा और आदर्श पति का उदाहरण दिया है। तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस' के द्वारा लोककल्याण की कामना करते हुए समाज को नैतिकता एवं सदाचार का अविस्मरणीय पाठ पढ़ाया है। रामविलास शर्मा तुलसीदास की सार्थकता सिद्ध करते हुए कहते हैं- "जिस सामन्ती व्यवस्था ने तुलसी जैसे सहृदय कवि को अपार कष्ट दिये थे, उसकी तरफ कभी तटस्थ न रहना चाहिए। जनता की एकता हमारा अस्त्र है, संघर्ष हमारा मार्ग और ऐसा समाज हमारा लक्ष्य हो जिसमें पीड़ित और अपमानित मनुष्य को हताश होकर रहस्यमय देव की तरफ फिर हाथ न उठाना पडे। इस कार्य में एक चिरन्तन प्रेरणा की तरह तुलसीदास हमेशा हमारे साथ रहेगे।"5

तुलसीदास ने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक विकृतियों को दृष्टिगत रखकर आदर्श समाज रामराज्य की परिकल्पना की जिसके लिए समाज को संघर्ष करने की प्रेरणा दी। इसका एक उदाहरण हमें सीता हरण के समय लंका पर आक्रमण के लिए वहीं की जनता को संगठित कर उनमे चेतना और साहस पैदा कर आम जन में नेतृत्व की क्षमता को उजागर किया है। राम चाहते तो अयोध्या से सेना मंगवा सकते थे लेकिन राम ने ऐसा नहीं किया। इस संदर्भ में रामविलास शर्मा का कथन उल्लेखनीय है- "तुलसीदास की रचनाएँ हमारी जनता में साहस और आत्मविश्वास भरती है। वे उसे अपना भाग्य स्वयं अपने हाथों बनाना सिखाती है। तुलसीदास ने जिस न्यायपूर्ण और सुखी समाज की कल्पना की थी, वह एक नये रूप में पूरा होगा। समूचे देश के साथ हिन्दी प्रदेश की जनता भी आगे बढ़ेगी। जातीय एकता के लिए जिसके अग्रदूत गोस्वामी तुलसीदास थे, दासता और दरिद्रता का अंत करने के लिए, जिसके विरुद्ध तुलसीदास ने संघर्ष किया था तुलसीदास की अमर वाणी हमारे साथ है, वह नये भविष्य की तरफ बढ़ने के लिए जनता को बुलावा देती है।"6

तुलसीदास का काव्य इस प्रकार आज भी व्यक्ति के लिए समाज के लिए, राष्ट्र के लिए, नैतिकता के लिए साहित्य और मानवता के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण है।

सदर्भः-

1 रामचरित मानस - तुलसीदास
2 वही
3 रामचन्द्र शुक्ल प्रतिनिधि संकलन, सं. निर्मला जैन, नामवर सिंह
4 लोकवादी तुलसीदास, विश्वनाथ त्रिपाठी
5 परंपरा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा
6 विराम चिन्ह रामविलास शर्मा

(डॉ. स्नेहलता नेगी, सहायक प्रो. हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय)

कोई टिप्पणी नहीं

110

Scanned with CamScanner

एक टिप्पणी भेजें

Links to this post

एक लिंक बनाएँ

वेब वर्शन देखें

Free Printable Forms

PDF Word PPT Excel + More
Download Your Template [illegible]
Now!

Blogger द्वारा संचालित.

Scanned with CamScanner

झारखंडी भाषा
साहित्य संस्कृति
अखड़ा
वर्ष 13 ● अंक 3 ● सितंबर-नवंबर 2019
ISSN No. : 2348-4241

आदिवासी स्त्री कहन विशेषांक

संपादक
वंदना टेटे

संपादक मण्डल
प्रो. बंधु भगत (खड़िया), श्री धनुर सिंह पुरती (हो), डॉ. सिकरादास तिर्की (मुंडारी), डॉ. के. सी. टुडु (संताली), डॉ. हरि ऊरांव (कुड़ुख), डॉ. करम चंद्र अहीर (पंचपरगनिया), गिरिधारी गोस्वामी (खोरठा), डॉ. वृंदावन महतो (कुड़मालि), डॉ. कुमारी वासंती (नागपुरी)

संपादन सहयोग
डॉ. धनेश्वर मांझी/कृष्ण मोहन सिंह मुंडा

टाइपसेटिंग-सज्जा
आधार अल्टरनेटिव मीडिया (झारखंड)

कार्यालय सहयोग
सलोमी एक्का/प्रीति रंजना डुंगडुंग

विशेष सहयोग
प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, रांची

संपादकीय संपर्क
तेलंगा खड़िया भाषा एवं संस्कृति केन्द्र
द्वारा प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन
चेशायर होम रोड, बरियातु, रांची-834009
दूरभाष : 09262975571, 09234678580,
टेलीफैक्स : 0651-2201261
ई-मेल : toakhra@gmail.com
वेब पता : www.akhra.org.in

प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी एवं संपादक वंदना टेटे द्वारा रोज केरकेट्टा, चेशायर होम रोड, बरियातु, रांची-834009 झारखंड से प्रकाशित एवं झारखंड प्रेस, 76, चर्च रोड, रांची-834001 से मुद्रित।

बचाव अखड़ा

4. एकदिवसीय राष्ट्रीय ऑरेचर कन्वेंशन 'जंगल के तूफानी गीत'
5. प्रस्ताव : भारत दिसुम आदिवासी ऑरेचर (साहित्य) सभा

रचाव अखड़ा

8. चौथा दिन
- रोज केरकेट्टा
12. बइलदान (खोरठा कहानी)
- एम. एन. गोस्वामी 'सुधाकर
17. खोरठा काव्य का उदभव और विकास
- ज्ञान रंजन कुमार
20 पंचपरगनिया साहित्य में राजकिशोर सिह का योगदान
- एन्थोनी मुण्डा
23. संताली लोकगीतों में आदि सृष्टि की कहानी
- नारान टुडू
29. [illegible]
- किशुन मुर्मू
33. [illegible]
- खुदीराम मुर्मू
36. [illegible]
- दुली हेम्ब्रम
39. [illegible]
- धनु मुर्मू
44. [illegible]
- अंकिता हेम्ब्रम

विविध अखड़ा

50. कविताएं : मुण्डारी- लखीन्द्र मुण्डा, हो- लाल सिंह बोयपाई खड़िया : नीता कुसुम बिलुंग, कुड़मालि : नन्द किशोर महतो हिंदी- प्रीति रंजना डुंगडुंग और देव आर्यन
53. संस्कृति पर हावी होती आधुनिकता
- कीर्ति मिंज
55. आदिवासी कथा जगत, समाज और परंपराएँ
- डॉ. स्नेह लता नेगी
64. आदिवासी जीवन की चुनौतियों से साक्षात्कार करती कहानियाँ
- पुनीता जैन
71. फेसबुक से : राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का एजेंडा है नासुका (सीएए)
- नेह इंदवार

113

Scanned with CamScanner

संपर्क :
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली
मोबाइल : 9312728504

विविध अखड़ा

आदिवासी कथा जगत, समाज और परंपराएँ

● डॉ. स्नेह लता नेगी

दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी की प्राध्यापक डॉ. स्नेह लता नेगी एक सुपरिचित आदिवासी कवयित्री और आलोचक हैं. इनकी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में लगातार छपती रहती है और कई किताबें भी प्रकाशित हैं.

हिंदी साहित्य और इतिहास में अगर हम आदिवासी समाज और उसकी संस्कृति के बारे में कुछ खोजने की कोशिश करते हैं तो हमारे हाथ कुछ नहीं लगता, हमें वहाँ निराशा ही हाथ लगती है। हिंदी कथा साहित्य को कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने राजा-रानी, जासूसी और दुष्ट राक्षसों जैसे विषयवस्तु से निकाल कर आम जनमानस के दुःख-दर्द और संघर्ष को कथा साहित्य का केन्द्रीय विषय बनाया। प्रेमचंद की कहानियों में गरीब किसान मेहनतकश श्रमिक और स्त्रियों की समस्याएँ जैसे अनेक मुद्दे व्यापक संदर्भों में देखा जा सकता है। दलित समाज की समस्याओं को भी कुछ हद तक प्रेमचंद ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है लेकिन आदिवासी समाज की ओर प्रेमचंद उदासीन दिखाई देते हैं, प्रेमचंद के साथ-साथ उस दौर के लेखकों ने भी इस ओर अपनी कलम नहीं चलाई। बाद के रचनाकारों में शानी, शिवप्रसाद सिंह, रांगेय राघव जैसे रचनाकारों के यहाँ आदिवासी समाज का चित्रण तो मिलता है लेकिन आदिवासी जीवन को आत्मसात करने में यह रचनाकार विफल रहे हैं। इन रचनाकारों की रचनाओं में आदिवासी समाज और संस्कृति की यथार्थ तस्वीर हमारे सामने नहीं आता वहाँ सिर्फ जवान स्त्रियाँ अर्धनग्न लोग, निकम्मा पुरुष, उनकी विपन्नता और स्वच्छंद यौन संबंधों को बहुत रोमानियत के साथ चित्रित किया गया है। कुछ हद तक उसका भोलापन इससे ज्यादा आदिवासी समाज हिंदी कथा साहित्य के शुरुआती दौर में नहीं दिखता।

आदिवासी समाज संस्कृति सिर्फ इतना भर नहीं है। उनकी सामूहिकता, सहजीविता, रचाव और बचाव का जीवन दर्शन और स्त्री के प्रति सम्मान और बराबरी का दर्जा आदि समृद्ध सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्थाओं वाला समाज है। आदिवासी समाज अन्य समाजों की तुलना में अधिक समतामूलक और लोकतांत्रिक समाज रहा है। संसाधनों की लूट की बजाय अपने सीमित जरूरतों के अनुकूल समान वितरण की संस्कृति में विश्वास करता है।

आज भारत सहित संपूर्ण विश्व भयानक प्राकृतिक आपदाओं से जूझ रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में आज हर व्यक्ति अधिक मुनाफा कमाने के चक्कर में और अपनी सीमित स्वार्थ के चलते प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुन दोहन कर मनुष्य समाज को भयानक खतरे में डाल रहा है। इस भयावह दौर में प्रकृति को बचाये रखना और उसके सानिध्य में ही जीवन को तलाशने की चुनौती पूरी दुनिया के सामने है। लेकिन आदिवासी जीवन तो उस प्रकृति जल-जंगल और जमीन के बिना अधूरा है। प्रकृति आदिवासियों के जीवन का मुख्य आधार है जिससे उखड़कर वे जी नहीं पाते हैं।

इसलिए अपनी प्रकृति के प्रति उनका अटूट संबंध प्रेम और आत्मीयता के सूत्र में बंधा हुआ है इसलिए उनका प्रकृति के साथ मानवीय

114

Scanned with CamScanner

व्यवहार रहा है। वे इनमें अपनी पूर्वजों को देखते हैं और इनकी पूजा करते हैं। प्रगतिशील सोच के बौद्धिक वर्ग आदिवासियों के इस मानवीय संस्कार को उनके पिछड़ेपन का प्रतीक बेशक मानते हों लेकिन संपूर्ण दुनिया को बचाने का संस्कार अन्य समुदायों को आदिवासी ही दे सकता है।

आदिवासी साहित्य परंपरा वाचिक रही है इसलिए परंपरा से लेखन की कोई पद्धतियाँ या कहें कि लिखा हुआ कुछ भी उपलब्ध नहीं होता इसलिए आदिवासियों के बारे में गैर आदिवासियों ने वैसा ही लिखा जैसा उन्होंने उस समाज को दिखाया वैसी ही समझ बाहरी समाज में आदिवासियों के प्रति विकसित हुई जो बहुत सी भ्रांत धारणायें आदिवासियों की संस्कृति और समाज को लेकर पैदा करती है। जब से आदिवासी लोगों ने अपनी वाचिक परंपराओं को लिपिबद्ध करना शुरु किया और अपने समाज के अनुभवों की अभिव्यक्ति अपनी भाषाओं और कुछ हिंदी में होने लगा तो धीरे-धीरे आदिवासी समाज और संस्कृति की सच्ची तस्वीर कविता, कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से साहित्यिक जगत में एक नई आदिवासी जीवन दृष्टि और साहित्य का निर्माण होने लगा है। आदिवासी लेखन में आदिवासी रचनाकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमें से कुछ साहित्यकार स्वतंत्रतापूर्व भी लिख रहे थे लेकिन इतिहास में कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता 1929-30 के आसपास सुशील सामंत जैसी लेखिका 'चाँदनी' पत्रिका के संपादन के साथ-साथ अपनी सृजनात्मक लेखन में भी सक्रिय थी ऐसे ही कितने आदिवासी रचनाकार गुमनामी में है यह व्यापक शोध का विषय है जिस ओर हमें ध्यान देने की जरूरत है।

जहाँ तक आदिवासी कहानी लेखन की बात करें तो एलिस एक्का हिंदी की प्रथम आदिवासी स्त्री कथाकार हैं। पचास के दशक में उन्होंने लिखना शुरु किया था। 'आदिवासी' साप्ताहिक पत्रिका के माध्यम से वह आदिवासी समाज की समस्याओं और संघर्षों को बहुत सरल और सहज ढंग से उद्घाटित करतीं हैं। उनकी पहली कृति खलील ज़िब्रान के साहित्य का अनुवाद रूप में प्राप्त है जो अगस्त 1959 के 'आदिवासी' साप्ताहिक पत्रिका में छपी है। हो सकता है इसके पहले भी उनकी रचनाएं छपी हों उपलब्ध न होने के कारण निश्चयपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता है। इस दिशा में गंभीर अध्ययन की जरूरत है। ताकि सिर्फ एलिस एक्का ही नहीं और भी आदिवासी रचनाकार जो उस दौर में थोड़ा बहुत लिख रहे थे उनकी रचनाओं से आदिवासी समाज ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व साहित्य जगत भी परिचित हो सके।

एलिस एक्का की पहली कहानी 'वनकन्या' 17 अगस्त 1961 में आदिवासी साप्ताहिक पत्रिका में प्रकाशित हुई एलिस एक्का की कहानियाँ वंदना टेटे द्वारा संपादित है जिसमें एलिस की कुल छः कहानियाँ संकलित हैं। 'वनकन्या', दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएँ', 'सलगी जुगनू और अंबा गांछ', 'कोयल की लाडली सुमरी', '15 अगस्त, बिलचो और रामू' और 'धरती लहलहायेगी... झालो नाचेगी... गाएगी'। उपरोक्त सभी कहानियाँ आदिवासी जीवन के विविध पक्षों का जीवंत तस्वीर पेश करती है। स्त्री होने के नाते आदिवासी स्त्री की समस्याओं और स्त्री के प्रति तथाकथित सभ्य समाज के दृष्टिकोण को भी बखूबी अभिव्यक्त करतीं है। इसी संदर्भ में रोज केरकेट्टा लिखती हैं- ''स्कूल के दिनों में ही साहित्य के विषय में हमें संक्षेपण करना सिखाया जाता है। स्त्रियों के बारे में समाज भी हमें ऐसा ही नज़रिया देता है। हमारा समाज, इतिहास और साहित्य जीवन के हर क्षेत्र में स्त्रियों का संक्षेपण करता है- विशेषकर, हम आदिवासी स्त्रियों का। हमारा लेखन ऐसे संक्षेपण के खिलाफ है।''[1]

एलिस एक्का की पहली कहानी 'वनकन्या' आदिवासी समाज की सामूहिकता, सहअस्तित्व, सहभागिता और सहजीविता जैसे जीवन मूल्यों पर आधारित है। कहानी में जंगल में वास करने वाले पशु-पक्षी, साँप-बिछुओं और कीड़े-मकोड़ों से लेकर मनुष्य का जल-जंगल पर समान अधिकार के भाव को दर्शाता है। ''सर्वत्र शांति और शीतलता विराजती है। जंगली जानवरों साँप, बिच्छुओं और कीड़े-मकोड़ों का सुखद वास स्थान। वहाँ झींगुर की झनकार, पक्षियों की काकली, पत्तियों की चुरमुराहट और खड़खड़ाहट, हवा की सरसराहट और साँप-साँप। एक ओर नदी अपनी कलकल-कुलकुल ध्वनि के साथ बहती है।''[2] इस उद्धरण को एलिस एक्का ने जड़-चेतन के साथ आदिवासी समाज का निरंतर जुड़ाव और लगाव को मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है जो शायद हमें मुख्यधारा के समाज में देखने को न मिले क्योंकि वहाँ का संस्कार जल-जंगल और ज़मीन के संसाधनों को अपने विकास के लिए अधिक से अधिक दोहन करना रहा है। ''उनकी विकास की अवधारणा में व्यक्ति का विकास है। आदिवासी

Scanned with CamScanner

पूरे समुदाय के विकास की बात करता है। वह सबको साथ लेकर सबके साथ आगे जाना चाहता है।"[3]

एलिस एक्का की सभी कहानियों में आदिवासी समाज का आत्मनिर्भरता दिखाई देता है। किस तरह जंगल आदिवासी सर्ग को कंदमूल, फल-फूल, लकड़ी, दतवन आदि के माध्यम से घर परिवार के भरण-पोषण में सहायक है तो साथ ही स्त्री सशक्तिकरण का द्योतक भी है। लेकिन आज की उपभोक्तावादी संस्कृति में स्थितियाँ भिन्न रूप में दिखाई देती है जहाँ उपभोग ही पहली और आखिरी शर्त है ऐसे में बाहरी समाज का जल जंगल के संसाधनों पर कब्जा करना आदिवासी समाज की परंपरा से चली आ रही आत्मनिर्भर और स्वचालित समाज गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और कुपोषण जैसी समस्याओं से दो चार हो रहा है। एलिस एक्का आदिवासी समाज के भीतर व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़ियों के प्रति भी उतनी ही सचेत हैं जिसके कारण आदिवासी लोगों के प्रति बाहरी समाज का दृष्टिकोण नकारात्मक बना हुआ है। इस कहानी में ओटंगा जैसे लोग भी हैं जो जंगल में देवी-देवताओं को खुश करने के लिए खून इकट्ठा करते हैं। जिसका शिकार शहर से आया हुआ युवक बनता है। वनकन्या फेचो उस युवक को अपनी सेवा-सुश्रुषा से आदिवासी समाज के मनुष्यता के प्रति कर्त्तव्य भाव का परिचय देती है और युवक का दिल जीत लेती है। फेचो जैसी ही जीवन मूल्य लगभग हर आदिवासी में जीवन है जो बाहरी समाज का आदिवासियों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को बदलने में सहायक है। इस कहानी में शहरी युवक के सामने आदिवासियों का सहज, सरल और निश्छल स्वरूप सामने आता है यह कहीं न कहीं बदलाव की शुरुआत की ओर संकेत करता है। युवक फेचो से कहता है "तुम्हारी सेवा मैं कभी भूल न सकूंगा फेचो। तुमने मेरे हृदय को भी जीत लिया है। आदिवासी इतने सहृदय और नेक होते हैं यह मुझे मालूम नहीं था।"[4]

शहरी युवक तब तक आदिवासी समाज के गुणों और उनकी सहज-सरल जीवन से परिचित नहीं होता है जब तक वह उस समुदाय में नहीं रहता, कहीं न कहीं उसके मन में भी आदिवासियों की छवि बर्बर और हिंसक समुदाय के रूप में ही रही थी। तभी वह फेचो से इस तरह की बात करता है। आदिवासी समाज के प्रति जो घृणा का भाव है उसमें बहुत कुछ आदिवासी साहित्य के नाम पर लिखा गया और आदिवासियों का लिखा साहित्य भी है। जहाँ सतही ज्ञान और दो-चार दिन आदिवासी गाँव का दौरा लगाकर उनके बारे में लिखने का नतीजा है। जहाँ आदिवासी लोगों को बहुत भोला, सीधा, हिंसक बर्बर और असभ्य के खेमे में डालने वाले ज्यादा हैं। उन्हें मनुष्य के रूप में सहज स्वाभाविक और उनकी सामाजिक सांस्कृतिक गुणों की ओर नजर बहुत ही कम लोगों को गई है। आदिवासी समाज की छवि खराब कर सभ्य-सुसंस्कृत समाज के मन में कुछ पूर्वाग्रह जमा दिये हैं जिन्हें बदलने की दरकार है। वीरभारत तलवार आदिवासियों पर लिखने वालों को चार तरह से देखते हैं- "पहले ऐसे उत्साही लोग हैं जो आदिवासी इलाकों का दो-चार बार ट्रिप लगाकर उनके बारे में कुछ जानकारियाँ नोट कर लेते हैं और अपने संस्कार का चश्मा लगाकर लिखने बैठ जाते हैं। ऐसी रचनाएँ आदिवासी समाज की सतही और अप्रासांगिक चित्रण प्रस्तुत करती है। दूसरी श्रेणी उन लेखकों की है जिन्होंने आदिवासियों के आर्थिक शोषण और राजनैतिक सवालों को अपनी रचनाशीलता का विषय बनाया है और आदिवासियों के प्रति सहानुभूति रखते हुए एक वामपंथी दृष्टिकोण से लिखते हैं। ऐसी रचनाओं में उनका अन्दरूनी पक्ष और संस्कृति चित्रित न होकर उनका आर्थिक-राजनैतिक पक्ष उभरा है। सब बाहरी की हैसियत से है, आंतरिक की हैसियत से नहीं। तीसरी श्रेणी उन लेखकों की है जो आदिवासी समाज के भीतर वर्षों तक रहकर, उनकी भाषा संस्कृति और समस्या में रच-बस कर लिखा है। चौथी श्रेणी खुद आदिवासियों द्वारा अपने बारे में लिखा साहित्य है लेकिन वह अभी लोगों के सामने कम ही पड़ा है।"[5] इसलिए जरूरी है कि जब भी आदिवासी समाज के बारे में कोई भी लिखे सतर्क होकर और पूर्वाग्रह से मुक्त होकर लिखे।

'दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएँ, एलिस एक्का की विशिष्ट कहानी है। बच्चे दुर्गी नामक दलित स्त्री की है और उनके बारे में सोचने वाली एल्मा आदिवासी स्त्री है। कहानी दोनों स्त्रियों के इर्द-गिर्द घूमती है और दोनों एक दूसरे का सुख-दुःख साँझा करती और एक दूसरे के साथ खड़ी होती है। यह कहानी जनवरी 1982 में छपी थी। अगर देखा जाये तो प्रेमचंद के बाद यह हिंदी की पहली दलित कहानी है। वन्दना टेटे इस संदर्भ में लिखती हैं- "उपलब्ध जानकारी के अनुसार मराठी दलित लेखक बाबुराव बगुल का पहला कहानी संग्रह 1963 में 'जब मैंने जात छुपायी' नामक शीर्षक

116

Scanned with CamScanner

से छपा था। कुछ लोग डॉ. अंगनेलाल लिखित 'आदिवंश कथा' 1968 को पहली दलित कहानी मानते हैं। इस प्रकार 1963 के पूर्व जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, पाण्डेय बेचने शर्मा 'उग्र' आदि को छोड़कर उनके पूर्व हिंदी अथवा मराठी में किसी दलित कहानी के प्रकाशन का ब्यौरा नहीं मिलता है। आठवें दशक के बाद ही हम हिंदी अथवा मराठी दोनों में दलित साहित्य का सुगठित उभार देखते हैं। अतः इसमें कोई संदेह नहीं है कि 'दुर्गी के बच्चे और एल्मा की कल्पनाएँ' किसी अवर्ण लेखक द्वारा लिखी गई भारत की पहली दलित हिंदी कहानी है।"[6]

कहानी में दुर्गी वर्षों बाद एल्मा के मोहल्ले में पूर्व की जमादारिन की जगह काम करने आती है। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है कि कहानी में एलमा दुर्गी के प्रति सहानुभूति रखती है लेकिन जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती है कहानी में आदिवासी जीवन दर्शन खुलने लगता है। यह कहानी न तो सहानुभूति की है न ही स्वानुभूति की बल्कि यह सामूहिक और सहजीवनानुभूति की कहानी है। एल्मा आदिवासी स्त्री है इसलिए उसकी सोच का संस्कार सामूहिक विकास की धुरी पर टिकी है तभी तो वह बेहतर मानवीय समाज की कल्पना करती है- "एल्मा की कलपनाएँ दूर-दूर दौड़ने लगी। काश ऐसा भी दिन आता कि इस आजाद भारत के कोने-कोने बिल्कुल साफ-सुथरे हो जाते। जमीन के भीतर-भीतर सारी गंदगी बह जाती। सभी अपनी सफाई का काम आप कर लेते। तब शायद ही कोई भंगी होता।"[7] 'धरती लहलहायेगी... झालो नाचेगी ... गाएगी' कहानी आदिवासियों का संपूर्ण प्राकृतिक परिवेश में रहने वाले समस्त प्राणी से प्रेम और लगाव की कहानी है झालो और उसके साथी जब पहाड़ों से गाय बैल और बकरियाँ हाँकते जंगल से गुजरते हैं तो देखते हैं कि सभी नदी पोखर सूख गये हैं जिसे देख झालो चिंतित होती है- झालो की डबडबाई आँखों से झारियों से कहती है- "ने झारियों नदी में वो कारिको पानी नखे। गाय, गरू छगरी मन का के पीबै।"[8] झालो, झरियों और ननकू तीनों बच्चे भविष्य की चिंता में सिसक-सिसक कर रोने लगते हैं। उन्हें चिंता है कि आने वाले दिनों में अकाल पड़ेगा तो आदमी, गाय, पशु-पक्षी सब भूखे मर जायेंगे। एलिस ननकू के माध्यम से आजाद भारत के बीस वर्ष बाद की स्थिति को रेखांकित करती है, जहाँ देश गुलामी की बेड़ियों से तो मुक्त हो गया लेकिन अकाल, भुखमरी, कुपोषण, अशिक्षा जैसे बेड़ियों से अभी भी मुक्त नहीं हो पाया है। वर्तमान स्थिति भी आदिवासी समाजों में भिन्न नहीं है। कहानी में ननकू कहता है- "स्वराज को बीस साल हो गए। भारत ने चीन की ओर पाकिस्तान की लड़ाई देखी और अब रहे भूख और अकाल देखेक। हाय भारत माता! गुलामी की बेड़ी टूटी भी तो क्या भूख और अकाल ही बदा था तेरे भाग्य में।"[9] एलिस एक्का का सृजनात्मक फलक आदिवासी समाज तक केन्द्रित नहीं है उनके सृजनात्मकता का फलक विस्तृत है जिसमें संपूर्ण भारत का कल्याण निहित है। इनकी कहानियाँ व्यक्ति के भीतर आशा का गहरा सोता प्रवाहित करती है। बिना किसी चमत्कार और कृत्रिमता से उनकी कहानियों में प्रकृति, आदिवासी समाज संगीत के लय, सभ्य और आदिवासी समाज के भीतर घात-प्रतिघात का संबंध भी है।

इसी क्रम में आदिवासी रचनाकार रोज केरकेट्टा की रचनाओं ने भी आदिवासी साहित्य में लोकप्रियता हासिल की है। रोज केरकेट्टा मातृभाषा खाडिया के साथ-साथ हिंदी में भी निरंतर लिखती रहीं हैं। आदिवासी समाज के महत्पूर्ण प्रश्न और झारखंड आन्दोलनों को नेतृत्व प्रदान करने में भी अग्रणीय रही हैं। हिंदी में उनकी महत्वपूर्ण कहानी संग्रह 'पगहा जोरी-जोरी रे घाटो' और 'बिरूवार गमछा' महत्वपूर्ण है। 'बिरूवार गमछा' में संकलित कहानी 'प्रतिरोध' में आजादी के बाद के छोटे-छोटे शहरों के विकास और यातायात के साधनों से आदिवासी क्षेत्रें का जुड़ना और गांव की लड़कियों का शहर में लकड़ी, फल-फूल, दातुन, दोना और पत्तल आदि बेचने जाना सुगम हो गया और जिस कारण गाँव की आदिवासी लड़कियाँ शहर के बदलावों से प्रभावित होती हैं और अपने गाँव समाज में भी उसी तरह के बदलाव के सपने देखती हैं। जब शहर में एक दिन 26 जनवरी का परेड देखती हैं आजादी की बातें सुनती हैं और अपने गाँव के कुछ पारंपरिक बंदिशों से आगे निकलने की सोचतीं है शहर में स्कूल की लड़कियों की तरह फुटबॉल खेलने की योजना बनाती है अपने रोज की कमाई में से कुछ वह फुटबॉल खरीदने के लिए बचाती हैं। उसी पैसे से फुटबॉल भी खरीदती हैं और गाँव के मैदान में खेलने के लिए उतर जाती हैं "इंतजार खत्म हुआ दोनों गाँव में से सबसे लंबी लड़की एक फुटबॉल और सीटी लेकर आई दोनों दलों को अलग किया, बीच में स्वयं सीटी और बॉल लेकर खड़ी हुई। सीटी बजाई और घूमकर दूसरी तरफ उसने बॉल उछाल दिया।

Scanned with CamScanner

मैच आरंभ हो गया।''[10] आदिवासी समाज स्त्री पुरुष की समता पर टिका हुआ है यहाँ स्त्रियाँ भी घर की अर्थव्यवस्था में अपना बराबर का योगदान देती हैं। समान भागीदारी के बावजूद भी पितृसत्तात्मक मानसिकता आज धीरे-धीरे अपने कदम पसार चुकी है ऐसे में आदिवासी समाज भी उस मानसिकता से बचा नहीं है। लेकिन आदिवासी स्त्रियाँ भी उस पितृसत्तात्मक मानसिकता का एकजुटता और साहस के साथ प्रतिरोध करती हैं। अन्य समाज की स्त्रियों की तरह दबकर घर के किसी कोने में दुबक कर नहीं बैठतीं। लड़कियों का फुटबॉल खेलना उसी प्रतिरोध का प्रतिकात्मक स्वर है।

रोज केरकेट्टा आदिवासी समाज में लिंग भेद की समस्या को भी चित्रित करती हैं। उसे बताने से घबराती नहीं हैं। आदिवासी समाज की बहुत सी अच्छाइयों के साथ-साथ उसकी कमजोरियों पर भी रचनाकार की पैनी दृष्टि है। 'प्रतिरोध' कहानी में इसी तरह का उदाहरण देखा जा सकता है। ''खेलकर आने के बाद मैं (भाई) थका होता हूँ, जूते चप्पल उतारकर फेंक देता हूँ, उस समय दीदी ही तो समेटकर रखती है। प्यास लगने पर पानी वही पिलाती है। मेरे पुकारते ही सारे काम छोड़कर आती है, सुबह बिस्तर समेटती है, गंदे कपड़े धोती है। न-बाबा-न वह खेलना शुरु करेगी तो मेरी कीमत कम हो जाएगी।''[11]

घर के भाईयों को बहनों का फुटबॉल खेलना और शहर जाकर सामान बेचना पसंद नहीं आता और उनके शहर जाने पर आपत्ति जताने लगते हैं। तो बहनें अपना प्रतिरोध इस रूप में दर्ज करती है- ''ठीक है कल से तुम बेचो हम घर में रहेंगी। हमें इस काम में कौन सा सुख मिलता है? पत्ते तोड़कर लाओ, अब इसके लिए भी दूर जाना पड़ता है ट्रेन में धक्के खाओ, टी.टी. मूरदार प्रतिदिन दातुन भी लेता और पैसे भी इससे छुटकारा मिल जाएगा।''[12] यहाँ प्रतिरोध इन्हें पुरुष के खिलाफ नहीं करता बल्कि यहाँ स्त्री पुरुष दोनों ही बराबरी और संघर्ष के सहयोगी बनने के क्रम में है।

'घाना लोहार का' में रोज केरकेट्टा तथाकथित सवर्ण समाज का आदिवासियों के प्रति विद्रूपत चेहरे को दिखाती हैं कि मुख्यधारा का समाज किस तरह हमेशा ही अपने फायदे के लिए आदिवासी स्त्रियों का शोषण करता आया है। कहानी में जगत सिंह (सवर्ण व्यक्ति) और रोपनी (आदिवासी स्त्री) को अपने घर ले जाता है। घर जाकर पता चलता है कि जगत सिंह की पत्नी बीमार है बिस्तर से उठ नहीं सकती। जगत सिंह रोपनी को अपने प्रेमजाल में फंसा कर घर तो ले आता है लेकिन पत्नी का दर्जा नहीं देता, रोपनी जगत सिंह के घर की सफाई, मवेशी संभालने जैसे सभी काम संभालने लगती है, लेकिन उसके लिए घर के अंदर प्रवेश वर्जित था। वह दलान के बगल में बने कमरे में रहती जगत सिंह सोने आता था उससे ज्यादा उसकी कोई भूमिका नहीं थी। रोपनी का सोमारु नाम का बेटा हुआ। सोमारु भी धीरे-धीरे जगत सिंह के खेत-खलिहान के काम संभालने लगा, जगत सिंह के परिवार को मुफ्त में दो मजदूर मिल गए लेकिन रोपनी और सोमारु तो में दो मजदूर मिल गए लेकिन रोपनी और सोमारु तो उसे अपने पति और बाप का घर समझ कर जी जान से काम करते थे। कहानीकार यहाँ समाज के उस कड़वा यथार्थ को व्यक्त करती हैं कि किस तरह उच्च जाति के पुरुषों के प्रेम जाल में फंसकर आदिवासी स्त्रियाँ अपना सब कुछ समर्पित करती है उसके बाद भी उन्हें वह सम्मान और अधिकार नहीं मिलता। जब जगतसिंह के दूसरे बेटे की बहु रोपनी और सोमारु के खिलाफ जगत सिंह के कान भरने लगती है तो धीरे-धीरे जगत सिंह भी उनसे किनारा करने लगता है। बहु उसे समझाने लगती है- ''छोटी जातवाले हम बड़ी जात वालों के सामने बैठना उठना नहीं जानते सिंघों की नजर में उराँव, मुंडा, खड़िया, लोहरा सब छोटी जात थे, उनकी औरतों को उठा लेना अब भी इनका हक बनता है।'' आदिवासी स्त्रियाँ प्रेम में अपना सब कुछ समर्पित करती है लेकिन आत्म सम्मान दाव पर नहीं लगाती। रोपनी भी ऐसी ही थी जब जगतसिंह की बहु रूकमइन रोपनी को रखैल कहती है और उसके बेटे सोमारु को जगतसिंह की सम्पत्ति से बेदखल करती है तो रोपनी पंचायत बुलाती है। ताकि न्याय हो सके लेकिन वहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। गाँव के पंच भी तो जगतसिंह के जात बिरादरी के लोग थे। उन्हें रोपनी के दुःख दर्द से क्या लेना देना फैसला जगत सिंह का पक्ष में सुनाते हैं और रोपनी को जगत सिंह घर भी छोड़ने का आदेश हुआ जिसे सुनकर वह बिफर पड़ती है और पंचायत के फरमान को मानने से इंनकार करती है और जगत सिंह के घर पर अपना कब्जा छोड़ने को मना करती है।

रोपनी ने तो अपनी असहमति पंचों के सामने अभिव्यक्त किया लेकिन गाँव के सवर्ण लोगों को यह मंजूर

18

Scanned with CamScanner

नहीं था कि छोटी जात की एक स्त्री पंचों के फैसले को चुनौती दे। उनके विरुद्ध आवाज उठाये यह समाज क्यों सहेगा? आस-पास बैठे लोगों ने रोपनी और सोमारु को गाली गलोच करने लगे और सब उन दोनों पर टूट पड़े "सोमारु और रोपनी को वे तब तक मारते रहे, जब तक दोनों बेहोश नहीं हो गए। फिर उन्हें वहीं छोड़कर वापस चले गए।"[14]

जब से आदिवासी लोग लेखन में सक्रिय हुए हैं तब से ही साहित्य में आदिवासियों के जीवन अनुभव और संघर्षों की सच्ची तस्वीर पेश हुई है। वह सिर्फ रोमानियत और विस्थापन तक सीमित नहीं है। इन कहानियों में आदिवासी समाज का आत्मसम्मान और गौरव के भाव भी अभिव्यक्ति हुए हैं। रोज केरकेट्टा की अन्य कहानियाँ 'फ्रॉक', 'फिक्स्ड डिपॉज़िट', 'ज़िद', 'बड़ा आदमी', 'बिरुवार गमछा' आदि सभी आदिवासी अस्मिता को तलाशती हुई कहानियाँ हैं। आर्थिक तंगहाली, पलायन और बाहरी हस्तक्षेप के प्रभाव और विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करते जीतने की ज़िद और अदम्य साहस की कहानियाँ हैं।

रामदयाल मुंडा का आदिवासी साहित्य और समाज को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने अपनी कविताओं और कहानियों के माध्यम से आदिवासी साहित्य और समाज को दिशा दी है। उनकी रचनाएँ आदिवासी समाज की सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना संपन्नता का प्रतीक है। वह आदिवासियों को चेतना संपन्न होने और संघर्षरत रहने की सीख देते रहे हैं। रामदयाल मुंडा अपने समाज की कमजोरियों से भी उन्हें परिचित करवाते हैं। उनकी कहानी 'खरगोश का कष्ट' समाज के उसी कमजोरी को प्रतिकात्मक रूप में दर्शाती है। कहानी का कथानक सिंहों और खरगोशों के इर्द-गिर्द घूमती है। जंगल में सिंहों के राज में किस तरह खरगोशों को कष्ट में रहना पड़ता है और उन्हें किस तरह सिंहों के शोषण को झेलना पड़ता है। यहाँ सिंह ऐसे समाज का प्रतीक है जिनका आधिपत्य सदा ही खरगोशों (आदिवासियों) पर किसी न किसी रूप में रहा है। यहाँ सिंह और खरगोश के माध्यम से लेखक यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि जब कोई कमजोर समुदाय चेतना सम्पन्न होने की प्रक्रिया में होता है और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाता है, तो उसे कितनी चालाकी के साथ दबाने की कला सिंह सरीखे समुदायों में होती है। जब खरगोश जंगल में अलग राज्य की माँग को लेकर अपने वृद्ध खरगोश नेता को सिंहों के पास भेजते हैं और खरगोश अपना प्रस्ताव रखता है। तब सिंह बड़ी चालाकी के साथ उसे समझाने लगता है- "हाँ, आप लोग हमारे राज्य में कुछ कठिनाई में तो है, किन्तु यह भी है कि आप लोग राज्य चलाने के काम में कभी पड़े नहीं है इसलिए आपको अलग जंगल देने पर भी मुझे लगता है कि आप राज्य नहीं चला सकेंगे। इसलिए अलग जंगल पाने के पहले, आपको राज्य कैसे चलाना चाहिए, इन सब बातों को सीखने की ज़रुरत है। अब से जैसा कि आपने कहा, हम आपके बीच से बहुत से खरगोशों से राज चलाने के काम में लगायेंगे।"[15] यह कहानी आदिवासियों को राजनीति के गलियारों, राजनीतिक योजनाओं से बेदखल करने की रणनीति को दिखाती है जहाँ यह कह कर उन्हें प्रशासन व्यवस्था से दूर रखा जाता है कि उन्हें शासन व्यवस्था चलाने की समझ नहीं। इसका जब भी विरोध किया और सिंह नये-नये हथकंडे अपनाने लगते हैं। इस कहानी में खरगोश सिंह की बात से असहमत होता है- "जरा रुकिये एक बात... यह ठीक है कि हमने कोई बड़ा राज चलाने का काम नहीं किया है लेकिन इतना तो हम जानते हैं कि कैसे हमारे घर-द्वार और गांव, ग्राम का कल्याण होगा। राज्य मिलने पर तो उसे भी हम उसी तरह चलायेंगे। इसलिए 'तुम राज्य नहीं चला सकोगे?' यह कह कर आप ठीक नहीं कर रहे हैं।"[16]

खरगोश बेशक सिंहों के सामने कमजोर है लेकिन साहस और मनोबल कम नहीं है। आदिवासियों में भी साहस और मनोबल की कमी नहीं है किस तरह एकजुट होकर शासन व्यवस्था को चलाना है वे बखूबी जानते हैं। कहानी के अंत तक आते-आते रामदयाल मुंडा अपने समाज के लोगों की कमजोरियों को भी चित्रित करते हुए दिखाई देते हैं। जब खरगोश सिंह की बात से सहमत नहीं होता है तो सिंह खरगोशों के नेता को काबू करने का दूसरा तरीका अपनाता है। वह खरगोश नेता को लालच देता है कि किस तरह उसके साथ रहने पर वह भी राजा की तरह सुख चैन से रह सकेगा और युगों तक उसका परिवार भी सुखी रहेगा। सिंह की लालच के वशीभूत खरगोश नेता अपने ही समाज के भाई-बन्धुओं के हित भूल जाता है और सिंह के प्रस्ताव को स्वीकार करता है और अपनी भोली-भाली जनता को भी सिंहों की भाषा में समझाने लगता है- "चूंकि वे हमसे बहुत अधिक शक्तिशाली

Scanned with CamScanner

हैं इसलिए इस रास्ते को अपनाकर हम अपना राज्य नहीं पा सकेंगे। इसलिए मेरा विचार है कि अब हमें उनसे मिलकर ही अलग राज्य लेने की कोशिश करनी चाहिए। यही सब विचार करके मैंने इस बार सिंहों के राजा को कह दिया कि हम आपके ही साथ हैं।''[17] रामदयाल मुंडा आदिवासी समाज के पढ़े-लिखे चेतना संपन्न लोगों को अपनी जिम्मेदारियों से विमुख होने से उस समाज की जो क्षति हो रही है उसका सहज चित्रण करते हैं। जिन लोगों से समाज को उम्मीद होती है वही अपने हित साधने के लिए व्यापक समाज के हितों की बलि चढ़ा देने से भी हिचकिचाते नहीं है। और भोली-भाली जनता को गुमराह करते रहे हैं। लेखक यहाँ आदिवासियों को एकजुट होकर अपने समाज के प्रति प्रतिबद्ध रहने की सीख देता है।

इसी तरह का स्वर हमें अश्विनी कुमार पंकज की कहानियों में भी सुनाई देता है। 'जहाँ फूलों का खिलना मना है' कहानी में मीतू और कथावाचक के माध्यम से लेखक ने झारखंड की राजनीतिक सामाजिक समस्याओं और भ्रष्टाचार का वर्णन किया है। मीतू उदयपुर के स्टेट एडुकेशन रिसोर्स सेंटर में काम करती है और शिक्षा नवाचार में आदिवासी शिक्षण परंपरा पर अध्ययन कर रही है। इसी सिलसिले में वह झारखंड में आदिवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने आती है। मीतू राँची में अपनी सहेली से इस कार्य के लिए मदद माँगने आती है और किन-किन लोगों से मिलना है उसका लिस्ट बनाती है, जो आदिवासी विषय पर गंभीरता से अध्ययन कर रहे हैं। दोनों के संवाद के माध्यम से लेखक कहानी में झारखंड की राजनीतिक समस्याओं और चुनौतियों को केन्द्र में रखा है। झारखंड देश के सभी आदिवासी क्षेत्रों के मुकाबले सबसे पहले राजनीतिक स्तर पर चेतना संपन्न हुई है। जिसकी जनता करीब ढाई सौ साल से अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है। अलग झारखंड राज्य के लिए मुख्यधारा की राजनीति से संघर्ष करता रहा और आज अलग झारखंड भी बन गया जहाँ आदिवासी ही सत्ता में हैं। ऐसे में लेखक झारखण्ड राज्य बनने के बाद आदिवासी समाज को समस्याएँ क्या कम हुई है? क्या उन्हें मूलभूत अधिकार प्राप्त हुए हैं? जैसे अनेक सवाल पात्रों के माध्यम से उठाते हैं। क्या झारखंड के बनने के बाद नक्सलवाद, भ्रष्टाचार जैसी, समस्याओं पर सवाल उठाते है। ऐसा क्यों है कि आदिवासियों की सत्ता अपने राज्य में है फिर भी समस्याएँ कम होने की बजाये बढ़ रही है। मीतू की सहेली इसका जवाब देते हुए कहती है-''झारखंड की सत्ता पर रहे सभी चेहरे जरूर आदिवासी है, लेकिन वे किसकी उपज हैं, और इस पूरे खेल के पीछे कौन है यह भी तो सोचो। यहाँ होता वही है जो मुख्यधारा चाहता है। आदिवासियों की आड़ में जिन लोगों ने अपने हित साधे हैं, वही लोग मीडिया के जोर पर आदिवासियत को बदनाम करने में लगे हैं।''[18]

आदिवासियों के लिए विस्थापन एक बड़ा मुद्दा रहा है और भूमंडलीकरण के दौर से इसमें इज़ाफा ही हुआ है। देश के विकास के नाम पर आदिवासियों का ज़मीन हड़पना आम बात है। जहाँ देश के विकास का रास्ता आदिवासियों की ज़मीन से होकर गुज़रता है, बड़ी-बड़ी परियोजनाएँ हो या कॉरपोरेट घरानों की बड़ी-वड़ी कंपनियाँ, खनन माफिया सभी आदिवासियों को उनके मूल स्थान से बेदखल करने में लगे हुए हैं और आदिवासी अपनी ही पुरखों की विरासत से उखड़ने के लिए विवश हैं। इसके बाद आने वाली पूरी पीढ़ी के लिए दर-दर की ठोकर खाने के सिवा कोई विकल्प नहीं है। 'इसी सदी के असुर' कहानी में लेखक असुर आदिवासी समुदाय के उसी दर्द की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। ''उसके पुरखों को क्या मालूम था कि रंथु असुर को एक दिन इतना बुरा समय देखना पड़ेगा। 'बिर' (जंगल) 'होड़' (इंसान) के वंशजों से जंगल छीन लिया जाएगा। जमीन जबरन ले ली जाएगी। नदियाँ, डाडी, चुंआ...पानी से सभी स्रोतों को खदान-कारखाने पी पाएंगे। पहाड़ों की पीठ पर टंगे खेत बॉक्साइट की छाई से ऐसे दब जाएंगे कि कोई फसल फिर कभी किसी पीढ़ी में सांस नहीं ले पाएगी।''[19] 'भूत का बयान', 'गाड़ी लोहरदगा मेल' और फेट्करी' आदि सभी कहानियाँ विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण और आदिवासियों के शोषण का जीवंत चित्रण करती हैं। 'भूत का बयान' कहानी का पात्र फूदन नाग का दो एकड़ बारह डिसमिल ज़मीन कोई दिकू हड़प लेता है और उसे मृत घोषित करता है। फूदन नाग कोर्ट-कचहरी के चक्कर काटता अपने जिंदा होने की प्रमाण नहीं जुटा पाता। यही स्थिति कमोबेश हर भोले-भाले आदिवासी लोगों की है।

पीटर पॉल एक्का अपनी कहानी 'राजकुमारों के देश में' में ढोल-माँदर की थाप पर नाचते गाते आदिवासी संस्कृति का चित्रण करते हैं। जहाँ का समाज स्वावलंबी, सुख और शांति से तब तक रह रहा है जब तक उस गाँव पर बाहरी लोगों की नज़र नहीं पडती। जब धीरे-धीरे दिकुओं का आवागमन

120

Scanned with CamScanner

9 अगस्त 2019

विश्व आदिवासी दिवस

और 15 अगस्त 2019

राष्ट्रीय स्वतंत्रता दिवस

के अवसर पर समस्त झारखंडी भाई-बहनों को

हार्दिक शुभकामनाएं, हूल जोहार!

अंजु टोप्पो

इतिहास विभाग, संत जेवियर कॉलेज,
रांची (झारखंड)

होता है तो वहाँ भी स्वार्थ की राजनीतिक समीकरण शुरू होने लगता है। लेकिन सीधे-साधे आदिवासी उन राजनीतिक समीकरणों को समझ नहीं पाते। इस कहानी का पात्र उन सबको महसूस कर रहा है- ''सचमुच दुर्दिन के पल थे। कोलियरी किनके लिए खुली थी, खेत खलिहान किनके दबे थे, जंगली कन्द-मूल, फल-फूल किनके बन्द हुए थे सखुए के उन लहलहाते वनों का क्या हुआ था, उनकी जगह सांगवान के पेड क्यों लगाये गये थे। गाँव में राजनीति के बेहद घिनौने, फूहड़ भद्दे चक्र क्यों चलने लगे। पढ़े-लिखे बाबू बेबस, भोले-भाले लोगों को बेरहमी से लूटते थे। आये दिन चोरी डकैती, बलवा, खून होने लगा। बहू-बेटियाँ खुलेआम किनसे लुटने लगी थी? खुला-खुला खूबसूरत बेफिक्र अल्हड सा पहाड़ी अंचल क्यों बेहया सा बेपर्दा किया जाने लगा था।''[20]

इस कहानी में पीटर पॉल एक्का एक खुशहाल आत्मनिर्भर आदिवासी गाँव कैसे धीरे-धीरे गरीबी और बदहाली की ओर खिसकता जा रहा है उस पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। इसकी वजह लेखक ठेकेदारों और बाहरी लोगों को मानते हैं जो अपने हित के लिए आदिवासियों के जीवन के साथ खिलवाड़ करते आये हैं। अपनी ही आँखों के सामने अपनी समृद्ध गाँव को उजड़ते हुए देखने का दर्द हर आदिवासी की आँखों में देखा जा सकता है।

जब भी आदिवासी संस्कृति की बात आती है तो वह सिर्फ म्यूजियम में रखने की चीज मात्र नहीं जिसे देखा और रोमांचित हुए। वह आदिवासी समाज की जीवन शैली और जीवन दर्शन की अभिव्यक्त की विधा है। आदिवासी संस्कृति के संरक्षण के लिए उसमें निहित मूल्यों को आत्मसात करने की ज़रूरत है। फ्रांसिस्का कुजूर की कहानी 'गोदना' आदिवासी संस्कृति की प्राचीन परंपरा गोदना के महत्व और उससे जुड़ी हुई मिथक की अभिव्यक्ति है। गोदना गुदने की प्रथा केवल भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि दुनिया के लगभग सभी आदिम

121

Scanned with CamScanner

समुदायों में प्रचलित परंपरा है। आज भले ही विदेशी पर्यटक, युवा-युवतियों और फिल्मी सितारे फैशन के चलते रंग-बिरंगी कलाकृति अपने शरीर में उकेरते हों लेकिन आदिवासी समाज की सभी लड़कियों को गोदना गोदवाना अनिवार्य होता था, जिसका संबंध सीधे लोक-संस्कृति से जुड़ता है। "आदिवासी परंपरा के अनुसार सभी लड़कियों को गोदना गोदवाना अनिवार्य होता था, भले आज फैशन के युग में इसकी अहमियत कम जो गयी है, फिर भी जया की माँ जया के गोदना गोदवाने की फिक्र में रोज एक-एक मुट्ठी चावल छिपाकर रखती थी ताकि गोदनेवाली औरत को सिधा दे सके।"[21] आदिवासी समाज की मान्यता है कि गोदना एक अलौकिक शृंगार है जो स्त्री के साथ हमेशा ही रहता है जन्म से लेकर मृत्यु तक। मृत्यु होने पर सभी आभूषण उतार दिये जाते हैं लेकिन गोदना कभी नहीं उतरता यह भी मान्यता है कि गोदना गुदवाये बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। कुछ यह भी मानते हैं कि गोदना के कारण, आत्माएँ उन्हें क्षति नहीं पहुँचाती है। कई बिमारियों से भी मुक्ति मिल जाती है और मनुष्य स्वस्थ रहता है। लेखिका लिखती है कि "दादी ने गोदने के पीछे छिपे रहस्य को भी बताया परलोक में गोदना ही पैसे के काम आता है इसी धार्मिक विश्वास के कारण आदिवासी समाज में सभी स्त्री पुरुष गोदना गोदवाते हैं। देखती नहीं हो मेरे पूरे शरीर में गोदना है। तुम्हारी माँ और नानी के पूरे शरीर में भी गोदना है।"[22]

इस कहानी में कथावाचक अपनी सहेली जया के शरीर पर गोदने के कारण ही दिल्ली जैसे शहर में पहचान पाती है और पता चलता है कि उसी गोदने के कारण ही वह अमेरिका जा रही है। कोई अमेरिकी व्यक्ति गोदना पर शोध कर रहा है और उसके शरीर का गोदना भी उसके शोध का स्रोत है। जया कहती है कि "माँ ने तो इस आर्शीवाद से गोदना गोदवाया था कि परलोक में यह रुपये-पैसे के काम आयेगा, लेकिन देखो तो माँ के आर्शीवाद का चमत्कार, गोदना ने तो इसी जन्म में धन की कमी को पूरा कर दिया। माँ का पाँच पैला (सेट) चावल न जाने कितना डॉलर बन गया।"[23] जया के मन में गोदना को लेकर जो मान्यता थी वह और भी पुख्ता हो गया यह परलोक में भी ज़रूर धन की कमी को पूरा करता होगा। यह आदिवासी समाज की, वहाँ के लोगों की अपनी संस्कृति, परंपरा के प्रति गहरी आस्था का ही परिचय देती है।

उपरोक्त सभी कहानियाँ संक्रमणकालीन दौर के आदिवासी समाज के अंतर्द्वंद्व को अभिव्यक्त करती हैं। आदिवासी समाज आज बाहरी और अपने भीतर के अनेक समस्याओं और संभावनाओं के बीच संघर्ष कर रहा है। आधुनिकता और परंपरा के बीच की छटपटाहट के द्वंद्व इन कहानियों में देखा जा सकता है। इसी द्वंद्व और संघर्ष के बीच से आदिवासी रचाव और बचाव के साथ अपने मार्ग को प्रशस्त करने की तरफ निरंतर अग्रसर होता दिखाई देता है। ●

संदर्भ:

1. एलिस एक्का की कहानियाँ, संपा. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 22-23
2. वही, पृ. 37
3. ग्लैंडसन डुंगडुंग, झारखण्डी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, पृ. 17
4. एलिस एक्का की कहानियाँ, सं. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2015, पृ. 42
5. वाङमय पत्रिका, सं. डॉ. एम.फिरोज अहमद, आदिवासी विशेषांक-I
6. एलिस एक्का की कहानियाँ, संपा. वंदना टेटे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 28
7. वही. पृ. 50
8. वही. पृ. 63
9. वही. पृ. 63
10. रोज़ केरकेट्टा, बिरूवार गमछा तथा अन्य कहानियाँ, संस्करण 2017, प्रभात प्रकाशन, पृ. 33
11. वही. पृ. 30
12. वही. पृ. 31
13. वही. पृ. 39-40
14. वही. पृ. 43
15. आदिवासी कथा जगत, संपा. केदार प्रसाद मीणा, सं. 2016, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली पृ. 18
16. वही. पृ. 18
17. वही. पृ. 19
18. अश्विनी कुमार पंकज, इसी सदी के असुर, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, सं. 2010, पृ. 14
19. वही. पृ. 68
20. आदिवासी कथा जगत, संपा. केदार प्रसाद मीणा, अनुज्ञा बुक्स, सं. 2016, पृ.14
21. वही. पृ. 203
22. वही. पृ. 204
23. वही. पृ. 207

122

Scanned with CamScanner

Jankriti

Multidisciplinary International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankritipatrika.com
Volume 5, Issue 56, December 2019

जनकृति

बहु-विषयी अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankritipatrika.com
वर्ष 5, अंक 56, दिसंबर 2019

इस अंक में

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	बिदेसिया नाटक का सिनेमाई रूपान्तरण समाहन (appropriation) की राजनीति तथा बुर्जुआ सौंदर्यबोध	जैनेन्द्र कुमार दोस्त	06-22
2.	हिन्दी सिनेमा में गांधीवादी दर्शन	डॉ.सुरभि विप्लव	23-27
3.	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा और अनुवाद	डॉ. अनवर अहमद सिद्दीकी	28-33
4.	हिंदी सिनेमा के पर्दे पर आदिवासी	डॉ. स्नेह लता नेगी	34-42
5.	प्रेमचंद की कहानियों में दलित समाज	विजय कुमार	43-48
6.	समय के सामूहिक शुकपाठ में उपेक्षित आवाजों की हकीकत	प्रवीण पंड्या	49-67
7.	भारतीय समाज और स्त्री मुक्ति आंदोलन	डॉ सूर्या इ वी	68-77
8.	सोशल मीडिया का उपयोग : मुद्दे एवं चुनौतियाँ	अभिषेक सौरभ	78-82
9.	प्रवासी एवं आदिवासी गिरमिट गाथा : माटी माटी अरकाटी	सपना दास	83-95
10.	भारत में चीनी डायस्पोरा की सामाजिक संरचना का अध्ययन	विजय कुमार	96-108
11.	सरकारी अफसर और हिंदी	बिनय कुमार शुक्ल	109-111
12.	A Comparative overview of Hinduism and Daoism History, Similarities and Faith	Sunil Kumar Saroha	112-121
13.	भारत में बैंकिंग व्यवसाय: एक विश्लेषण	डॉ. राजेश मौर्या, प्रो. जे.पी. मित्तल	122-143
14.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का आलोचना कर्म : हिन्दी आलोचना का प्रथम सोपान	अमन कुमार	144-149

124

Scanned with CamScanner

Jankriti
Multidisciplinary International Magazine
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankritipatrika.com
Volume 5, Issue 56, December 2019

जनकृति
बहु-विषयी अंतरराष्ट्रीय पत्रिका
ISSN: 2454-2725, Impact Factor: GIF 1.888
www.jankritipatrika.com
वर्ष 5, अंक 56, दिसंबर 2019

हिन्दी सिनेमा के पर्दे पर आदिवासी

डॉ. स्नेह लता नेगी
सहायक प्रो. हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 8586068430

सभ्यता के विकास से आदिवासी प्रारंभ से ही दूर रहे हैं। इसलिए साहित्यकारों और फिल्मकारों का ध्यान भी इस वंचित समाज की ओर देर से गया। फिल्मों से थोड़ी पहले रचनायें आदिवासियों पर मिलती जरूर हैं लेकिन उन रचनाओं में आदिवासी समाज की समस्याएँ उनके सवाल अनछुए ही रह गये हैं। वहाँ आदिवासी जीवन सिर्फ रूमानियत, मनोरंजन और स्त्री की उन्मुक्तता तक ही सीमित दिखता है। हिन्दी सिनेमा जिस प्रतिबद्धता के साथ मुख्यधारा की समस्याओं उनके मुद्दों को उठाता है उसका एक प्रतिशत प्रतिबद्धता हमें आदिवासी समाज को बड़े पर्दे पर उतारने में दिखाई नहीं देता है। 20वीं सदी के मध्य में सिनेमा अभिव्यक्ति के नये माध्यम के रूप में हमारे सामने आया और आज 21वीं सदी के लगभग दो दशक गुजरने को है। सिनेमा हमारे समक्ष नई चुनौतियों को प्रस्तुत करता है और समाज–व्यवस्था को नये सिरे और तरीके से देखने समझने का दृष्टिकोण विकसित करता है। सिनेमा में वह ताकत है कि पूरी व्यवस्था को बदल डाले इसका कारण उसकी बौद्धिकता नहीं बल्कि उसकी भावनात्मक क्षमता है। आदिवासी जीवन के यथार्थ, संस्कृति उनकी परंपराओं आदि के संदर्भ में बेहतर समझ विकसित करने के लिए और आदिवासियो की समस्या और मुद्दों को प्रभावी ढंग से प्रशासन और मुख्यधारा तक पहुँचाने में सिनेमा महत्वपूर्ण जरिया है। लेकिन आदिवासी समाज से संबंधित फिल्में आज भी बड़े पर्दे से

125

Scanned with CamScanner

वंचित है। इसके पीछे के कुछ कारण यह हो सकते हैं कि आदिवासी साहित्य की उपलब्धता की कमी और उसे पर्दे तक लाने की जोखिम भरा चुनौती। साथ ही आदिवासी भाषा–बोली, परंपरा, रीति–रिवाज आदि के प्रति निर्माता–निर्देशक और अभिनेता की जानकारी ओर समझ का अभाव भी हो सकता है। दूसरा भारत का मध्यवर्ग ही सबसे अधिक फिल्में देखता है और फिल्म देखने का उद्देश्य मनोरंजन होता है ऐसे में दलित–आदिवासियों पर आधारित फिल्मों को देखना कोई पसंद नहीं करता। उनके लिए ऐसी फिल्में देखना पैसा बर्बाद करने जैसा है। आम भारतीय मध्यवर्ग का आदिवासी समाज से कोई संबंध नहीं है। उनकी संस्कृति, जीवन शैली सुख–दुख आदिवासी समाज से मेल नहीं खाते वह समाज मुख्यधारा के आस–पड़ोस का परिवेश नहीं है। जिनके सुख–दुःख से वह जुड़े ऐसी फिल्मों में मसाला का भी अभाव रहता है।

आज वास्तविकता यही है कि एक्शन रोमांस और मसालों से भरपूर फिल्में ही बाजार की मांग है ऐसे में आदिवासी फिल्में बाजार के अनुकूल नहीं होती और न ही इसमें कोई खास कमाई की संभावना रहती है। इसलिए निर्माता–निर्देशक भी रूचि नहीं दिखाते। जब तक फिल्म देखने की भारतीय मानसिकता नहीं बदलेगी तब तक हाशिये और वंचित समुदायों पर बनी फिल्मों को हिन्दी सिनेमा जगत में वह स्पेस नहीं मिल सकता जिसकी अपेक्षा हम रखते हैं। वंचित तबकों पर बनी फिल्मों को देखने वाला भी एक खास वर्ग का दर्शक होता है इसलिए आदिवासी समाज को पर्दे पर उतारने का जोखिम कोई निर्माता–निर्देशक उठाना ही नहीं चाहता है।

Scanned with CamScanner

आदिवासी जीवन को लेकर जो थोड़ी बहुत फिल्में बनी भी हैं वह सिर्फ नक्सलवाद की समस्या, आदिवासी स्त्रियों को मनोरंजन और उनकी रोमांचक जीवन को केन्द्र में रख कर बनायी गई है या आदिवासी बहुत ही शोषित है या रोमांचक है यही पक्ष फिल्मों में देखने को मिलता है। लेकिन आदिवासियों के मूल मुद्दों को लेकर सार्थक फिल्मों का आज भी अभाव है।

गोविंद निहलानी निर्देशित 'हज़ार चौरासी की माँ' (1998) और प्रकाश झा निर्देशित 'चक्रव्यूह' (2012) आदिवासी जीवन के नक्सलवादी समस्या की पृष्ठभूमि पर आधारित है। नक्सलवादी आन्दोलन के आदिवासियों में पनपने के पीछे के कारणों को दोनों ही फिल्म में दिखाया गया है। पश्चिमी बंगाल के नक्सलवादी गाँव से यह आन्दोलन शुरू होता है। जहाँ के लोगों को साहूकार दलाल मिलकर उनके जल–जंगल और ज़मीन से बेदखकर कर पलायन के लिए विवश मज़दूर, गरीब किसानों के हक के लिए संघर्ष की कहानी 'चक्रव्यूह' में दिखाया गया है। अपने हक के लिए ज़मीदार को मार डालने की घटना से फिल्म शुरू होती है। नक्सलवाद देश के दो सौ से भी अधिक जिलों में फैल चुका है। फिल्म में आदिवासियों के नक्सलवादी होने के पीछे के मूल कारणों को खोजने की कोशिश की है। नक्सलवाद आदिवासी असंतोष का परिणाम है जो विकास और पुनर्वास के नाम पर होने वाली लूट की देन है।

'हज़ार चौरासी की माँ' गोविन्द निहलानी की फिल्म महाश्वेता देवी की औपन्यासिक रचना 'हजार चौरासी की माँ' पर आधारित है। कहानी नायक प्रतीक और उसके मिशन

Scanned with CamScanner

के इर्द–गिर्द घूमती है। जिसका सपना समाज में व्याप्त अन्याय शोषण, अत्याचार और भ्रष्ट तंत्र को जड़ से खत्म करना है। प्रतीक संपन्न बंगाली परिवार का लड़का है वह अपना जीवन वंचितों को उनके अधिकार दिलाने, सामाजिक न्याय और व्यवस्था में बदलाव के लिए समर्पित करता है। लेकिन 1970 में पुलिस द्वारा नक्सलवादियों के खिलाफ चलाये अभियान में प्रतीक और उसके आदिवासी कार्यकताओं को मुख्यधारा और प्रशासन नक्सलवादी घोषित कर मार डालते हैं। फिल्म दिखाता है कि आदिवासी अगर हक के लिए संघर्ष करते हैं या बगावत करते हैं तो वह अपराधी, नक्सलवादी या आतंकी कुछ भी बनाया जा सकता है और सोमू मंडल, लालटू, प्रतीक और विजित जैसे पात्रों की तरह ही उनका हशर हो सकता है। अनुपम खेर प्रतीक के पिता की भूमिका में हैं जो आदिवासी समाज के प्रति घृणित भाव रखते हैं जो आदिवासियों के प्रति तथाकथित सभ्य समाज के नजरिये को दर्शाता है। आदिवासी अगर अपने जल–जंगल जमीन के प्रति लड़ता है तो वह मुख्यधारा के समाज के लिए क्रिमिनल बन जाता है।

दूसरी ओर फिल्म मीडिया के रवैया को भी दिखाता है कि किस तरह मीडिया बिकाऊ है मीडिया सोमू मंडल, विजित, लालटू को तो नक्सलवादी घोषित कर दुनिया के सामने उनका नाम उजागर करती है। लेकिन प्रतीक का नाम नक्सलवादी के रूप में घोषित नहीं करता यह घटनायें आदिवासी वंचितों के प्रति मीडिया की संवेदनहीनता और भ्रष्टतंत्रा की पोल खोलती है। जब तक मीडिया में संवेदनशील और ईमानदार नहीं होगा

Scanned with CamScanner

तब तक निर्दोष भोले–भाले आदिवासी इसी तरह नक्सलवादी कह कर प्रचारित प्रसारित किया जाता रहेगा।

फिल्म में सोमू मंडल की बहन को इसलिए नौकरी नहीं मिलती क्योंकि वह एक घोषित नक्सलवादी की बहन है। फिल्म में जो दिखाया गया है आदिवासियों का यथार्थ इससे भिन्न नहीं है। ऐसे कितने आदिवासी परिवार हैं जिन की भावी पीढ़ी का जीवन नक्सलवादी कहे जाने को अभिशप्त है और सरकार की योजनाओं से उन्हें वंचित रखा जाता है। नक्सलवाद के नाम पर आज तक न जाने कितने गाँव उजड़ गये और कितनी ज़िंदगियाँ बर्बाद हो गई जिसका आकलन करना मुश्किल है।

'हजार चौरासी की माँ' फिल्म आदिवासी जीवन के उस पक्ष को उजागर करती है जहाँ शोषण से मुक्त होने के लिए आवाज उठाने पर गोलियों से भून दिया जाता है। कोई मे क्रांतिकारी व्यक्ति इन आदिवासियों की मदद करता है तो वह भी नक्सली हो जाता है। सुजाता चटर्जी (प्रतीक की माँ) नंदनी प्रो. नीतू जैसे कार्यकर्ता मिलकर इन वंचित आदिवासियों के लिए काम करते हैं। लेकिन प्रो. नीतू को भी मुख्यधारा के गुंडे दिन–दहाड़े गोलियों से भून डालते हैं। सुजाता बैंक से रिटायर होने के बाद अपना शेष जीवन शोषित आदिवासियों के लिए प्रतीक के सपने के लिए समर्पित करती है और इन शोषित समुदायों की मुक्ति की नयी राह तलाशती है।

यह फिल्म नक्सलवादी समस्या को तो दर्शाती है लेकिन कहीं भी आदिवासी पक्ष सशक्त रूप में उभरते नहीं है उन्हें अपनी समस्या को अभिव्यक्त करने का स्पेस नहीं

Scanned with CamScanner

मिलता फिल्म में मुख्य नायक आदिवासी ही होते तो यह फिल्म नक्सलवाद की समस्या बखूबी प्रदर्शित करता इसके पीछे शायद आदिवासी जीवन के प्रति मौलिक और अनुभूति की कमी लगती है। फिल्म की यह कोशिश अच्छी है कि तथाकथित समाज में नक्सलवाद को लेकर जो जड़ मानसिकता है उसे फिल्म तोड़ती है। नक्सलवाद के पीछे की सच्चाई को अभिव्यक्ति मिली है। नक्सलवादी कोई क्रिमनल या आतंकी नहीं होते इस दृष्टिकोण से फिल्म सकारात्मक पक्ष रखती है।

आदिवासियों पर बनी शुरूआती फिल्म महबूब खान निर्देशित 'रोटी' (1942) में आदिवासियों के अर्द्ध नंगे गानों के साथ शुरू होती है। फिल्म में सेठ लक्ष्मीदास का हवाई जहाज खराब होने पर जंगल में गिरता है तो वहाँ के आदिवासियों के किसानों का शोषण और खेत में दो वक्त की रोटी के लिए दिनभर मेहनत करने को विवश आदिवासियों की समस्या को दिखाया है। लेकिन फिल्म में किसी प्रकार की आदिवासी चेतना नहीं मिलती। जहाँ से आदिवासी जीवन में बदलाव की प्रेरणा मिले। मात्र शोषण और मनोरंजन तक आदिवासी जीवन सिमट कर रह जाता है।

'आक्रोश' (1980) गोविंद निहलानी निर्देशित फिल्म वर्चस्ववादी वर्ग किस तरह आदिवासी लोगों के मन में हीन भावना पैदा करता है। जब आदिवासियों में अपने प्रति हीन भावना होगी तभी तो वर्चस्ववादी वर्ग उसके संसाधनों का दोहन कर सकता है उसकी स्त्रियों पर अपना अधिकार जता सकता है। शोषण कर सकता है. इस फिल्म में पात्र लाहनिया वर्चस्ववादी समाज के साजिश का शिकार होता है और अपनी ही पत्नी की हत्या

130

Scanned with CamScanner

का आरोप उस पर लगता जिससे वह बेहद प्यार करता है। वास्तव में लाहनिया की पत्नी वर्चस्ववादी लोगों द्वारा बलात्कार का शिकार होकर मर जाती है। सच्चाई गाँव का हर व्यक्ति जानता है लेकिन सत्ता के डर से सभी खामोश रहते हैं। लाहनिया पर केस चलता है और उसकी पत्नी को कोर्ट में बदचलन साबित किया जाता है। लाहनिया की खामोशी उस यथार्थ की अभिव्यक्ति है कि कोर्ट कचहरी की न्याय व्यवस्था आदिवासियों के लिए नहीं बनी है। इसलिए वह कोर्ट में भी मौन रहता है। दूसरी ओर फिल्म न्याय व्यवस्था की कमजोरियों को भी दिखाता है। वकील भास्कर कुलकर्णी जैसे लोगों के लिए वकालत अन्य धंधों की तरह ही एक धन्धा है जिन्हें गरीब आदिवासियों की समस्या और भविष्य से कोई लेना देना नहीं है ऐसे में आंदिवासी लोगों का न्याय व्यवस्था प्रति विश्वास कैसे स्थापित होगा सोचने की जरूरत है। आदिवासी मुख्यधारा के लिए या तो बर्बर है या बहुत ही सीधे–साधे फिल्मों में इस तरह की अतिवाद की कोई कमी नहीं है जहाँ आदिवासी विरोध नहीं करता, क्रांति नहीं करता वह अन्याय सहने के लिए चिर अभिशप्त सा दिखाई देता है हिन्दी सिनेमा को इन दोनों ही अतिवाद से बाहर निकलने की जरूरत है।

राहुल बोस निर्देशित 'पूर्णा' फिल्म दक्षिण भारत के आदिवासी और शिक्षा में फैले भ्रष्टतंत्र पर केन्द्रित है। 12–13 साल की पूर्णा और उसकी बहन प्रिया गांव के सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं। पिता स्कूल की फीस नहीं दे पाता है तो दोनों बहने उसके बदले स्कूल परिसर में झाड़ू मारकर अपनी पढ़ाई करती हैं। झाड़ू मारते हुए प्रिया को एक पर्ची मिलती है जिसमें से किसी सरकारी बोर्डिंग स्कूल की सूचना मिलती जहाँ मुफ्त शिक्षा, खाना और

131

Scanned with CamScanner

कपड़े देने का दावा होता है। दोनों बहनें घर से भागने की योजना बनाती है। लेकिन पकड़ी जाती है और बड़ी बहन प्रिया का विवाह कर दिया जाता है। लेकिन प्रिया पूर्णा को गाँव से बाहर निकलकर अपने सपनों को साकार करने के लिए प्ररित करती है और वह उस बोर्डिंग स्कूल तक पहुँचती है। यह फिल्म आदिवासियों के सदियों से पढ़ाई–लिखाई से वंचित रखे जाने के यथार्थ को दिखता है। आज 21वीं सदी में चारों ओर पढ़ने–पढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है लेकिन आज की आदिवासी समुदाय शिक्षा के अधिकार से वंचित है। 'पूर्णा' वंचित वर्ग के लिए सरकार की परियोजनाओं के यथार्थ को अभिव्यक्त करती है जो या तो महज कागजों पर बनती है या दलाल शिक्षक आपस में मिलबांट कर खाते हैं। परियोजनाओं का लाभ जरूरतमंद आदिवासियों तक न पहुँचने की वास्तविकता को दर्शाती है। राहुल बोस फिल्म में IPS अफसर है जो डेपुटेशन पर शिक्षा विभाग में आते हैं और व्यवस्था में परिवर्तन कर स्कूल के गरीब बच्चों की मदद करते हैं भ्रष्टतंत्र के विरूद्ध आवाज उठाते हैं। समाज में ऐसे कितने अधिकारी हैं जो इन वंचितों के लिए अपन पदलाभ छोड़ने को तैयार हों।

पूर्णा मेधावी लड़की है दृढ संकल्प रखती है और प्रिया के सपने को पूरा करने का निर्णय लेती है। प्रिया अपने गाँव के विकास का सपना देखती थी जब पढ़लिखकर अफसर बनेगी तो वह अपने गांव को शहर की तरह ही विकास से जोड़ेगी प्रिया जैसे कितनी लड़कियाँ हैं जिनके सपने अभाव के चलते दम तोड़ देती हैं। पूर्णा और प्रिया के माध्यम से फिल्म दिखाता है कि आदिवासी और वंचित वर्ग के बच्चों में भी वही क्षमता और साहस

Scanned with CamScanner

होता है जो मुख्यधारा के समाज के बच्चों में होता है। बात सिर्फ उन्हें अवसर मिलने की है। अवसर मिलने पर पूर्णा जैसी लड़की ऐवरेस्ट फतहे कर दुनिया को दिखाती है कि आदिवासी लड़कियाँ भी देश को राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पावर गेम में पहचान दिला सकती है। यह फिल्म आदिवासी समाज की युवा पीढ़ी को नई राहों की ओर प्रेरित करने में सक्षम है। साथ ही समाज के भ्रष्ट तंत्र के विरूद्ध चेतना पैदा करने में भी सहायक है। कुछ फिल्मकारों को छोड़कर हिन्दी सिनेमा ने आदिवासियों को मनोरंजन के बाजार में लाकर खड़ा किया है। उनके जीवन की समस्याओं उनके सवाल और मुद्दे अनछुये ही रह गये हैं। आदिवासी समाज के प्रति विकसित समझ के अभाव में आदिवासी समाज का यथार्थ हमारे सामने नहीं आ पाया है। जबकि सिनेमा आदिवासी परंपरा, संस्कृति, रीतिरिवाज और समस्याओं को मुख्यधारा के समक्ष प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है। सिनेमा के माध्यम से आदिवासियों के प्रति मुख्यधारा के समाज की मानसिकता और पूर्वाग्रहों को तोड़ा जा सकता है और आदिवासी समाज के प्रति संवेदनशील और बेहतर नज़रिया विकसित किया जा सकता है। फिल्मकारों को भी आदिवासी जीवन के प्रति संवेदनशील और गहन शोध करके काम करने की जरूरत है। आदिवासी जीवन के विविध पहलुओं को समझना निर्माता–निर्देशक और अभिनेता के लिए बड़ी बाधा और चुनौतीपूर्ण हो सकती है। इसलिए इस क्षेत्र में स्वयं आदिवासी कलाकारों का हस्तक्षेप आपेक्षित है ताकि आदिवासी जीवन की जीवंतता और मौलिकता की क्षति न हो।

Scanned with CamScanner

ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

संस्थापना वर्ष 2015 फरवरी 2020 • वर्ष-5 • अंक-53

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

वरिष्ठ संपादक
प्रो. तत्याना ओरांस्कया, हरिराम मीणा, ए.बी. दुबे 'दीप्त', शैलेन्द्र मौर्या, संजय जगताप, राजीव रंजन प्रसाद, पूनम श्रीवास्तव कुदैसिया, शिप्रा त्रिपाठी

संयुक्त संपादक
बी.एन.आर. नायडू, सुरेंद्र रावल, उमेश कुमार मण्डावी, अपर्णा द्विवेदी, पी.के. तिवारी, राजेंद्र सगर, मधु तिवारी, ज़मील खान

संपादकीय समर्थन
अखिलेश त्रिपाठी, शशांक शेंडे, जसमति नेताम

विज्ञापन एवं प्रसार
अनुराग त्रिपाठी, विवेक त्रिपाठी, ऋषिराज

कानूनी सलाहकारः फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

ग्राफिक डिजाईनः रोहित आनंद (लिटिल बडी)

संपादकीय कार्यालयः 151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोंडागाँव, छ.ग.-494226

रायपुर कार्यालय प्रतिनिधिः
हर्बल इस्टेट, जी-14, अग्रसेन नगर, रिंग रोड नं.-1, रायपुरा, रायपुर-492013 छ.ग.

रायबरेली कार्यालय प्रतिनिधिः 169-'क'-शिवाजी नगर 1, नियर आई.टी.आई. कॉलोनी, रायबरेली-229401 उ.प्र.

मुख्य कार्यालय एवं रचनाएं भेजने का पता
सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई-पी- एक्सटेंशन,
पटपड़गंज, दिल्ली-110092
फोनः 011-22728461, 09968288050,
09425258105, 07786-242506
ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com
फेसबुक : Kaksaad Patrika / वेबसाइट : www.kaksaad.in

मूल्य : रु. 25 (एक प्रति), वार्षिक : रु. 350/- संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : रु. 500/- वार्षिक (विदेश) : $110 यू.एस. आजीवन व्यक्तिगत : रु. 3000/- संस्था : रु. 5000/-

अनुक्रम

4. संपादकीय

साक्षात्कार

5. न्यूटन फिल्म से ख्यातिप्राप्त, सिनेअभिनेता... : **खिरेन्द्र यादव** से **मधु तिवारी** की बातचीत

उजला कोना

7. गोपालशरण सिंह : **कुसुमलता सिंह**

धरोहर

8. दो कविता : **गोपालशरण सिंह**

नज़रिया

8. सज्जनों पर अविश्वास : **चन्द्रप्रभा सूद**

लेख

10. भूमंडलीकरण के दौर में भाषाओं... : **अकांक्षा यादव**
14. भील आदिवासी टण्ड्रा जो तांतिया मामा कहलाया : **एक नीमाड़ी**
25. मीडिया, राजनीति और आदिवासी कहानी : **स्नेहलता नेगी**
26. जनजाति माल पहाड़िया : **कीर्ति विक्रम**
42. गोंडी आदिवासी शिमगा पंडुम त्योहार : **अनुराधा पॉल**

कहानी

18. वह अमर कृति : **माग चन्द गुर्जर**
34. एक दिन अचानक : **सुशांत सुप्रिय**
43. एक जिंदगी खूबसूरत : **मेहमूद सेवकेत इसंदेल**

लोक-संस्कृति/लोक-पर्व

31. आल्हा-ऊदल और आल्हखंड : **कुसुमलता सिंह**
39. वीहू नृत्य या वीहू गीत : **डॉ. स्वप्ना बोरा**

पुरातत्व

36. छत्तीसगढ़ के पचराही का पुरातात्विक वैभव : **अजय चंद्रवंशी**

कविताएं/ग़ज़ल

22. अनिता रश्मि 23. यामिनी नयन गुप्ता 23. अभिनंदन गुप्ता 24. नीरज नीर 24. पारस कुंज 24. वलजीत सिंह बेनाम
30. **यादें**
35. **कहावतें**

चर्चित पुस्तक / पुस्तक समीक्षा

45. आलोचना का परिसर : **नीरज कुमार मिश्र**
47. कोचिंग कोटा : **स्नेहलता पाठक**

लघुकथा

9. प्रदीप बहराइची, 13. सुशीला राय 48. राजेश कुमार झुनझुनवाला
6. **ककसाड़ क्या है?**
48. **पाठक चौपाल**

व्यंग्य

40. आजादी की गाय : **विरेन्द्र 'सरल'**
49. **सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सामाचार**

आवरण चित्र : विनोद गोस्वामी Priya Fesco and Desgin मो. 98734-53836

रेखाचित्र : अनुभूति गुप्ता, मो. 9695083565

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक

दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं। • ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। • सारे भुगतान मनीआर्डर : चेक/ बैंक ड्राफ्ट ककसाड़ के नाम से किऐ जाएं।

Scanned with CamScanner

मीडिया, राजनीति और आदिवासी कहानी

(इस सदी के असुर कहानी के संदर्भ में)

• स्नेहलता नेगी

कहानी संग्रह 'इस सदी के असुर' में छः कहानियां संकलित हैं। अगर सातवीं 'मंजिल का बूढ़ा' कहानी को छोड़ दें तो सभी कहानियां आदिवासी समाज की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। कहानी संग्रह की पहली कहानी 'जहां फूलों का खिलना मना है' में कथावाचक और मीतू के माध्यम से झारखंड के अलग राज्य बनने के बाद की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। झारखंड को बने नौ साल पूरे हो गए हैं लेकिन सामाजिक स्थितियों जैसे नक्सलवाद और भ्रष्टाचार में कोई बदलाव नहीं है। कहानी की पात्र मीतू, उदयपुर के स्टेट ऐजुकेशन रिसोर्स सेंटर में काम करती है और शिक्षा नवाचार में आदिवासी शिक्षण परंपरा पर अध्ययन कर रही है। इसी सिलसिले में वह झारखंड में आदिवासियों के बारे जानकारी हासिल करने आती है और स्थितियों का आकलन करती है। 'जहां फूलों का खिलना मना है' कहानी में लेखक अश्विनी कुमार पंकज, झारखंड की राजनीतिक समस्याओं और चुनौतियों को लेकर सचेत हैं। झारखंड देश के सभी आदिवासी क्षेत्रों के मुकाबले सबसे पहले राजनीतिक स्तर पर चेतना संपन्न हुई है। जिसकी जनता करीब ढाई सौ साल से अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है। अलग झारखंड राज्य भी बन गया जहां आदिवासी ही सत्ता में हैं। सत्ता में आए नौ वर्ष बीत गए लेकिन आदिवासियों की समस्याएं ज्यों की त्यों ही दिखाई देती है। सत्ता में आने के बाद क्या उन्हें मूलभूत अधिकार से वंचित नहीं रखा गया? क्या झारखंड राज्य बनने के बाद नक्सलवाद, भ्रष्टाचार जैसी समस्याऐं कम हुई? ऐसा क्यों है कि आदिवासियों की ही सत्ता राज्य में होने के बावजूद आदिवासी अपने अधिकारों से वंचित है? इस संदर्भ में कहानी का यह अंश उल्लेखनीय है--'झारखंड की सत्ता पर रहे सभी चेहरे जरूर आदिवासी हैं, लेकिन वे जिसकी उपज हैं और इस पूरे खेल के पीछे कौन है यह भी तो सोचो। यहां होता वही है जो मुख्यधारा चाहता है। आदिवासियों की आड़ में जिन लोगों ने अपने हित साधे हैं, वही लोग मीडिया के जोर पर आदिवासियत को बदनाम करने लगे हैं।'[1]

आज भी झारखंड, छत्तीसगढ़ के क्षेत्रों में नक्सलवाद के नाम पर बंदूख चल रहे हैं और हर पार्टी अपनी रानीतिक रोटियां सेंक रही है। दोनों तरफ की गोलाबारी में आदिवासी ही मर रहे हैं। ऐसे में आम आदिवासी के पास विकल्प नहीं है कि वह किसे चुने। नक्सली को शरण देने के आरोप में पुलिस प्रशासन की बंदूक से आम आदिवासी का सीना ही छलनी हो रहा है। लेखक की गहरी चिंता इस ओर है कि मुख्यधारा की राजनीति किस तरह राज्य के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए इन आदिवासियों के चेहरों का इस्तेमाल कर उनकी आदिवासियत को मीडिया के दम पर बदनाम करने की भी कोशिश होरही है। 'वह इसलिए कि पिछले नौ सालों में

डॉ. स्नेहलता नेगी
सहायक प्रो. हिंदी विभाग
पता- ए-2/3, यूजीएचजी, ढाका हॉस्टल काम्पलेक्स, ऑपोजिट इंदिरा विहार, यूनिवर्सिटी ऑफ दिल्ली-9

डेढ़ सौ से ज्यादा बहुराष्ट्रीय खनन कंपनियों के साथ किए गए करार को झारखंड के आदिवासी लागू नहीं होने दे रहे हैं।'[2] मीतू राज्य में नक्सलवाद की स्थिति के बारे में पूछती है तो उसकी सहेली उसे बताती है कि-' बस इतना ही कि वे भटके हुए लोग हैं। बंदूक की बजाय जनता की गोलाबंदी पर उनका विश्वास जिस दिन हो जाएगा, देखना यह सत्ता और सरकार रेत की दीवार की तरह भरभरा कर गिर पड़ेंगी।'[3] मीतू को हैरत होती है कि उसकी सहेली नक्सलवाद की रणनीति का पक्ष ले रही है, और कहती है कि क्या वह कम्यूनिस्ट हो गई है? यहां लेखक का सवाल मीतू की सहेली का कम्यूनिस्ट होने न होने का नहीं है उससे ज्यादा महत्वपूर्ण सवाल है न्याय और अन्याय के पक्ष में होने का है। यहां लेखक आदिवासियों के प्रति सरकार की नियत पर सवाल उठाता है--'जो संसद पिछले कई सालों से महिला बिल को पास नहीं होने दे रहा है, वह देश के गरीब, कमजोर वंचित जनता के साथ किस तरह से पेश आता रहा

135

Scanned with CamScanner

होगा।'[4] यह विचारणीय है।

कहानी में झारखंड की राजनीतिक परिस्थिति को दर्शाने और राजनीतिक चेतना जागृत करने में मीडिया की भूमिका अहम रही है। यहां मीडिया जिस तरह के चुनाव के रिर्पोट प्रस्तुत करता रहा है वह मुख्यधारा की राजनीति की साफ-सुथरी छवि को ही भुनाने में लगा हुआ है और मधु कोड़ा की राजनीति को भ्रष्ट करती दिखाई देती है। मीडिया को लेकर मीतू का कथन देखने योग्य है--'मुझे तो लगता है कि इस बार चुनाव जनता नहीं यहां के अखबार लड़ रहे हैं। सुबह समाचार और दूसरे अखबारों ने यहां जिस तरह कैम्पेन चला रखा है वह संभवतः पत्रकारिता के इतिहास में अब तक नहीं हुआ था।'[5] आदिवासियों की अपनी राज व्यवस्था रही है जिसे धीरे-धीरे मुख्यधारा की राजनीति ने ध्वस्त कर दिया। आदिवासी आज मुख्यधारा की राजनीति में शामिल तो हो गए हैं लेकिन सत्ता का संचालन मुख्यधारा की राजनीति के अनुकूल ही चल रहा है। इस संदर्भ में हेरॉल्ड एस.तोपनो की यह बात उल्लेखनीय है --'राजनीति में बेदखल जनजातियों को एक सुनियोजित तरीके से लाने की पहल राष्ट्रीय सरकार कर रही है। मगर इसके फलस्वरूप जन-जातियों की परंपरागत राजनीतिक संस्था तहस-नहस हो गई और उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता खो दी। इन्हें प्रभावी समाज की राजनीति में ढकेला गया। उनको राष्ट्रीय राज्यव्यवस्था की राजनीति में शामिल करने के लिए उन पर प्रभावी समाज के लोगों को थोपा गया । राज्य का कानून और न्याय-व्यवस्था पुलिस और जेल उनकी इच्छा के विरूद्ध थोपा गया। कर और लेवी ने भी जनजातीय समाज को जकड़ने में राज्य की मदद की। नतीजतन जनजातियां राजनीतिक रूप से असहाय हुई और उन्हें हाशिए पर डाल दिया गया। जहां प्रभावित समाज शोषित ही रहे हैं।'[6]

यहां स्पष्ट है कि मीडिया किसी न किसी रूप में राजनीतिक सत्ता के साथ खड़ा है। झारखंड की मौजूदा राजनीति पर सवाल खड़ा कर क्षेत्रीय राजनीति को क्लीन चिट देने का काम मीडिया करती हुई दिखाई देती है। लेखक मीडिया की जवाबदेही और उत्तरदायित्व पर जब तब सवाल उठाता है कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह मीडिया को जनता के हित में बिना राजनीतिक पक्ष लिए खड़ा होने की ज़रूरत है ताकि मीडिया लोकतंत्र का मजबूत स्तंभ' बन सके। कहानी में यह भी दिखाया गया कि किस तरह मीडिया अपने पोलिटिकल एजेंडा पाठकों पर थोपता है और बिना चुनाव लड़े झारखंड की सत्ता पर नियंत्रण करना चाहता है। और किस तरह कॉरपोरेट घरानों का मीडिया पर कब्जा लोकतंत्र की निष्पक्षता और उसकी आवाज को कमजोर करने का काम कर रही है।

लेखक अश्विनी कुमार पंकज मीडिया में स्त्रियों के प्रतिनिधि पर सवाल उठाता है। मीडिया के क्षेत्र में स्त्रियों को लेकर आज भी मानसिकता में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। मीतू की सहेली के माध्यम से मीडिया में स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन करते हैं। मीतू की सहेली के जो मीडिया में अपना कैरियर आजमा चुकी है वह वहां की स्त्रियों पर बात करते हुए कहती है-' यार यह समाज और देश औरतों के बारे में इससे आगे कभी नहीं सोच सकता। हम आज भी उनके लिए नर्क के द्वार से ज्यादा हैसियत नहीं रखते।'[7] आदिवासियों को सरकारी क्षेत्र में रोजगार में संविधान द्वारा आरक्षण का अधिकार तो मिला लेकिन यह देखने की जरूरत है कि आरक्षित सीट पर दूसरों को बिठाया जाता है। आदिवासियों के साथ यह ज्यादा हुआ है उन्हें मालुम है कि शांतिप्रिय आदिवासी उनका उस तरह विरोध नहीं करेंगे, जिस तरह अन्य पिछड़ा वर्ग करता है। कहानीकार इस कहानी में आदिवासी युवक जो किसी समय रांची के किसी कॉलेज में एडहाक लेक्चरर था जब नौकरी पक्की होने की बात आई तो उस आदिवासी की जगह कोई दूसरा आ बैठता है। आज वह अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए रिक्शा चलाकर गुजारा कर रहा है। यहां मीडिया को अहम भूमिका निभानी चाहिए थी ताकि सरकार तक ऐसे लोगों की आवाज पहुंचे लेकिन पूरे मीडिया में सन्नाटा छाया हुआ है। यही लोकतंत्र का तकाजा है। कहानी का शीर्षक 'जहां फूलों का खिलना मना है' अपनी सार्थकता सिद्ध करता है कि आदिवासी क्षेत्रों में नए विचार, आंदोलन और चेतना के बीच प्रस्फुटित न होने पाएं यही कोशिश सत्ता के मठाधीश, कॉरपोरेट घराने और खदान कंपनियां करती नजर आती हैं। अगर आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोह और चेतना के फूल खिलने लगें तो इनकी दुकानें बंद होते देर नहीं लगेगी। ●

संदर्भ- इसी सदी के असुर-अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन रांची, झारखंड, सं. 2010, पृ.14

2. वही पृ 14. 3. वही पृ.14. 4. वही पृ. 14. 5. वही पृ.16. 6. उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष, हेराल्ड एस. तोपनी, संपा. अश्विनी कुमार पंकज, विकल्प प्रकाशन , सं. 2015, पृ. 54--55 7. वही पृ. 18

Scanned with CamScanner

The Perspective

International Journal of Social Science and Humanities

An Online, Peer-Reviewed, Indexed and Refereed Journal
A Quarterly, Bi-Lingual Research Journal Published in English & Hindi

Vol. – 1 Issue – 1 February – April, 2020

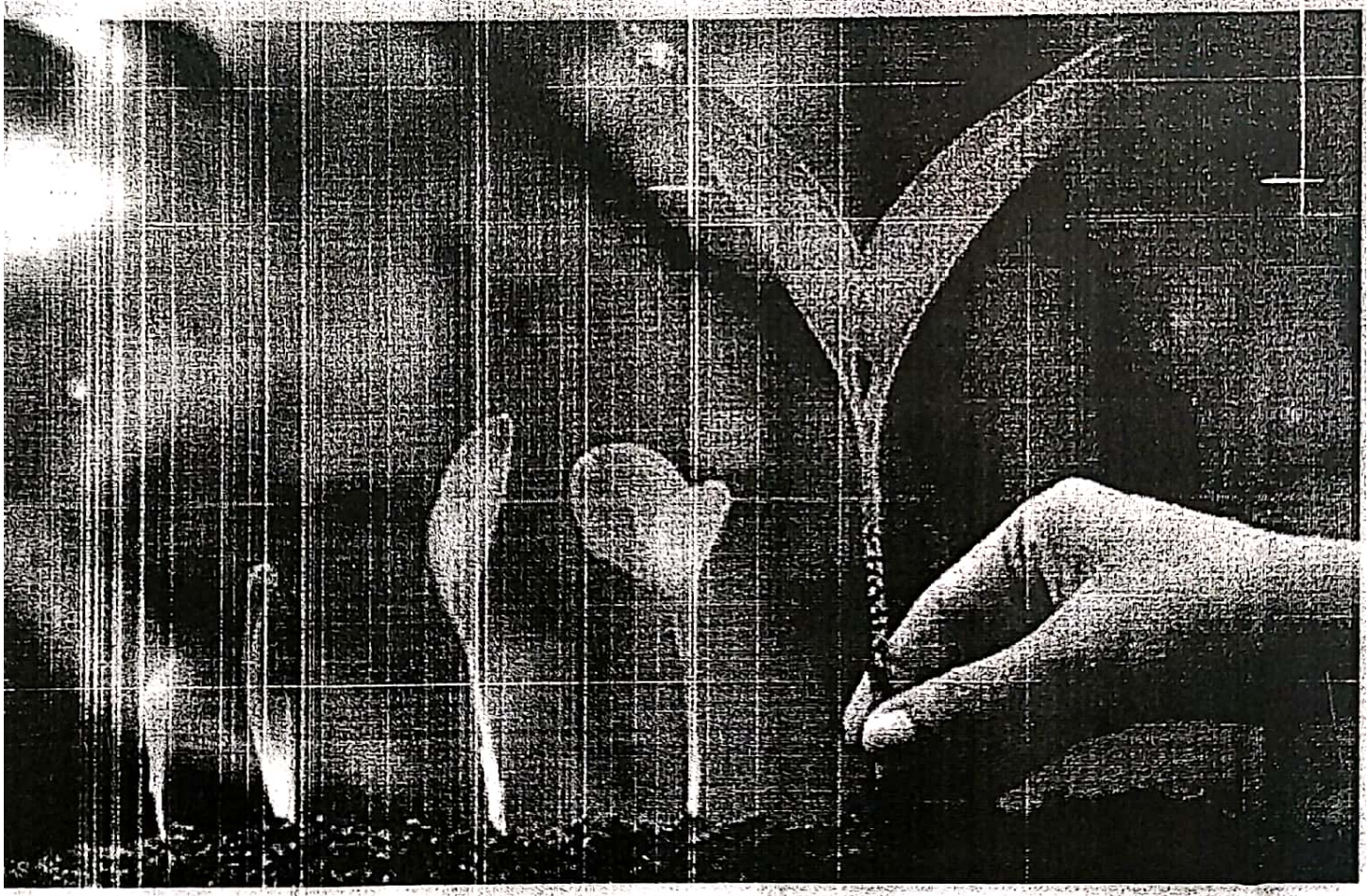

Editor

Dr. Sunil Kumar 'Suman'

Co-Editor

Anish Kumar
Neetisha Khalkho
Rajneesh Kumar Ambedkar

137

Website - www.tpijssh.com E-mail - editor.tpijssh@gmail.com

Scanned with CamScanner

- संपादकीय - पहला क़दम

Research Article

1. **Role of Media in Socio-Cultural Change of Tribal Society in Vidarbha** Pages 1-11
   Saddam Hossain, Chetan Bhatt
2. **Demonetization in a drought affected region: A study among small and marginal farmers in Thiruvarur district, Tamil Nadu** Pages 12-19
   Ravindra Kumar
3. **हिन्दी दलित-काव्य लेखन की पार्श्वभूमि और नब्बे के दशक के बाद की कविताएं** Pages 20-40
   डॉ. सुशीला टाकभौरे
4. **आदि धर्म बोन और आदिवासी जीवन दर्शन (विशेष संदर्भ किन्नौर)** Pages 41-45
   डॉ. स्नेहलता नेगी
5. **भाषा का सत्ता विमर्श** Pages 46-50
   डॉ. किंगसन सिंह पटेल
6. **उराँव और मुण्डा आदिवासियों के मृत्यु संस्कार** Pages 51-55
   डॉ. तेतरू उराँव
7. **हिंदी नाटक के विकास में अनुवाद की भूमिका** Pages 56-62
   डॉ. अनुराधा पाण्डेय
8. **आदिवासी कथाकार मंगल सिंह मुंडा का कथा जगत** Pages 63-68
   पुनीता जैन
9. **तुलसीराम की आत्मकथा में अभिव्यक्त विकलांगता का दंश** Pages 69-74
   डॉ. संध्या कुमारी

Review Article

10. **Attitude of students towards research: a review** Pages 75-78
    Zainul Abdin Rind

Scanned with CamScanner

The Perspective
International Journal of Social Science and Humanities
An Online, Peer-Reviewed, Indexed and Refereed Journal
A Quarterly, Bi-Lingual Research Journal Published in English & Hindi
Vol. - 1 | Issue - 1 | February – April, 2020

आदि धर्म बोन और आदिवासी जीवन दर्शन (विशेष संदर्भ किन्नौर)

डॉ. स्नेहलता नेगी
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत, Email: negi.sneh@gmail.com

हिमालय की गोद में बसा किन्नौर अपनी प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ यहां के लोगों की खूबसूरती के लिए भी जाना जाता है। यहां खूबसूरती तन की नहीं बल्कि मन की सरल व सहज खूबसूरती से है। समय-समय पर बाहर के लोगों का आवागमन किन्नौर में रहा है। जिसको जैसा लगा, उसने उसे वैसा नाम दिया इसलिए किन्नौर को कई नामों से जाना जाता है। जैसे- कनौर, कानावर, कुनावर, खूनू, किन्नर देश और यहां के स्थानीय लोग इसे कनौरिङ कहते हैं। ग्राहम बैली ने लिखा है 'जहां तक मैं जानता हूं कनावर नाम यूरोपियन के कारण है। मैंने कभी किसी स्थानीय व्यक्ति को इस तरह उच्चारण करते नहीं सुना है।' (so far as I know the form Kanawar is due to Europeans I have never heard a native pronounce the word in that way)'[1]

कनौरिङ शब्द स्थान विशेष के लिए प्रयुक्त किया जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने इस क्षेत्र को 'किन्नर देश' कहा है और यहां के लोगों को वे 'किन्नर या किंपुरुष देवयोनि'[2] मानते हैं जिसका हमें इतिहास नहीं मिलता। यह बात डॉ. संपूर्णानंद के इस कथन से पुष्ट होती है। वे लिखते हैं कि "हिंदुओं के प्रथम तथा प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद में किन्नरों का वर्णन नहीं आया है।"[3] लेकिन 'वायु पुराण में महानील पर्वत पर किन्नरों का निवास स्थान बताया गया है।'[4] डी. सी. सरकार के अनुसार गंधर्व तथा किन्नर आदिम जातियां थीं, पर बाद में वे पौराणिक कथाओं में इस रूप में प्रयुक्त ना होकर पौराणिक देवयोनियों (मेथेलॉजिकल बींग) के रूप में आए। उनका कथन है कि संभवत किन्नर और यक्ष हिमालय की आदिम जातियां थीं और गंधर्व गांधार के निवासियों को कहा जाता है। भारवि ने 'किरातार्जुनीय' महाकाव्य के हिमालय वर्णन खंड में 'इनके दर्शन मात्र से पाप समूहों का नष्ट होना स्वीकार किया है।'[5] इसी हिमालय में किन्नर गंधर्व यक्ष तथा अप्सराओं आदि देवयोनियों के निवास स्थान होने के संबंध में अनेक संकेत मिलते हैं। हिमालय की पवित्रता के कारण यहां निवास करने वाले लोग भी श्रद्धास्पद बन गए होंगे ऐसा मालूम पड़ता है। "धर्म के आधार विश्वास एवं श्रद्धा होते हैं। अतः आलौकिक कथाओं को पढ़ते और सुनते समय पाठकों एवं श्रोताओं में जानकारी का प्रायः अभाव रहता है। अनेक पौराणिक जातियां तथा देवता किसी समय वास्तविक रूप में पृथ्वी पर निवास कर चुके होते उनके कार्यों को अलौकिक प्राणियों के कार्य के समकक्ष बिठाया जाता है और उनके द्वारा असंभव को संभव होना बताया जाता है।"[6]

जितने भी अध्ययन किन्नौरवासियों के संबंध में आज तक हुए सभी एकदूसरे के विरुद्ध दिखाई देते है। एक तरफ उसे देवयोनि या अप्सराओं की श्रेणी में रखा गया तो दूसरी तरफ निम्न संस्कृति की श्रेणी में रखा गया। डी. सी. सरकार लिखते है कि 'किन्नर, राक्षस तथा किन्नरों को न्यून संस्कृति का तथा अन्य जातियों के साथ संबंधित मानते है।' पी. थोमस के अनुसार 'गंधर्व किन्नर तथा अप्सराएं स्वर्ग में नहीं रहते बल्कि पौराणिक पर्वतों पर निवास करते है। इन पर मनु के नियम लागू नहीं होते।'

140

Scanned with CamScanner

डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन ने किन्नौर के बोलियों पर मुंडा प्रभाव सिद्ध करने की कोशिश की है। डॉ. वंशीराम शर्मा यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि "निश्चित ही किन्नर क्षेत्र के प्राचीन निवासी 'बोन' जाति से संबंधित है। क्योंकि जैसा कि अन्यत्र भी बताया गया है कि किन्नौर के महत्वपूर्ण गांव कामरु जहां प्रागैतिहासिक कालीन दुर्ग में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक रामपुर बुशहर के राजाओं के अभिषेक की प्रथा रही है। तथा स्थानीय नाम 'बोनं' रहा है । मोनं शब्द स्पष्टतः 'बोन' जाति से संबंधित है।"

ज़ंस्कार घाटी के सभी वर्ग को बोन कहा जाता है। ए. एच. फ्रेंके के अनुसार 'बोन भारतीय आदिम जाति थी तथा इस प्रजाति के लोगों के मुख्य व्यवसाय पशु 'क्याङ' (जंगली बकरा तथा जंगली याक) पश्चिमी क्षेत्रों की चरागाहों में काफी दूर तक विचरण करते थे।" यह संभावना देखी जा सकती है कि बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व तिब्बत के साथ इस जाति के संबंध रहे होंगे। क्योंकि इस संस्कृति के प्राचीन अवशेष आज भी किन्नौर ज़ंस्कार और अरुणाचल में देखे जा सकते हैं।

वर्तमान में ज़ंस्कार घाटी में इस जाति के लोग अछूत समझे जाते हैं तथा बढ़ई आदि के कार्य करते हैं। यह विचित्र संयोग है कि किन्नर क्षेत्र के एक देव कथा संबंधित गीत में बाणासुर तथा हिरमा के एक दूसरे के अचानक मिलने पर बाणासुर हिरमा से पूछता है कि वह कहां से आ रही है। तो हिरमा उत्तर देती है। कि वह कुल्लू शहर से आ रही है। हिरमा द्वारा बाणासुर को यही प्रश्न पूछने पर बाणासुर कहता है वह 'गुगे' प्रदेश से आ रहा है। जो पश्चिमी तिब्बत का किन्नौर के साथ लगने वाला क्षेत्र है तथा चंद्रवंशी क्षेत्र पर भारतीय हिंदू राजाओं का पर्याप्त समय तक अधिकार रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि 'बोन' आरंभ में तिब्बत के साथ लगने वाला भारतीय क्षेत्र में प्रमुखतः प्रभुत्व संपन्न थे तथा बाणासुर उनका महान नेता था।

उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि किन्नौर में किन्नर, खश, बोन और कुनिंद आदि आदिम समुदाय के लोग रहे हैं। जिन्हें वर्तमान में भारतीय संविधान द्वारा 'Kinnaura Tribes' से चिन्हित किया गया है। अन्य आदिवासी समाज की तरह यहां के स्थानीय निवासी का प्रकृति के प्रति गहरी आस्था और विश्वास है जिसे यहां बोन धर्म कहा गया है। यह वास्तव में प्रकृति की सत्ता अपने पूर्वजों के प्रति आस्था और विश्वास के आधार पर टिका हुआ है। यहां कहा जाता है कि बौद्ध धर्म से पूर्व किन्नौर लद्दाख और स्पीति आदि हिमालय क्षेत्रों में प्रकृति के प्रति जो आस्था है उसी को धर्म माना जाता था। जब बौद्ध धर्म सातवीं शताब्दी में पदम संभव के समय किन्नौर में आया, ऐसा माना जाता है और ।0वीं ।।वीं शताब्दी में रिंगछेन ज़ंगपो के समय इसका प्रचार-प्रसार होने लगा। पदम संभव से पहले बौद्ध धर्म के किन्नौर, लद्दाख और लाहौल आदि क्षेत्रों में होने का प्रमाण नहीं मिलता है। कालांतर में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार इन क्षेत्रों में बढ़ने लगा और यहाँ के लोगों ने भी बौद्ध धर्म को सहर्ष अपनाया। इसके पीछे बहुत बड़ा कारण यह रहा कि आदि धर्म बोन और बौद्ध धर्म में बहुत सी समानताएं थी। और बौद्ध धर्म ने स्थानीय समाज की आदि धर्म बोन की बहुत सी परंपराओं को ग्रहण किया है। जैसे शुरकू लगाना (जंगल में मिलने वाला एक प्रकार का धूप), सुर लगाना (सत्तू और घी का मिश्रण जो शाम के समय किसी पत्थर पर कोयला रखकर जलाया जाता है), लुबेप लगाना (नाग की पूजना) आदि आज भी प्रचलन में है। इसी तरह प्रकृति के तत्वों में जीवन के उत्स को खोजने की कला आदिवासी जीवन की अनूठी शैली है। प्रकृति के कण कण से आदिवासी जीवन और जीवन दर्शन निर्मित होता है। किन्नौर के बोन परंपरा के अंतर्गत आने वाली कुछ विशेषताओं में से हम यहां आदिवासी जीवन दर्शन को देख सकते हैं।

सुर लगाना -

सुर लगाने की परंपरा के अंतर्गत सुर अर्थात सत्तू और घी के मिश्रण से बना पदार्थ होता है जिसे प्रयोग होने से पहले [illegible] पत्थर के ऊपर रखे कोयले पर डाला जाता है [illegible] उससे धुआं उठने लगता है। यह माना जाता है कि [illegible] आत्माओं और [illegible] के लिए [illegible] अपनी आस्था को प्रकट करता है। [illegible] जीव [illegible]

बल्कि उनका पेट सुगंध से भर जाता है। उनके लिए और पूर्वजों के भोजन के रूप में सुर लगाने की परंपरा है। यहां आदिवासी दर्शन यह है कि वह स्वयं तक केंद्रित नहीं है बल्कि निराकार तत्वों के प्रति भी उतना ही संवेदनशील है। यहां हम आदिवासी जीवन दर्शन के विस्तार को देख सकते हैं। उसी तरह प्रातः काल में शुरु का लगाना भी इसी तरह की मान्यता से जुड़ा हुआ है। जंगल में मिलने वाले प्राकृतिक धूप को जला कर सुबह-सुबह बडे-बडे पहाड़, पर्वत श्रृंखलाओं, नदी-नाले, आत्माओं और पूर्वजों के प्रति आभार व्यक्त कर श्रद्धासुमन अर्पित करने की परंपरा यहाँ की समृद्ध परंपरा को दर्शाता है।

दरछोद लगाना -

घर के छत के किनारे और छत के चारों ओर झंडा लगाने की परंपरा से है। हिमालय के सभी बौद्ध क्षेत्रों में छत पर दरछोद लगाने की परंपरा है जो बोन परंपरा से ही बौद्ध धर्म में आया है। सफेद,लाल, नीला, पीला आदि कपड़े पर छोइ (भोटी भाषा में बौद्ध मंत्र) की छपाई होती है। अधिकांश लोग लुंगता का दरछोद लगाते हैं। यहां 'लुंग' का अर्थ मन से है और मन को हवा की तरह माना जाता है और 'ता' का अर्थ घोड़ा है। दौड़ता हुआ घोड़ा जो प्रतीक है रफ्तार का बहाव का दरछोद में दौड़ता हुआ घोड़ा भी होता है। जिस संदर्भ में यह मान्यता है कि घोड़ा रफ्तार के साथ मन के सभी विकार और परिवार के ऊपर पर आने वाली सभी तरह की बुराइयों को दूर करने में समर्थ होता है। और सभी बुराइयाँ हवा में विलीन हो जाती है। इसलिए दरछोद हमेशा ही ऊंची जगहों पर जहाँ हवा का बहाव तेज़ हो, पुल पर या नदी नालों के आसपास लगाया जाता है ताकि हवा और पानी के तेज़ बहाव के साथ सभी तरह की बुराइयाँ बह जाएँ।

किन्नौर में लोसर (नव वर्ष) के दिन और बड़े शुभ अवसरों पर घर में पुराना दरछोद को बदल कर नया लगाया जाता है। किन्नौर में लोसर (नववर्ष) दिसंबर माह में शुरू होते हुए जनवरी तक अलग-अलग गांव में अलग-अलग दिन मनाया जाता है। दरछोद को लगाने के पीछे का दर्शन यह है किव्यक्ति के भीतर के बुरे लक्षण और बुरे ग्रह सब उस हवा के बहाव में बह जाते हैं और पानी की चमक अपने में सो कर कहीं खत्म कर लेता है। दूसरा यह कि दरछोद लगाने के पिछले एक वैज्ञानिक सोच भी है। दरछोद एक तरह घर का पारंपरिक अर्थिंग भी है। दरछोद के ऊपर लोहे का बना तीखा त्रिशूल जैसी वस्तु जब आसमान में बिजली कडकने पर या बिजली के गिरने पर बिजली उसी लोहे की बनी तीखी वस्तु से टकरा कर उस की ऊर्जा वहीं नष्ट हो जाती है और मकान को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचता। इस से हमें ज्ञात होता है कि हमारे पूवर्जों की सोच कितनी वैज्ञानिक थी।

च्यान सोलमा -

चान का अर्थ है लाल रंग का तिकोना पत्थर, सोलमा का अर्थ है पूजना। जिसे यहां के लोग अपने घर के छत अग्रभाग के कोने पर रखते हैं। चान को यहाँ के लोग उन के रक्षक मानते हैं। चान को छत पर रखने के पीछे की मान्यता यह है कि बड़े-बड़े पहाड़ पर्वत श्रृंखलाएं हमारी जीवनदायिनी है। वह है तो हमारा जीवन सुरक्षित है। चान सोलमा के पीछे की एक मान्यता यह भी है जीवन के जो भी स्रोत है उन्हें हमेशा प्रसन्न रखना और उसके प्रति आभार का भाव व्यक्त करने का किन्नौर के लोगों का अपना तरीका है। चान कहीं न कही बड़े-बड़े पहाड़ों का एक छोटा प्रतिरूप है जो रक्षक के रूप में घर के छत पर विराजमान है। चान को लाल रंग की मिट्टी से मंगलवार के दिन पूजा जाता है। यहाँ लाल रंग को चुनने के पीछे का कारण मुझे लगता है कि सूरज जब उदय होता है तो बर्फीली पहाड़ियों पर अलग तरह की लालिमा आती है और चान भी सुबह-सुबह ही पूजा जाता है। उसी दृश्य से जुड़ा हुआ हो सकता है।

लुमो लुथेप -

लुमो (नग) को धरती के भीतर की सत्ता के रूप में देखा जाता है और जहां भी चश्मे का पानी निकलता है। माना जाता है कि वहां लुमो का वास है। इसलिए चश्मे के पानी को लुमो भी कहा जाता है जो सर्दियों में गर्म और गर्मियों में ठंडा होता है। जब

142

Scanned with CamScanner

सर्दियों में होती है और बर्फ पडती है, सब कुछ जम जाता है लेकिन लुमो ती (चश्में का पानी) नहीं जमता । सर्दियों में लुमो ही पानी का महत्वपूर्ण स्रोत है । कहते हैं कि लुमो सर्दियों में उस गर्म जगह पर रहता है और पानी को प्रवाहित करता है । लुमो वाली जगह को हमेशा ही लीप पोत कर साफ रखा जाता है । हर घर में भी लोगों के लिए विशेष स्थान है । जहां लुमो को पूजने के लिए लुधेप लगाया जाता है । लुमो कहीं ना कहीं पानी के स्रोत के रूप में पूजनीय है । इसलिए उसके साथ छेड़छाड़ करने की गलती यहां के लोग नहीं करते । लुमो वाली जगह पर कोई खुदाई भी नहीं की जाती है । यह मान्यता है कि खुदाई करने पर लुमो को नुकसान पहुंचता है और वह नाराज होकर और पानी को सोख लेता है । लुमो बोन परंपरा का अभिन्न हिस्सा है और आज समानांतर रूप में बौद्ध धर्म का भी अभिन्न हिस्सा है । लुमो के प्रति यहाँ के लोगों में गहरी आस्था है ।

छवारमिग / दगपातीमा -

इसका अभिप्राय है कि जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तो छत पर या कहीं साफ जगह पर समतल पत्थर के ऊपर मृत व्यक्ति को जो भोजन या पेय पसंद हो, वह उस पत्थर पर रख दिया जाता है । मान्यता यह है कि पशु पक्षी के माध्यम से यह भोजन उसे पहुंचता है। दूसरा दर्शन यह भी है कि बाहर भोजन लगाने के बहाने हम प्रकृति के जीव-जंतु, पशु-पक्षी का भी भरण-पोषण कर रहे हैं । यह सब व्यक्ति को प्रकृति के अन्य प्राणियों के प्रति जिम्मेदारी के भाव को भी प्रकट करता है । इस तरह बड़े त्यौहार-पर्व में भी निर्धारित पहाड़ी पर जाकर अपने पूर्वजों को फल- फूल आदि उत्तम भोजन अर्पित कर उनके प्रति श्रद्धा और समर्पण का भाव व्यक्त करने की परंपरा यहां के समाज में है।

सावनी -

सावनी (अप्सराओं के रूप में) को निराकार माना गया है और वह पहाडों में जहां कोई नहीं हो, वहां उनके होने की बात कही गई है । कहा जाता है अगर आप पहाड़ की चोटियों पर कहीं जाते हैं तो सबसे पहले सावनी को पूजना जरूरी है । हमारे यहां एक लोक-गीत है, जिसमें एक भेड़ बकरी चराने वाली स्त्री पहाड़ पर बकरी चराते हुए सावनी को पूजते हुए कहती है कि आपके लिए यह सब पूजा सामग्री अर्पित है और आप हमारे भेड़- बकरियों की रक्षा करना । शुरकू और सुर लगा कर कहती है जो कुछ है आप सभी को अर्पित कर रही हूं, स्वीकार करें । यह भी माना जाता है कि सावनी हवा की तरह गतिमान होती है । माघ के महीने में लामोध त्यौहार मेंसावनी का पंद्रह दिन दोपहर में जूते, (फाफरा के आटे का बना नमकीन जलेबी के आकार का व्यंजन), खुग (पूरी), पोली (फाफरा का चीला), (मार कोन) जौ के सत्तू का बना व्यंजन घी के साथ खाया जाता है) से पूजा जाता है और कहा जाता है कि जब पहाडों पर अत्यधिक बर्फ पडती है तो यह सावनी भी नीचे उतरती है । गांव के लोग अलग-अलग पारंपरिक व्यंजनों से उनका आदर सत्कार करते हैं । इसी तरह सूर्य ग्रहण और चंद्र ग्रहण के समय भी यहां के लोग बड़ेबड़े परात, पतीला, तवा और थाली आदि को बजाते हुए जोर-जोर से शोर मचाते हुए सूर्य और चंद्रमा को ग्रहण से मुक्त करने की कोशिश करते है। जो पुनः प्रकृति की सत्ता को स्वीकारते हुए उसकी रक्षा करने की परंपरा को ही दर्शाती है । यह माना जाता है कि सूर्य और चंद्रमा जीवन में ऊर्जा प्रदान करने का स्रोत है जो जीवन को सचित और सिंचित और संवर्धित करता है अगर वह है तो जीवन है इसलिए उसके प्रति भी आभार व्यक्त करते हुए सूर्य चंद्रमा के उस ग्रहण के समय उसे मुक्त करने की आदिवासी समाज की एक अभिन्न अनूठी परंपरा देखी जा सकती है ।

जीवन की अंतिम यात्रा हर समाज में महत्वपूर्ण होती है । किन्नौर में भी अंतिम संस्कारविशेष महत्त्व रखता है, जिसमें शुभ अशुभ का भी विचार किया जाता है । अंतिम सम्स्कार के समय किन्नौर के कुछ क्षेत्रों में शव को लेटा कर अंतिम यात्रा पर नहीं ले जाया जाता है । शव को लेटा कर [illegible] जाना अशुभ माना जाता है । बल्कि शव को बैठाकर पालकी में ले जाया जाता है । इसके पीछे [illegible] मान्यता है कि मृत्यु के पश्चात मनुष्य पुनः मनुष्य के रूप में [illegible] जन्म ले । [illegible] आदि धर्म बोन बौद्ध [illegible] और दर्शन से [illegible] आता है । आदि दर्शन मोक्ष नहीं बल्कि जीवन का महत्व देता है । जबकि बुद्ध का दर्शन हमें जीवन चक्र से [illegible] की प्राप्ति

Scanned with CamScanner

देता है। इसीलिए शव को लेटा कर अंतिम संस्कार के लिए नहीं ले जाते। बल्कि मनुष्य जैसे समान्यतया बैठता है उसी स्थिति में उसे अंतिम विदाई दी जाती है। ताकि वह पुनः उसी तरह अपने जीवन में लौट आए और अपनी प्रकृति, अपनी व्यवस्था में पुनः शामिल हो सके।

उपरोक्त सभी तथ्य, जो आदिवासी जीवन से जुड़े हुए हैं.उसके मूल में प्रकृति और जीवन के प्रति अतुल्य आस्था और प्रकृति के साथ समतुल्यता के दर्शन को देखा जा सकता है, जो यहाँ के लोगों का धर्म भी है। इसीलिए किन्नौर में बौद्ध धर्म में आदिवासी जीवन के अनेक तत्व, परंपराएँ जो सनत् आदि धर्म की परंपराओं से लिया गया है। जो यह दर्शाता है कि आदिवासी जीवन में वह सब है जो बड़े-बड़े धर्म भी उसकी जीवनशैली को उसकी विशेषताओं को अपनाने से पीछे नहीं हटे। इसीलिए किन्नौर, लाहौल स्पीति, लद्दाख आदि क्षेत्रों में बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के साथ-साथ बोन धर्म की अपनी परंपराएँ भी निरंतर चलती रही हैं। लोगों की बौद्ध धर्म के प्रति अगर आस्था है तो वही अपनी आदि धर्म बोन उनके जीवन का आधार है और आदि धर्म बोन का आधार प्रकृति के भीतर की वह अदृश्य शक्तियां है, जो आदिवासी जीवन को संचालित करती हैं, इसीलिए बौद्ध धर्म और बोन धर्म समानांतर रूप में इन क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची -

1. रेव, बाय, ग्राहमवेल, एशियाटिक सोसाइटी मोनोग्राफ, वॉल्यूम- XIII, कनारी वोकैबलरी, पृ. 2
2. सांकृत्यायन, राहुल, (1944), किन्नर देश में, इलाहाबाद : किताब महल, पृ. 1
3. डॉ. संपूर्णानंद (1964), हिंदू देव परिवार का विकास, इलाहाबाद : मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ. 47
4. कुमार, देवेंद्र, राजाराम पाटिल, (1940), कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम द वायु पुराण, वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 81
5. भारवि, किरातार्जुनीय, वाराणसी : चौखम्बा सुभारती प्रकाशन, पांचवा सर्ग, श्लोक 17, 6
6. शर्मा, डॉ. बंशीराम, (1976), किन्नर लोक साहित्य, बिलासपुर : ललित प्रकाशन, पृ. 7
7. सरकार, डी. सी. (1990), स्टडीज इन द ज्योग्राफी ऑफ इन एन्शियंट एंड मिडिवल इंडिया, बनारस : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 62-63
8. शर्मा, डॉ. बंशीराम, (1976), किन्नर लोक साहित्य, बिलासपुर : ललित प्रकाशन, पृ. 22-9
9. फ्रेंक, ए. एच., (1998), हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न तिब्बत, बनारस : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 20-21

144

Scanned with CamScanner

संपादन मंडल

परामर्श मंडल

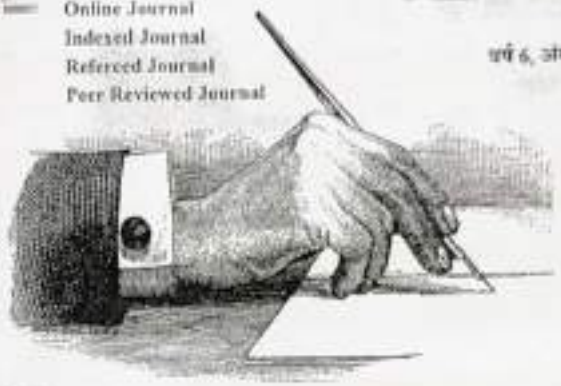

डॉ. सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका), प्रो. सरन घई (कनाडा), प्रो. अनिल जनविजय (रूस), प्रो. राज हीरामन (मॉरीशस), प्रो. उदयनारायण सिंह (कोलकाता), स्व. प्रो. ओमकार कौल (दिल्ली), प्रो. चौथीराम यादव (उत्तर प्रदेश), डॉ. हरीश नवल (दिल्ली), डॉ. हरीश अरोड़ा (दिल्ली), डॉ. रमा (दिल्ली), डॉ. प्रेम जनमेजय (दिल्ली), प्रो. जवरीमल्ल पारख (दिल्ली), पंकज चतुर्वेदी (मध्य प्रदेश), प्रो. रामशरण जोशी (दिल्ली), डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल (राजस्थान), पलाश बिस्वास (कोलकाता), डॉ. कैलाश कुमार मिश्रा (दिल्ली), प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा (उज्जैन), ओम पारीक (कोलकाता), प्रो. विजय कौल (जम्मू), प्रो. महेश आनंद (दिल्ली), निसार अली (छत्तीसगढ़),

संपादक

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा

सह-संपादक

जैनेन्द्र (दिल्ली), कविता सिंह चौहान (मध्य प्रदेश)

कला संपादक

विभा परमार

संपादन मंडल

प्रो. कपिल कुमार (दिल्ली), डॉ. नामदेव (दिल्ली), डॉ. पुनीत बिसारिया (उत्तर प्रदेश), डॉ. विनोद श्रीवास्तव (दिल्ली), डॉ. ऋचा (दिल्ली), डॉ. रूपा सिंह (राजस्थान), स्व. [illegible] यादव (रायपुर), विमलेश त्रिपाठी (कोलकाता), शंकर नाथ तिवारी (त्रिपुरा), बी.एस. मिरगे (महाराष्ट्र), वीणा भाटिया (दिल्ली), वैभव सिंह (दिल्ली), रचना सिंह (दिल्ली), शैलेन्द्र कुमार शुक्ला (उत्तर प्रदेश), संजय शेफर्ड (दिल्ली), [illegible] (कोलकाता), राकेश कुमार (दिल्ली), ज्ञान प्रकाश (दिल्ली), प्रदीप त्रिपाठी (महाराष्ट्र), ओम चंद्र त्रिपाठी (उत्तर प्रदेश), चन्दन कुमार (गोवा)

सहयोगी

गीता पंडित (दिल्ली)
[illegible] (मुंबई, महाराष्ट्र)
मुन्ना कुमार पाण्डेय (दिल्ली)
अखिलेश गौतम (वर्धा, महाराष्ट्र)
महेंद्र प्रजापति (उत्तर प्रदेश)

विदेश प्रतिनिधि

डॉ. अनीता कपूर (कैलिफोर्निया)
डॉ. शिप्रा शिल्पी (जर्मनी)
राकेश माथुर (लन्दन)
मीना चोपड़ा (टोरंटो, कैनेडा)
पूजा अनिल (स्पेन)
अरुण प्रकाश मिश्र (स्लोवेनिया)
ओल्गा गपोनवा (रशिया)
मोहन राणा (यूनाइटेड किंगडम)
पूर्णिमा वर्मन (दुबई)
डॉ. गंगा प्रसाद 'गुणशेखर' (चीन)
Ridma Nishadinee Lansakara, University of Colombo, Sri Lanka
Ekaterina Kostina, Saint Petersburg University
Anna Chelnokova, Saint Petersburg University
सोनिया तनेजा, हिंदी प्राध्यापिका, स्टेनफर्ड विश्वविद्यालय, कैलिफोर्निया
डॉ. इंदु चौहान, संयोजक, हिंदी भाषी प्रोग्राम, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसिफिक, फिजी

Impact Factor: 1.398 [GIF]

(बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका)

जनकृति

Online Journal
Indexed Journal
Refereed Journal
Peer Reviewed Journal

वर्ष 6, अंक 63, जुलाई 2020

INDEX COPERNICUS INTERNATIONAL

International Journal Impact Factor | DRJI

CiteFactor Academic Scientific Journals

IIFS International Impact Factor Services

I2OR International Institute of Organized Research (I2OR)

IFSIJ Measure Of Journal Quality

संपर्क

डॉ. कुमार गौरव मिश्रा, G-2, बागेश्वरी अपार्टमेंट, आर्यापुरी, रातू रोड, रांची, झारखंड, भारत

8805408656

वेबसाईट-www.jankriti.com

ईमेल- ____________________

100

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
	किन्नर-विमर्श/ Third Gender Discourse		
17.	किन्नर जीवन : एक दर्द भरा दास्तान	पूजा सचिन धारगलकर	133-140
18.	संघर्ष की दास्तान बाया थर्ड जेन्डर	डॉ. आलोक कुमार सिंह	141-144
	इतिहास/ History		
19.	ग्वालियर के तोमर शासनकालीन ऐतिहासिक महल	डॉ. आनन्द कुमार शर्मा	145-148
	वाणिज्य/ Commerce		
20.	Comparative Study of HDFC Bank and SBI	Mr. Anilkumar Nirmal Dr. Parvi Derashri	149-162
	साहित्यिक-विमर्श/ Literature Discourse		
21.	नव वैश्विक युवाओं की संघर्ष गाथा 'डार्क हार्स'	धर्मेन्द्र प्रताप सिंह	163-167
22.	डॉ. रामविलास शर्मा के पत्रों में विविध सामाजिक पक्ष	राहुल श्रीवास्तव	168-174
23.	प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में चित्रित पत्रकारिता संदर्भ	डा. पवनेश ठकुराठी	175-181
24.	पहाड़िया साम्राज्य के आदि विद्रोह एवं बलिदान की समरगाथा: हुल पहाड़िया उपन्यास	विकास पराशर	182-186
25.	मानस की भाषिक पूर्वपीठिका के रूप में संस्कृत का अवदान: एक संक्षिप्त विवेचन	डॉ. के. आर महिया	187-191
26.	खोरदेकपा परंपरा की जटिलताएं और 'सोनम' उपन्यास	डॉक्टर स्नेह लता नेगी	192-197
27.	वैश्विक महामारी कोरोना के संदर्भ में: साहित्य की भूमिका	सारिका ठाकुर	198-202
	साहित्यिक रचनाएं		
28.	कविता	पुरूषोत्तम व्यास, कवि (डॉ.) शैलेश शुक्ला, पंडित विनय कुमार, पंकज मिश्र 'अटल'	203-208
29.	कहानी	डॉ.वर्षा कुमारी	209-211
30.	लघुकथा	मुकेश कुमार ऋषि वर्मा	212
31.	व्यंग्य	नरेन्द्र कुमार कुलमित्र दिलीप तेतरवे	213-217
32.	गजल	अनुज पांडेय	218
33.	संस्मरण	उर्मिला शर्मा	219-220
34.	यात्रा वृतांत	संतोष बंसल	221-227
	लोकसाहित्य एवं संस्कृति		
35.	भारतीय लोक साहित्य में पर्यावरण	विकास कुमार गुप्ता	228-230

102

Scanned with CamScanner

खोरदेकपा परंपरा की जटिलताएं और 'सोनम' उपन्यास

डॉक्टर स्नेह लता नेगी,
हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली।

शोध सार

आलोच्य उपन्यास 'सोनम' भूटान के साकतेंग और मिरोक क्षेत्र में तथा अरुणाचल के पश्चिमी श्रेत्र कामेंग और तवांग के आसपास बसने वाले ब्रोक्पा (पशुपालक) आदिवासी समाज की अनोखी एवं विशिष्ट संस्कृति पर आधारित है। इस उपन्यास की कथा याक, चंवरी गाय, भेड़- बकरी और घोड़ा आदि का पालन करने वाले ब्रोक्पा समुदाय जो बहुपति प्रथा का पालन करते हैं के इर्द-गिर्द घूमती है। जिन की सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और प्रथाओं की समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या करने की भी जरूरत है।

बीज शब्द: *उपन्यास, सोनम, भूटान, आदिवासी, समाज, संस्कृति,*

शोध विस्तार

भारत के पूर्वोत्तर में स्थित अरुणाचल प्रदेश के छोटे से गांव 'जिगांव' में येशे दोरजी थोंगछी का जन्म हुआ। थोंगछी जी अरुणाचल की शेरदुकपेन आदिवासी समुदाय से आते हैं। थोंगछी जी बहुभाषाविद हैं। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा की शुरुआत असमिया भाषा से की। कविता कहानी और उपन्यास लेखन में वह बहुत सक्रिय रहे हैं। उनकी महत्वपूर्ण कृतियां 'सोनम', 'पापोर पुखुरी'(पाप का पोखर), 'बा फूलोर गोंधो' (बांस फूल की गंद), 'विष कोन्यार देशोत' (विष कन्या के देश में), ' शो काटा मानुह' (शव काटने वाला आदमी), ' मौन ओंठ मुखौर हृदोय' (मौन होंठ मुखर हृदय) आदि महत्वपूर्ण हैं। सन 2005 में ' मौन होंठ मुखर हृदय' को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। अब तक उनकी रचनाओं का अंग्रेजी, हिंदी, बांग्ला और रूसी भाषा में अनुवाद हुआ है। 'शव काटने वाला आदमी', 'सोनम', 'मौन होंठ मुखर हृदय' का अनुवाद हिंदी में हुआ है। थोंगछी जी की रचनाओं में अरुणाचल की प्राकृतिक सौंदर्य और वहां की अनेक जनजातियों की संस्कृति, रीति-रिवाज, परंपराएं, आचार विचार और उनके आपसी संबंधों का सुंदर चित्रण देखने को मिलता है। प्रस्तुत आलेख में उनकी अनुदित उपन्यास 'सोनम' पर मुख्य रूप से विचार होगा। राष्ट्रपति के रजत कमल पुरस्कार से सम्मानित इस उपन्यास पर फिल्म भी बन चुकी है। जिसे अनेक अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में सराही गई है।आलोच्य उपन्यास 'सोनम' भूटान के साकतेंग और मिरोक क्षेत्र में तथा अरुणाचल के पश्चिमी श्रेत्र कामेंग और तवांग के आसपास बसने वाले ब्रोक्पा (पशुपालक) आदिवासी समाज की अनोखी एवं विशिष्ट संस्कृति पर आधारित है। इस उपन्यास की कथा याक, चंवरी गाय, भेड़- बकरी और घोड़ा आदि का पालन करने वाले ब्रोक्पा समुदाय जो बहुपति प्रथा का पालन करते हैं के इर्द-गिर्द घूमती है। जिन की सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश और प्रथाओं की समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या करने की भी जरूरत है। उपन्यास में ब्रोक्पा समुदाय के खोरदेकपा परंपरा और उससे

Scanned with CamScanner

प्रभावित नायिका सोनम और उसके दो पतियों लबजांग और पेमा वांगछू के बीच संबंधों के बनते बिगड़ते समीकरणों का गहन आंकलन किया है।

ब्रोक्पा यानी पशुपालक समुदाय जो साल के छः महीने दुर्गम पहाड़ियों के चरागाहओं में अपनी जीविका का एकमात्र स्रोत संग प्रवास करता है और जाड़े में अपने गांव लौट आता हैं। युवा लबजांग का खानदानी व्यवसाय भी यही है। आरंभ में लबजांग और सोनाम दोनों बहुत ही सुखी वैवाहिक जीवन जीते हैं। चुंकि लबजांग के परिवार में अन्य कोई सदस्य नहीं है तो लबजांग को ही छः महीने के लिए चरागाहों में पशुओं के साथ पहाड़ियों पर रहना पड़ता है और सोनाम गांव में अकेली पड़ जाती है। ऐसे में पेमा वांगछू मौके का फायदा उठाकर प्रेम याचना लेकर हमेशा ही सोनम के पीछे लगा रहता है। और एकांकी जीवन व्यतीत करती सोनम के मन में भी पेमा के लिए प्रेम का भाव जागृत होता है और यहीं से उपन्यास प्रेम त्रिकोण की जटिलताओं के साथ आगे बढ़ता है। सामान्यता एक पुरुष की अनेक पत्नियां तो हम मुख्यधारा के समाजों में देखने के आदी हैं और हम उसे स्वीकार भी करते हैं क्यों कि अनेक स्त्रियों के साथ पुरुष रह रहा है, पुरुष तो पुरुष है उसे अधिकारी है वह जो चाहे कर सकता है। लेकिन एक स्त्री की एक से अधिक पति देखने की आदत बहुसंख्यक समाज को नहीं है। ऐसे में स्वीकार करने की बात तो सोच ही नहीं सकते हैं। परन्तु ब्रोक्पा समुदायों में एक अनूठी परंपरा है जिसे यहां की भाषा में खोरदेकपा कहा जाता है। जहां दो तीन भाइयों की एक ही स्त्री के साथ विवाह कर दिया जाता। जिसे समाजिक मान्यता प्राप्त है। जो लंबे समय से चली आ रही है।

उपन्यास का मुख्य पात्र लबजांग की मां भी उसी खोरदेकपा परंपरा का पालन करते हुए अपने दोनों पतियों के साथ सुखद जीवन व्यतीत कर चुकी थी। इस संदर्भ में यह पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं: "बर्फीली पहाड़ियों के इस अंचल के ब्रोक्पा समाज में मान्य प्रथा के अनुरूप लबजांग की मां ने उसके पिताजी से विवाह के साथ साथ ही उसके चाचा जी के साथ भी खोरदेकपा अर्थात समानाधिकारिक विवाह किया था। दोनों को अपने पति के रूप में ग्रहण किया था। उन तीनों का जीवन बिना किसी झगड़ा झंझट, बिना किसी प्रकार के मन-मुटाव के बड़े सहज सुंदर ढंग से बीता था"। इसी तरह योनतन, टिकरा और दवा आदि गांव के सभी ब्रोक्पा परिवार इसी तरह के संबंधों का निर्वाह करते हैं। ब्रोक्पाओं में प्रचलित खोरदेकपा प्रथा अरुणाचल के अलावा पश्चिमोत्तर हिमालय के किन्नौर, लाहौल- स्पीति, और लद्दाख आदि क्षेत्रों में भी रही है। इन क्षेत्रों के कबीलाई समुदाय भी ब्रोक्पाओं की तरह ही पशुपालक रहे हैं। यहां भी साल के कुछ महीने घर का पुरुष चरागाहों में अपने पशुधन के साथ रहता और सर्दियों में गर्म इलाकों की ओर प्रस्थान करता। यह सभी कबीलाई पशुपालक हिमालय क्षेत्र में एक स्थान से दूसरे स्थान पर चरागाहों की तलाश में घूमते रहे हैं और देश के अलग-अलग क्षेत्रों में जाकर बस भी गए। अरुणाचल के ब्रोक्पा कबीला लद्दाख में भी ब्रोक्पा के नाम से भी जाना जाता है।इन सभी समुदायों की धार्मिक आस्था, सामाजिक- सांस्कृतिक व्यवहार आदि बहुत कुछ मिलता जुलता है। इन समुदायों में प्रचलित परंपरा की सामाजिक संरचना को यहां समझने की जरूरत है। चुंकि ब्रोक्पा समुदाय पशुपालक समाज है जिसके पास आय का एकमात्र स्रोत यही है। तो दूसरी और अन्य हिमालयी क्षेत्र की स्थिति भी कमोबेश वैसी ही रही है। पशुपालन के साथ इनके पास कृषि योग्य भूमि बहुत ही सीमित है। सीमित संपत्ति का बंटवारा ना हो और परिवार के बीच एकता बनी रहे इसी दृष्टिकोण से यहां खोरदेकपा परंपरा को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। चुंकि उपन्यास का नायक लबजांग को

105

Scanned with CamScanner

ऐसी कोई सुविधा प्राप्त नहीं है। क्योंकि अपने माता-पिता की वह एकमात्र संतान है। जबकि खोरदेकपा एक ही माता-पिता के संतानों में ही होता है।

'सोनाम' उपन्यास में खोरदेकपा के कारण तीनों ही पात्रों के संबंधों में जटिलता आती है। क्योंकि पेमा वांगछू लबजांग के जाति बिरादरी का नहीं है। जाति बिरादरी का ना होते हुए भी पेमा वांगछू को सोनम के साथ खोरदेकपा कर लाने के लिए गांव के सरपंच के साथ लबजांग पेमा वांगछू के घर उस के माता- पिता को मनाने जाता है जिसमें वह सफल होता है और पेमा वांगछू, लबजांग और सोनम खोरदेकपा के पवित्र बंधन में बंध जाते हैं।

"निर्णय के दो दिन बाद एक सादे समारोह में संक्षिप्त सा वैवाहिक संस्कार आयोजन करके सोनम का दूसरा विवाह पेमा वांगछू के साथ संपन्न हो गया। उसी दिन दुपहरियो से ही एक-एक कर गांव के स्त्री पुरुष लबजांग के घर आ -आ कर इकट्ठे होते गये। अपनी ओर से उपहार के रूप में लाई गई खाटा उन्होंने सोनम और पेमा वांगछू को तो पहनाई ही लबजांग को भी खाटा पहनायी..... स्त्रियां बोलने लगीं ....अरे आज ही वह सचमुच की ब्रोक्पा पत्नी लग रही है"2 हर समाज अपनी भौगोलिक पृष्ठभूमि उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक गठन और आर्थिक व्यवस्थाओं के आधार पर जीवन को सुगम बनाने की कोशिश करता है और उसी सामाजिक प्रक्रिया के तहत जीवन यापन करता है। ब्रोक्पा समुदाय भी इससे अछूता नहीं है। इसीलिए यहां खोरदेकपा जैसी परंपराएं प्रचलित हैं। जो उसकी भौगोलिक, सामाजिक - सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुकूल उन्हें लगता है।

जिस तरह बहुपत्नी प्रथा में पत्नियों के बीच आपसी ईर्ष्या, द्वेष के कारण गृह कलह आम बात है। ठीक उसी तरह की समस्या इस उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है और यहीं से संबंध बिगड़ कर द्वंद्व पूर्ण आकार लेने लगता है। एक तरफ पेमा सोनम के मन में लबजांग के खिलाफ उसके अन्य स्त्री के साथ संबंध आदि को लेकर भड़काता रहता है तो वही आलसी पेमा चरागाह में जाने से जी चुराने लगता है। जब भी उसकी बारी चरागाह जाने आती थी तो वह वहां लापरवाही से काम करता और पशुओं का ध्यान नहीं रखता। हमेशा ही कुछ न कुछ नुकसान करता जिसके कारण लबजांग की आर्थिक स्थिति भी खराब होने लगती है। "आगे चलकर लबजांग और सोनाम का वैवाहिक जीवन, उनकी अपनी घर- गृहस्थी, सुखी और स्वस्थ नहीं रह पायी, अनुकूल परिस्थिति और अवसर की तलाश में लगा रहने वाला पेमा वांगछू सोनाम के कान में लबजांग की ऐसी ढेर सारी मनगढ़ंत बातें घुसेडता रहता।....इन्हीं सब कारणों से वह लबजांग की अपेक्षा पेमा वांगछू के अधिक करीब हो गयी। हालात यहां तक बढ़ गई कि दोनों पतियों को जो एक समान रूप में प्यार करने, दोनों के प्रति समान रूप से आदर भाव रखने का जो उसका पवित्र उत्तरदायित्व था, धीरे-धीरे वह उस में असफल होने लगी"3 अगर यहां पेमा वांगछू की जगह खोरदेकपा में लबजांग का अपना सगा भाई होता तो शायद समस्या इस रूप में नहीं उभरती। पेमा किसी दूसरे जाति बिरादरी का व्यक्ति है। जिसे ना तो लबजांग के घर-गृहस्थी, चरागाह और पशुओं से कोई लगाव है। इसीलिए वह इतनी लापरवाही से काम करता है। क्योंकि नुकसान उसका नहीं बल्कि लबजांग का हो रहा है इसलिए पेमा के मन में अपनत्व का भाव कभी भी नहीं आता है। जबकि खोरदेकपा के नियमानुसार लबजांग पेमा को अपनी संपत्ति, घर-द्वार और पशु संपत्ति में बराबरी का हिस्सा देता है। "जिस दिन से तुमने मेरे साथ खोरदेकपा किया तुम मेरे द्वारा पाले गए इन सभी पशुओं के मालिक हो गए हो"4 इसके बावजूद भी पेमा वांगछू के व्यवहार में किसी भी प्रकार का बदलाव दिखाई नही देता। संपत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलने पर भी पेमा में घर - गृहस्थी के प्रति किसी भी तरह

106

Scanned with CamScanner

का लगाव लबजांग के परिवार के साथ स्थापित करता हुआ दिखाई नहीं देता। यहां रचनाकार पेमा के आलसी और अवसरवादी व्यक्तित्व के माध्यम से यह दर्शाने की कोशिश करते हैं कि पेमा जैसा व्यक्ति किस तरह समाज की मान्य परंपराओं का दुरुपयोग अपने फायदे के लिए करता है। जिस भाव के साथ सोनाम और लबजांग पेमा के साथ खोरदेकपा करते हैं और उसे अपने परिवार का अभिन्न हिस्सा मानते हैं। लेकिन पेमा का व्यवहार इसके बिल्कुल विपरीत दिखाई देता है। वक्त गुजरने के साथ-साथ पेमा सोनाम से भी ऊब चुका था और उससे छुटकारा पाने की सोचने लगा। इसीलिए सोनाम जब बीमार रहने लगी और लबजांग चरागाह में पेमा के भरोसे सोनाम और बच्चों को छोडकर जाता है तब भी वह अपने परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों से वह दूर भागता है। बीमारी में भी सोनाम दिन रात काम करती और परिवार का भरण-पोषण करती जिसके चलते सोनाम ने एक दिन खटिया पकड़ लिया तो उसके बाद अंतिम यात्रा तक उस खटिया से उठ नहीं पाई। उपन्यास अंत तक आते-आते सोनाम की मृत्यु के साथ खोरदेकपा परंपरा की खामियों की तरफ भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है। जहां उपन्यास अंत में आकर ट्रेजिक हो जाता है।

ब्रोक्पा समुदाय मूलतः बौद्ध धर्मावलंबी हैं। सोनाम कई वर्षों से संतान सुख से वंचित रहती है तो पति-पत्नी विचार करते हैं कि उन्हें तवांग गोंफा में जाकर पलदेन लामो (आराध्य देवी) और शाक्य टोबा (गौतम बुद्ध)की शरण में संतान प्राप्ति के लिए यात्रा पर निकलना चाहिए और दोनों तवांग की यात्रा के लिए निकलते हैं। उन्हें विश्वास है कि पलदेन लामो उनकी मनोकामना पूर्ण करेंगी । जब सोनाम गर्भ धारण करती है तो पलदेन लामो के प्रति उनकी आस्था और गहरी हो जाती है। सोनाम लबजांग से कहती है "हमारे परम पूज्य पलदेन लामो और टोम्बा शाक्या दावा देवताओं ने हमारी प्रार्थना सुन ली है, क्या इस बात को तुम जान पाए हो, उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। और हमारी इच्छा के अनुरूप हमें इच्छित वरदान भी दे दिया है।"5 उपन्यास में तवांग गोम्पा (बौद्ध विहार) के बनने के पीछे का संक्षिप्त इतिहास भी हमें मिलता है। जिससे हमें ज्ञात होता है कि तवांग गोम्पा तिब्बत देश की राजधानी ल्हासा के पोतला गोम्पा (पोतला पैलेस) के बाद संसार में द्वितीय स्थान पर इस की ख्याती है। सन 1681 में अरुणाचल के मनपा जनजाति के विद्वान मेरा लामा धार्मिक शिक्षा ग्रहण कर तिब्बत से लौटने के बाद तवांग गोम्पा के निर्माण कार्य में जुट गए थे । तवांग नाम के पड़ने के पीछे भी यहां कई तरह की दंत कथाएं प्रचलित हैं। मेरा लामा गोम्पा निर्माण के लिए उचित स्थान की तलाश में पहाड़ियों पर अपने घोड़े पर चढ़कर विभिन्न स्थानों का निरीक्षण करने जाते थे। एक दिन असावधानी के चलते घोड़ा गायब हो गया तो उसे खोजते हुए वह पहाड़ी पर पहुंचे तो वह देखते हैं कि घोड़ा अपने दोनों खुरों से उस पहाड़ी को खोदकर गड्ढा बना रहा है। तो मेरा लामा के अंतर्मन में आभास हुआ कि घोड़ा उसी पवित्र स्थान को चिन्हित कर दिखा रहा है। और वहीं तवांग गोम्पा (बौद्ध विहार) का निर्माण हुआ। "चुंकि वह स्थान घोड़े के आशीर्वाद से धन्य हुआ था। इसी से उसका नाम रखा गया। तवांग, इस संयुक्त शब्द में पहले अंश- 'त' का अर्थ है घोड़ा और 'वांग' का अर्थ है - -आशीर्वाद"6 समय बीतने के साथ-साथ जनसाधारण में यह गोम्पा तवांग के नाम से विख्यात हुआ। उस समय इस क्षेत्र में तिब्बत का शासन चलता था। तिब्बत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में मेरा लामा इस गोम्पा का प्रशासन देखते थे और यहां के लोग राजस्व कर, मालगुजारी, धर्म का दान-दक्षिणा तवांग गोम्पा में जमा करते थे।

107

Scanned with CamScanner

ब्रोक्पा समुदाय पुनर्जन्म में विश्वास रखता है। वह मानते हैं कि सभी प्राणी पुनः जन्म लेते हैं। उपन्यास में एक प्रसंग आता है जब लबजांग का वफादार कुत्ता डब्बू हिमबाघ का शिकार होता है और मर जाता है। गांव में सभी लोग मानते हैं कि लबजांग की बेटी रिनचिन जांमू के रूप में डब्बू ने पुनर्जन्म लिया है। रिनचिन जांमू चार-पांच साल की उम्र में पूर्व जन्म में अपने साथ घटित घटना को अपने पिता लबजांग को वैसा ही सुनाती है जैसे वास्तव में डब्बू के साथ घटित हुआ था। "फिर उसी भय की अवस्था में लड़खड़ाती आवाज में कहने लगती है-"समझ रहे हैं ना पिताजी। उस बाघ ने मुझे अपने पंजों में जकड़ लिया था। मेरी गर्दन पर अपने दांतो से काट खाया था। फिर मुझे उस बर्फिली घाटी में घसीटते-घसीटते बहुत दूर तक लिए चला गया था। उस समय मुझे जो असहनीय कष्ट हुआ था उसके बारे में अब आपको कैसे बतलाऊं।" 7 यह पंक्तियां ब्रोक्पाओं की पुर्नजन्म के प्रति उनके विशवास को और प्रबल करती है। आदिवासी समाज किसी भी क्षेत्र का क्यों ना हो उसकी अपनी विशिष्ट पारंपरिक विश्वास और आस्था उन्हें दुसरे समाजों से अलग करती है जिनका अनुपालन हर आदिवासी समुदाय करता है।

जहां तक आदिवासी स्त्रियों का सवाल है वह अपने समाज में अधिकांश मामलों में पुरुष के समान अधिकार रखतीं हैं। वहां स्त्रियां भी पुरुषों के समान अपनी शारीरिक क्षमता के अनुरूप श्रम करती हैं। इसलिए उसे घर गृहस्थी से लेकर अपने लिए निर्णय लेने का स्वतंत्र अधिकार है। दूसरे समाजों की अपेक्षा आदिवासी स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक है। आलोच्य उपन्यास की बात करें तो हम पाते हैं कि खोरदेकपा में रहना है या नहीं इसका अंतिम निर्णय स्त्री के हाथ में है। इसलिए अगर चाहे तो वह मना भी कर सकती है। सोनाम पेमा वांगछू के साथ खोरदेकपा करना चाहती है तभी लबजांग पेमा के घर खोरदेकपा का प्रस्ताव लेकर जाता है। दूसरी ओर खोरदेकपा में रहते हुए संतान पैदा होने पर किस पति का संतान है इसका निर्णय लेने का अधिकार भी स्त्री को ही प्राप्त है। अन्य आदिवासी समाजों की तरह ब्रोक्पा समुदाय में भी स्त्री-पुरुष दोनों के लिए पुनर्विवाह बहुत ही आसान है। कोई भी स्त्री पुरुष पति-पत्नी में से एक के ना रहने पर एक वर्ष के बाद दूसरे साथी का चयन कर घर गृहस्थी बसाने का अधिकार रखता है। ब्रोक्पा समुदाय की यह खासियत है कि वह जीवन की सतत गतिशीलता में विश्वास रखता है। इसलिए जीवन को संबंधों के साथ खुशहाल और सुखी संपन्न बनाने का हर संभव कोशिश करता है। यहां इस संदर्भ में उल्लेखनीय है "किसी भी एक दंपत्ति में से पति या पत्नी किसी एक की मृत्यु हो जाने पर जीवित बचा हुआ दूसरा साथी एक वर्ष काल की अवधि तक प्रतीक्षा करता है, इस समय के अंदर कोई दूसरा विवाह नहीं करता, किंतु साल बीतते ही कोई दूसरा जीवन संगी चुनकर विवाह कर नयी गृहस्थी बसा लेता है।"8 यह समाज जीवन में परंपराओं से ऊपर मनुष्य की संवेदनाओं को महत्व देने में विश्वास रखता है। यह उसका जीवन अमूल्य है इसलिए हर दुख के बाद जीवन को नई ऊर्जा के साथ संचालित करने में विश्वास रखता है।

रचनाकार ने इस उपन्यास के माध्यम से ब्रोक्पा समुदाय के पर्व त्योहार और उनकी सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ प्रेम की एकनिष्ठता तथा स्त्री की स्वतंत्रता जैसे गंभीर मुद्दों को अपने सधे हुए कलम से उकेरा है। मनुष्य सुलभ कमजोरियों को सहजता के साथ प्रस्तुत करने में तथा जिस रूप में आदिवासी जीवन उस अंचल में है उसी रूप में उसे प्रस्तुत करने में थोंगछी जी सफल हुए हैं। उपन्यास की कथा संरचना सुगठित और व्यवस्थित है। कथा पाठक को अंत तक बांधे रखती है कहीं किसी तरह का बिखराव कथावस्तु में हमें नहीं मिलता है। आंचलिक शब्द ब्रोक्पा समाज की परंपराओं की वास्तविकता को जानने समझने में सहायक सिद्ध होता है। यहां कहा जा सकता है कि आदिवासी साहित्य अभी भी

108

Scanned with CamScanner

अपने शैशवावस्था में है। ऐसे में बोंगछी जी जैसे रचनाकारों से भविष्य में आदिवासी साहित्य लेखन समृद्ध होगा ऐसी मेरी परिकल्पना है।

संदर्भ:

1 सोनाम, येसे दर्जे बोंगछी, अनुवादक: डॉ. महेंद्रनाथ दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2009, पृष्ठ 8-9.
2 वही, पृष्ठ 64.
3 वही, पृष्ठ 151.
4 वहीं, पृष्ठ 76.
5 वहीं, पृष्ठ 141.
6 वहीं, पृष्ठ 107.
7 वहीं, पृष्ठ 153.
8 वहीं, पृष्ठ 238.

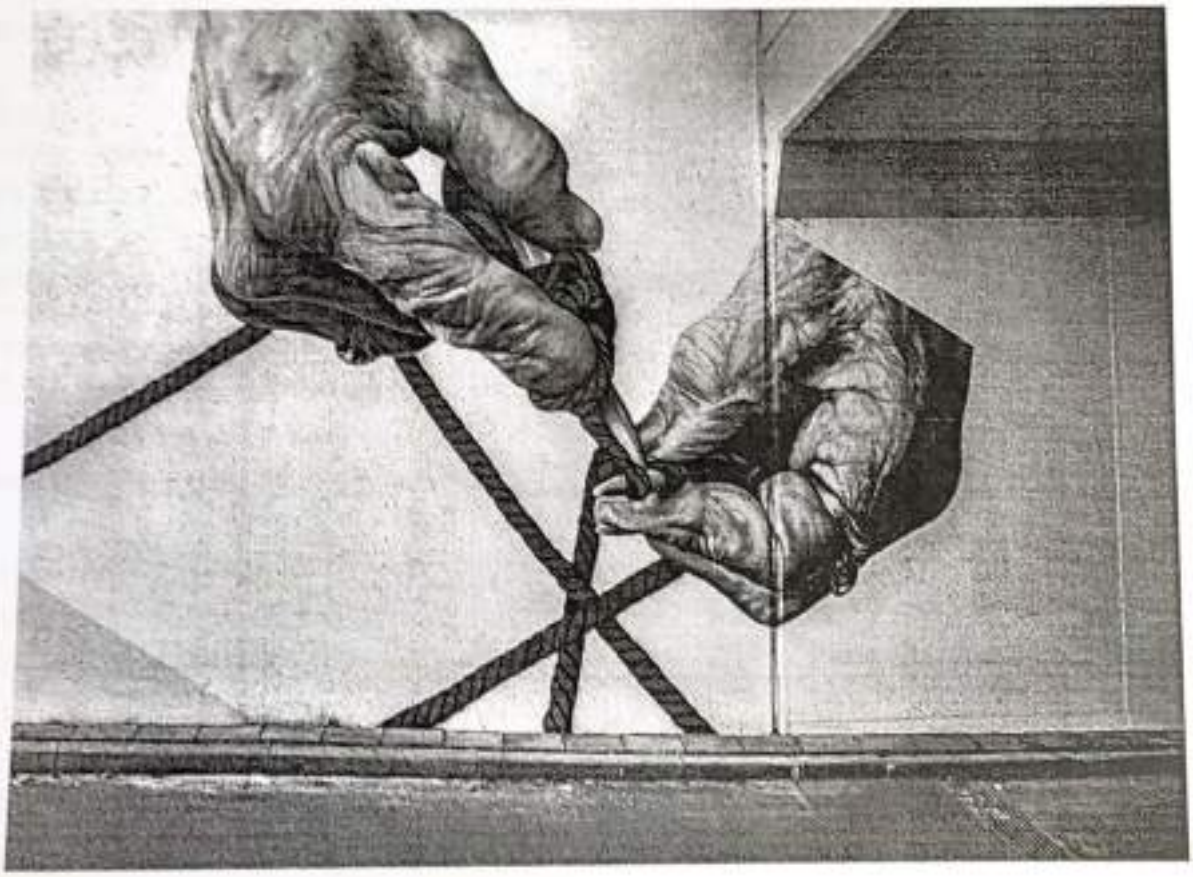

Scanned with CamScanner

The Perspective
International Journal of Social Science and Humanities
An Online, Peer-Reviewed, Indexed and Refereed Journal. ISSN: 2582-6964
A Quarterly, Bi-Lingual Research Journal Published in English & Hindi
Vol. - 1, Issue - 3, August - October, 2020

समीक्षा आलेख

जंगल से आगे की एक और दुनिया

डॉ. स्नेह लता नेगी
सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत
ईमेल : negi.sneh@gmail.com

ARTICLE INFO

Received: 17 August 2020
Accepted: 15 October 2020
Available online: 31 October 2020

सन् 1968 में प्रकाशित भारत का पहला आदिवासी आत्म संस्मरण दक्षिण भारत के नीलगिरी पहाड़ियों पर रहने वाले आदिम इरुला समुदाय की लेखिका सीता रत्नमाला ने लिखा, जो अंग्रेजी में 'बियोंड द जंगल : ए टेल ऑफ साउथ इंडिया' शीर्षक से ब्लैकवुड एंड संस प्रकाशन संस्थान एडिनबर्ग और लंदन से प्रकाशित हुआ। 'बियोंड द जंगल' को भारतीय अंग्रेजी आत्मकथा की परंपरा से अलग कर देखा गया। यह प्रचलित आत्मकथा के ढाँचों को तोड़ते हुए व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय व समष्टि के साथ रचनाकार के अनुभवों की मार्मिक अभिव्यक्ति है। भारतीय साहित्य में किसी आदिवासी स्त्री द्वारा लिखित इस पहली आत्मकथा पर जिस तरह से चर्चा होनी चाहिए थी, किन्तु नहीं हुई। साहित्य जगत में 'बियोंड द जंगल' को लेकर मौन पसरा हुआ है। इस संदर्भ में वंदना टेटे की चिंता जायज है "इसका जिक्र किसी साहित्यिक अफसाने और विमर्श में नहीं है। हालांकि जब 'बियोंड द जंगल' छपी थी तब दुनिया भर के अखबारों और साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में उसकी समीक्षा अंग्रेजी के महत्त्वपूर्ण आलोचकों ने लिखी थी। टाइम्स ऑफ इंडिया में 6 अक्टूबर 1968 पृष्ठ 11 पर प्रकाशित समीक्षा का शीर्षक है - 'डीप ऐज फर्स्ट लव'। ओजी साहित्य में अमिट छाप बनाने वाली यह आत्मकथा आखिर क्यों बाद के दिनों में विस्मृत कर दी गई और इसकी प्रतियाँ कैसे अनुपलब्ध और रेयर हो गई, यह सवाल भारतीय साहित्य और उसके शोधार्थियों के लिए ही नहीं वरन् आदिवासी साहित्यकारों के लिए भी एक गंभीर चुनौती है।" अंग्रेजी साहित्य लेखन पर दृष्टि डालें तो सीता रत्नमाला के लेखन के विविध आयाम यहाँ देखने को नहीं मिलते हैं। मान्यता है कि 'बियोंड द जंगल' ऑटोबायोग्राफी सीता रत्नमाला की एकमात्र रचना हैलेकिन 'बियोंड द जंगल' के अलावा सीता रत्नमाला की तीन कहानियाँ भी प्रकाशित हो चुकी हैं। लंदन के वार्षिक कथा संकलन 'द पीक ऑफ टुडेस शॉर्ट स्टोरिज' में सन् 1962 में सीता की कहानी 'कुक्कू इन द हिल्स' छपी। बाद में 'ब्लैकवुड्स मैगज़ीन' ने मई 1968 में 'द डार्क शिप' और दिसंबर अंक में 'द पिलग्रिम' कहानी छापी। 'बियोंड द जंगल' के कुछ अंश ब्लैकवुड्स मैगज़ीन के 1965 के अंक 238 में 'एबोड ऑफ रंगा' शीर्षक से प्रकाशित हुए। कहानी और आत्मकथा के अलावा सीता रत्नमाला ने 1970 में 'लेपैटो' शीर्षक से एक नाटक भी लिखा।

116

Scanned with CamScanner

1968 से पूर्व अंग्रेजी साहित्य में भारतीय महिलाओं की प्रकाशित आत्मकथाओं में सुनीति देवी की 'द ऑटोबायोग्राफी ऑफ एन इंडियन प्रिंसेस' (1921), कोरनेलिया सोराबजी की 'इंडिया कॉलिंग' (1934), कृष्णा हुथीसिंग नेहरू की 'विद नो रिग्रेट्स : एन ऑटोबायोग्राफी' (1943), शांता रामाराव की 'होम टू इंडिया' (1945), विजयलक्ष्मी पंडित की 'प्रिजन डेज' (1954), इश्नी पेसुद की 'गर्ल्स इन बॉम्बे' (1947), सावित्री देवी नंदा की 'ए सिटी ऑफ टू गेटवेज' (1950), वृंदा की 'महारानी : द स्टोरी ऑफ एन इंडियन प्रिंसेस (1953), नयनतारा सहगल की 'प्रिजन एंड चॉकलेट केक' (1954) तथा 'फ्रॉम फीयर सेट फ्री' (1961) एवं कमला सुंदरराव (कुलकर्णी) डोंगकेरी की 'ऑन द विंग्स ऑफ़ फायर' (1968) उल्लेखनीय हैं। सीता रत्नमाला के अतिरिक्त सभी स्त्री लेखिकाएँ अभिजन वर्ग से आतीं हैं। इसमें से कोई भी दलित, आदिवासी या अन्य पिछड़ा वर्ग से नहीं है। हिंदी और मराठी में स्त्री और दलित आत्मकथा लेखन और प्रकाशन की शुरुआत सीता रत्नमाला के 'बियोंड द जंगल'के बाद होता है। साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकारों के प्रति भेदभाव और उपेक्षा का व्यवहार आम बात है। अतः सीता रत्नमाला का भारतीय साहित्य में अनुपस्थित होना बहुत आश्चर्य का विषय नहीं है। अंग्रेजी में प्रकाशित आदिवासी आत्मकथाओं, यथा ब्रांसले एम पुग की 'द स्टोरी ऑफ द ट्राईबल : एन ऑटोबायोग्राफी' (1976), जयपाल सिंह मुंडा की 'लो बिर सेंदरा : एन ऑटोबायोग्राफी' (2004), लालखमा की 'ए मिज़ो सिविल सर्वेंटस रैंडम रिफ्लेक्शंस' (2006), मैरी कॉम की 'अनब्रेकेबल' (2013) और नागा लेखिका तेमसुला आओ की 'वंस अपॉन ए लाइफ: बर्न्ट करी एंड ब्लडी रैग्स : ए मेमोयर' (2014) पर भी कोई विशेष चर्चा नहीं हुई है।

कई आदिवासी आत्मसंस्मरण तो ऐसे भी हैं, जिनके बारे में पाठकों को पता ही नहीं है। झारखंड से डॉक्टर निर्मल मिंज और मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध गोंड कलाकार वेंकटरमन सिंह श्याम और आर. कास्टेयर्स की लिखी 'हाइमा विलेज' आदि इसी तरह की गुमनाम प्रायः कृतियाँ हैं ।

आदिवासी विमर्श के लेखक व गंभीर अध्येता अश्विनी कुमार पंकज के अथक प्रयासों से 'बियोंड द जंगल' हिंदी में सुलभ हो सकी है। 'बियोंड द जंगल' का हिंदी संस्करण 'जंगल से आगे' शीर्षक से 2018 में प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन रांची से प्रकाशित हुआ है। अश्विनी कुमार पंकज ने ब्रिटिश लाइब्रेरी लंदन से सीता रत्नमाला की पहली कहानी 'कुक्कू इन द हिल्स' 1962 भी खोज निकाली है। जल्द ही इस कहानी का हिंदी संस्करण उपलब्ध हो सकेगा । आदिवासी रचनाकारों की अप्रकाशित दुर्लभ रचनाओं को खोजकर आदिवासी साहित्य को समृद्ध करने में अश्विनी कुमार पंकजका यह योगदान श्लाघनीय है ।

दक्षिण भारत की इरुला आदिवासी समुदाय की लेखिका सीता रत्नमाला ने भारत का पहला आदिवासी आत्मसंस्मरण लिखा, जिसका प्रथम प्रकाशन सन् 1968 में हुआ। खेद है कि इसका ज़िक्र न तो भारतीय साहित्य में हुआ और न ही किसी विमर्शमूलक साहित्य में इसकी चर्चा की गई। जो पूर्वाग्रह आदिवासी समाज को लेकर कथित सभ्य समाज में है, कमोबेश वही पूर्वाग्रह आदिवासी साहित्य के प्रति भी दिखाई देता है। विदेशी पत्रिकाओं में 'बियोंड द जंगल : ए टेल ऑफ साउथ इंडिया' पुस्तक की अनेक समीक्षाएं प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन भारतीय साहित्य सीता रत्नमाला के लेखन को लेकर चुप्पी साधे हुए है।

'जंगल से आगे' में सीता रत्नमाला की कहानी नीलगिरी की इरुला आदिवासी समुदाय की कथा से शुरू होती है। एक छोटी सी घटना से प्रारम्भ हो कथानक बड़े कैनवास पर विस्तार पाता है। सीता जंगल में सोने की खाई में गिर जाती है, जहाँ उसका पैर टूट जाता है। पैर का इलाज करवाने सीता और उसके पिता कुन्नूर शहर के एक अस्पताल पहुँचते हैं। पहली बार वे जंगल से बाहर निकले हैं। यहाँ आकर वे पहली बार अस्पताल, डॉक्टर, नर्स जैसे शब्दों से परिचित होते हैं। बाहरी दुनिया से सीता और उसके पिता का यह पहला परिचय है। बाहरी लोगों का उनके प्रति किस तरह का व्यवहार और दृष्टिकोण है, इसकी अनुभूति भी सीता और उसके पिता को यहाँ पहले पहल ही होती है। अस्पताल में डॉक्टर और नर्स का यह संवाद बाहरी लोगों के उस दंभ को उद्घाटित करता है, जो स्वयं को सभ्य और श्रेष्ठ समझते हैं और आदिवासियों के प्रति हीन भावना से ग्रसित हैं- 'इरुला? ओह हो!

Scanned with CamScanner

भारत के इतिहास से बाहर के प्राणी ...फिर मजाक में हँसते हुए बोला चलो देखते हैं कि हम इस छोटे से जानवर को क्या बना सकते हैं जो जंगल के एक गड्ढे में गिर गई थी।"[2] पढ़े-लिखे लोगों का आठ-नौ साल की उस छोटी सी बच्ची के प्रति इस तरह का व्यवहार उनकी मानसिकता को प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। आज इस आत्मसंस्मरण को प्रकाशित हुए पचास साल से अधिक हो गए हैं किन्तु जो यथार्थ पचास साल पहले था, आज भी उस स्थिति में कोई खास परिवर्तन दिखाई नहीं देता, उस समय भी आदिवासी जानवर समझे जाते थे और आज भी दिकू समाज में वही सोच विद्यमान है ।

'जंगल से आगे' में सीता बाहरी समाज के अपने प्रति क्रूर व्यवहार की कई घटनाएँ और अनुभवों को बेबाकी से लिखती हैं । पढ़ाई के लिए डोडा बोर्डिंग स्कूल पहुँचने की यात्रा में वह बाहरी समाज के आदिवासी समुदाय के प्रति व्यवहार को देखती और अनुभव करती है, जो इरुला आदिवासी समाज में सीता ने कभी महसूस नहीं किया था । वे लिखती हैं- "मेरी पढ़ाई स्कूल पहुँचने के पहले ही शुरू हो चुकी थी । पहली बात जो मैंने सीखी वह थी वर्ग और जाति जिसका उल्लेख कभी नहीं किया जाता लेकिन हजार अलग-अलग तरीकों से हम जिसका अनुभव करते हैं ।"[3] वह चाहे अस्पताल हो ट्रेन की यात्रा हो या स्कूल में शहरी बच्चों का व्यवहार, सीता के प्रति उनका व्यवहार संवेदनाशून्य और क्रूरता से परिपूर्ण रहा है । इरुला आदिवासी समाज में जातीय या वर्गीय संरचना वैसी नहीं है, जैसी मुख्यधारा में देखने को मिलती है । कोई भी आदिवासी व्यक्ति जब अपनी सामाजिक व्यवस्था से बाहर कदम रखता है तो बाहरी समाज की उसी जातीय और वर्गीय मानसिकता का शिकार होता है और अनेक तरह की यंत्रणाएँ झेलता है । मुख्यधारा की व्यवस्थाएँ कई बार उसकी नैसर्गिकता भी छीन लेती हैं।

स्कूल में प्रवेश के बाद पहली बार कपड़ा पहनने या जूता पहनने से कितनी असहजता का अनुभव एक आदिवासी करता है । स्कूल की सभी क्रियाएँ उसे यंत्रवत लगती हैं । जिन क्रियाओं और वस्तुओं का स्पर्शकर, देखकर या अनुभव कर वह आज तक सीखती आई है, स्कूल में उन्हीं चीजों को प्रतीकों के माध्यम से सिखाया जाना सीता को आश्चर्यचकित तो करता ही था, साथ ही वह प्रतीक मूल वस्तु की छवि और ज्ञान को और भी संकुचित कर देता था । अक्षर और प्रतीकों के बीच संबंध बनाने की सीता निरंतर कोशिश करती और असफल हो जाती । "मैंने प्रतीकों (अक्षरों) को देखा पर उनसे कोई अर्थ नहीं निकलता था । दरअसल प्रतीकों ने कुत्तों की जानी हुई छवि को ढक दिया था, जिससे वह अपरिचित दिखाई पड़ रहा था । कुत्ते के बारे में मेरे पास जितना भी ज्ञान था, उसके हिसाब से तो उन अक्षरों से कुत्तों का कोई संबंध बना पाना मेरे लिए बहुत मुश्किल साबित हो रहा था ।"[4]

रचनाकार यहाँ सभ्य होने या विकास की पटरी को खींचने वाली परंपरागत शिक्षा प्रणाली पर सटीक प्रश्न उठाती है, जिसे लगभग हर आदिवासी व्यक्ति और साहित्यकार अलग-अलग मंचों के माध्यम से उठाता आया है कि शिक्षा की जो भारतीय परंपरा है, उसकी उसकी क्या-क्या खामियाँ हैं । शिक्षा की यह पद्धति आदिवासी बच्चों को उनकी भाषा, उनके परिवेश और वास्तविक जीवन शैली के अनुकूल शिक्षा प्रदान करने में कहाँ तक सफल है । सीता रत्नमाला जिस अनुभव से गुजरती है, उसी तरह का अनुभव कमोबेश हर आदिवासी बच्चे करता है । ऐसे में आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा पद्धति कैसी हो, इस पर गंभीरता से सोचने-विचारने के साथ काम करने की जरूरत है ।

डोडा बोर्डिंग स्कूल में आरंभ में सीता से कोई भी बच्चा बात नहीं करता । बच्चे कभी उम्मीद नहीं कर सकते थे कि कोई आदिवासी लड़की उनके साथ पढ़ने आ सकती है । सीता का स्कूल में आना चर्चा का विषय था । "वे सब बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थी कि सामाजिक रूप से जिसे निम्न माना जाता है, उसको उनके स्कूल में दाखिला मिले ।"[5] स्कूल में बच्चे, शिक्षक, हाउस मिस्ट्रेस सभी की नजरों में सीता गँवारऔर जाहिल है । जिनमें कुछ भी खास नहीं है, वह उन सबसे भी कमतर है । कोई भी व्यक्ति चाहे वह आदिवासी हो या अन्य समाज का, जिस परिवेश में वह रहता है, जब तक उस परिवेश में उसकी स्वीकृति नहीं होगी, उसे प्यार करने वाले लोग नहीं होंगे, उसकी सराहना या हौसला अफजाई नहीं होगी, ऐसे में किसी भी बच्चे का प्रतिकूल परिवेश के साथ

Email Id : editor.tpijssh@gmail.com Website : www.tpijssh.com

118

Scanned with CamScanner

तालमेल बिठा पाना संभव नहीं होगा। ऐसे में यदि बच्चा आदिवासी परिवेश का हो, जहाँ का रहन-सहन, खान-पान और जीवन-शैली बाहरी दुनिया से बिल्कुल अलग-थलग हो, वहाँ स्कूल या बाहरी व्यवस्था का संवेदनाहीन असहयोगात्मक रवैया उसे हतोत्साहित कर सकता है। ऐसा माहौल उसे कभी भी अपनी क्षमताओं से परिचित होने का अवसर नहीं देता।

सीता अपने स्कूली जीवन में इसी तरह के वातावरण में संघर्ष करती रही। स्कूल में सीता को यदि कुछ अच्छा लगता था तो वह था, खेल का मैदान। इसका कारण था शिक्षिका मिस ब्रोमली का सीता को प्रोत्साहित करना। वे उसे मैराथन प्रतियोगिता के पुराने रिकॉर्ड तोड़ने के लिए निरंतर उत्साहित करती रहती थी। मिस ब्रोमली का उत्साहवर्धन सीता के भीतर अपनी छुपी हुई क्षमताओं को पहचानने और उसे निखारने में मददगार साबित होता है और वह मैराथन के रिकॉर्ड तोड़ती है। मिस ब्रोमली सीता से कहती हैं- "क्या तुम मानती हो कि तुमने स्कूल का पुराना रिकॉर्ड तोड़ दिया है? तुम वाकई शानदार हो। मुझे गर्व है, हम सभी को तुम पर गर्व है। कोई भी अब तुम्हारे खिलाफ कुछ भी नहीं कह सकता। कोई भी तुमको वापस घर भेजने की धमकी नहीं दे सकता। बधाई हो।"[4] खेल का मैदान सीता की पहली पसंद है जहाँ उसे अपनी क्षमता को प्रदर्शित करने की छूट है। पहाड़ों पर उतरना-चढ़ना सीता की रोजमर्रा की जिंदगी का अभिन्न हिस्सा है। उसे वह पसंद है जिसके माध्यम से वह अपनी क्षमता प्रदर्शित करती है। आये दिन सीता को स्कूल का हर व्यक्ति स्कूल से बाहर निकालने की धमकी देकर परेशान करता था। आज मैराथन जीतकर उसने साबित कर दिया कि वह भी स्कूल के किसी बच्चे से कमतर नहीं है बल्कि वह उन सबसे आगे है। वह भी हर क्षेत्र में वह सब कर सकती है जो दूसरी लड़कियाँ करती हैं। इस तरह सीता की स्कूली शिक्षा चलती रहती है। खेल के क्षेत्र में आदिवासी बच्चों को अवसर और प्रोत्साहन की जरूरत है। उन्हें अगर सही समय पर अवसर और प्रोत्साहन मिले तो वे रिकॉर्ड ध्वस्त करने की क्षमता रखते हैं लेकिन जब तक समाज की मानसिकता नहीं बदलेगी, तब तक बदलाव मुमकिन नहीं है।

'जंगल से आगे' का समाज सामूहिक, सामुदायिक और सहजीवी जीवन-दर्शन पर जीवनयापन करने वाला आदिवासी समाज है। यहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के समान स्वतंत्र, परिश्रमी, स्वावलंबी और सामुदायिक चेतना से परिपूर्ण हैं। ज्यों-ज्यों समाज शिक्षा की ओर अग्रसर हुआ स्त्रियाँ भी शिक्षित और चेतना संपन्न होती गईं। शिक्षा ने स्त्रियों के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। चाहे वे भारतीय समाज की मध्यमवर्गीय स्त्रियाँ हों या दलित स्त्रियाँ, शिक्षा ने सभी वर्गों की स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार-प्राप्ति और अन्याय के विरुद्ध लामबंद किया और उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत एवं जागरूक किया। आदिवासी समाज में भी कुछ समुदाय शिक्षित हुए, चेतना संपन्न हुए और देश-दुनिया से जुड़ने लगे। आदिवासियों के शिक्षित और चेतना संपन्न होने के साथ ही कुछ नई समस्याएँ भी पनपीं। शिक्षित होने पर आदिवासी समाज बाहरी समाज की व्यक्तिवादी और पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं से प्रभावित हुआ, फलतः शिक्षित आदिवासी समाज में स्त्रियाँ बाहरी समाज की व्यक्तिवादी और पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं के अनुकूल जीवन जीने के लिए धकेल दी गईं। बाहरी व्यवस्थाओं के साथ संपर्क में आने पर आदिवासियों की नैसर्गिक जीवन-शैली, उनके अधिकार, उनकी संस्कृति और भाषा धीरे-धीरे उनसे दूर होती गई है। इस तरह की समस्याओं की यथास्थिति को आदिवासी रचनाओं में या उस समाज के भीतर जाकर समझा जा सकता है।

'जंगल से आगे' सभ्य कहे जाने वाले समाज की औपनिवेशिक व्यवस्थाओं की जकड़न और उसकी नकारात्मक सोच को समझने में सहायक है। सीता बचपन से ही डॉ. राजन से प्रेम करती है और डॉक्टर भी बाद में धीरे-धीरे सीता के प्रति आकर्षित होता है। वैसे देखा जाए तो डॉ. राजन शिक्षित और खुली सोच वाला व्यक्ति है जो पुरानी परंपराओं और असंगत बातों पर विश्वास नहीं करता लेकिन वह जिस परिवार और वर्ग से आता है, वहाँ के संस्कार उसके अवचेतन में बचपन से पैठ कर चुके हैं इसलिए वह चाहकर भी सीता को अपनी जीवनसंगिनी नहीं बना पाता। इस संदर्भ में डॉ. राव, जो राजन को और उसके समाज के पूर्वाग्रहों को बेहतर जानते-समझते हैं, सीता को समझाते हुए कहते हैं कि "हिंदू शास्त्रों में सबसे बड़ा अपराध है, नस्लों की मिलावट। रक्त मिश्रण

Scanned with CamScanner

। यह बात इतनी अच्छी तरह से उसके दिमाग में बचपन से ही सांस्कारिक तौर पर पैठी हुई है कि इससे उसे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कितना तर्कसंगत है। और निसंदेह शिक्षण को वह मूल रूप से जीवन के एक अपरिवर्तनीय नियम के रूप में स्वीकार करता है।"[7]

स्कूल खत्म करने के बाद सीता नर्स बनने के लिए चेन्नई जाने का निर्णय लेती है। इसके पीछे का मूल कारण डॉ. राजन के प्रति सीता का प्रेमभाव ही है, जो उसे वहाँ खींच ले जाता है। लेकिन वह नहीं जानती थी कि बाहरी समाज में मनुष्य की भावनाओं और निश्छल प्रेम के ऊपर जाति, वर्ग, धर्म जैसी पूर्वाग्रही मानसिकताएँ काम करती हैं क्योंकि अपने समाज में उसने न तो कभी इन शब्दों को सुना और न ही इन भावों का अनुभव किया- "पूर्वाग्रहों और बेरहमी से भरा जीवन नस्लों की निरंतरता और शुद्धता बरकरार रखने के लिए कठोर बना हुआ था। और अब मैं सोच पा रही थी मेरी पुरानी सहेली मुंडी और गाँव के वे लोग क्यों चाह रहे थे कि निर्दोषता की अवस्था में ही मेरी शादी की व्यवस्था की जानी चाहिए थी। शायद इसीलिए कि यातना की ऐसी ज्वाला मेरे भीतर इतनी ना बढ़ जाए।"[8] सीता का प्रेम विफल होता है लेकिन इस विफलता के लिए सीता के मन में बाहरी समाज, जिसने सीता के साथ दुर्व्यवहार किया, के प्रति किसी प्रकार का रोष या प्रतिशोध का भाव नहीं है। पुरुषप्रधान समाज और जातीय संरचना के विरुद्ध भी वह खड़ी नहीं होती है जैसा कि आमतौर पर स्त्री या दलित आत्मकथाओं में देखने को मिलता है। सीता के इस मौन का यह मतलब कतई नहीं है कि आदिवासी लोग विरोध करना नहीं जानते या संघर्ष नहीं करते या उन्हें उस सामंती और पूंजीवादी व्यवस्था से कोई समस्या नहीं है। आदिवासियों का पूरा इतिहास इन्हीं सामंती और पूंजीवादी व्यवस्थाओं के खिलाफ संघर्ष का रहा है। वास्तव में यहाँ सीता का प्रतिरोध और संघर्ष व्यवस्था के विरुद्ध नारेबाजी या शोर-शराबे की बजाय, बहुत ही शांत स्वभाव में प्रतीकात्मक रूप में दर्ज हुआ है । लगभग सभी आदिवासी रचनाकारों में यह विशेषता विद्यमान है जो कहीं न कहीं उनके प्रकृति प्रदत्त नैसर्गिक गुण को दर्शाता है। जिस तरह प्रकृति अपने प्रति एक सीमा के बाद निर्ममता बर्दाश्त नहीं करती उसी तरह आदिवासी लोगों का स्वभाव भी देखा जा सकता है।

'जंगल से आगे' के माध्यम से पाठकों को लेखिका के अपने जीवनानुभव और नीलगिरी पहाड़ियों पर उस समय के अनेक आदिवासी समुदायों इरुला, टोडा, कुरुंबा आदि का प्रकृति के प्रति आस्था और सृष्टि के साथ अभिन्न संबंध से लेकर उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं की महत्वपूर्ण और प्रासंगिक जानकारी मिलती है। इन समुदायों में कुरुंबा आदिवासी समुदाय पारंपरिक वैद्य होते हैं जो प्राकृतिक इलाज में विश्वास करते हैं। इनका विश्वास है कि प्रकृति के भीतर हर बीमारी का इलाज मौजूद है। कुरुंबा आदिवासी समुदाय इस विद्या में पारंगत है। इसी तरह लगभग विलुप्तप्राय टोडा आदिवासी लोगों का मुख्य व्यवसाय भैंसों की देखभाल करना है। "इनके जीवन का मकसद भैंसों की सेवा करना है। ये लोग मानते हैं कि यह ऐसे महान भगवान ओन की धरोहर है जिसकी सेवा के लिए मनुष्य की सृष्टि हुई है।"[9] आदिवासियों में इरुला सबसे प्राचीन आदिवासी हैं। ये इतने प्राचीन हैं कि उनकी उत्पत्ति का इतिहास कल्पना से परे है। बाहरी समाज यहाँ के सभी आदिवासी समुदायों को बदागा (पहाड़ी आदिवासी) कहकर संबोधित करते हैं। नीलगिरी के आदिवासियों का जीवन भी अन्य आदिवासी समुदायों की तरह प्रकृति पर निर्भर है इसलिए उनकी आस्था नीलगिरी की पहाड़ियों के प्रति गहरी है जिन्हें वे पूजते हैं। "जंगल की देखभाल करने वाले उस 'रंगा' पर जो पहाड़ की शिखर पर रहता है इसीलिए उसका नाम है 'रंगास्वामी' शिखर। हम इरुला लोगों का सर्वोच्च आराध्या।"[10] इस परंपरागत प्रार्थना के माध्यम से रंगा शिखर के प्रति इरुलाओं की गहरी आस्था को समझा जा सकता है। "ओह रंगा, संसार के निर्माता जो हमारे साथ-साथ पहाड़ों में भी है, जो फूलों से हमारे बालों को झड़ने से रोकता है, जो कांटों से हमारे पैरों की रक्षा करता है, हे ईश्वर ! सबके साथ हमें भी हमेशा आनंदित बनाए रखना।"[11] नीलगिरी की पहाड़ियों पर विभिन्न परिस्थितियों से गुजरते हुए सीता का

120

जीवन साकार होता है। जहाँ उतराई है, चढ़ाई है, घाटी की गहराई है, समतल मैदान है लेकिन सीता का जीवन समतल नहीं है वहाँ पहाड़ी के उतार-चढ़ाव के साथ संघर्ष भी हैं ।

आदिवासी सामूहिक और सहजीवी जीवन-पद्धति पर चलने वाला समाज है; इसलिए उस जीवन से जुड़ी आत्मकथाएँ उस रूप में हमें नहीं मिलती जिस तरह अन्य समाज की व्यक्ति केंद्रित आत्मकथाएँ मिलती हैं। आत्मकथाओं में कई बार आत्मप्रवंचना का प्रवेश हो जाता है जिससे लेखक को बचने की जरूरत होती है। आत्मकथा लेखन में सबसे महत्वपूर्ण चीज ईमानदारी है। लेखक अपने जीवन की घटनाओं को ईमानदारी से रखे यह आत्मकथा की पहली शर्त है। इस मामले में सीता रत्नमाला की आत्मकथा मौलिक और विश्वसनीय लगती है क्योंकि सीता ने अपने जीवन और अपने आसपास के समाज को उसी रूप में चित्रित किया है जिस रूप में वह वास्तव में है। लेखिका की ईमानदारी और भावनात्मक सच्चाई पाठक को अंत तक बाँधे रखती है। कहीं भी कृत्रिमता और आत्मप्रवंचना का भाव अभिव्यक्त नहीं हुआ है। लेखिका अपने जीवन और नीलगिरी के पहाड़ियों पर बसे आदिवासियों के जनजीवन को अभिव्यक्त करने में पूर्णरूपेण सफल रही हैं।

'जंगल से आगे' की संरचना आत्मकथा के पारंपरिक ढांचे को तोड़ती है। आमतौर पर आत्मकथाओं में बचपन किशोरावस्था और प्रेम संबंध इत्यादि के साथ आरंभ होता है लेकिन 'जंगल से आगे' इन सबसे भिन्न माँ की मृत्यु और लेखिका के जंगल में सोने के खाई में गिरने की दुर्घटना से शुरू होती है। कुल तेईस अध्यायों में विभक्त इस आत्मकथा के आरंभिकसत्रह अध्यायों में सीता के शुरुआती जीवन, बचपन, जंगल की दुनिया से आदिवासियों का रागात्मक संबंध, स्कूल की घटनाएँ आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है । बाद के अध्यायों में वयस्क जीवन की घटनाओं के साथ मद्रास जैसे बड़े शहर, जो जंगल की दुनिया से अलग कंक्रीट का एक अन्य जंगल है, की संवेदनहीनता, क्रूरतातथा शहरी अव्यवस्था की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है।

आदिवासी लेखक की आत्मकथा में प्रकृति की कथा भी साथ-साथ चलती है। प्रकृति उसके जीवन का आधार है। प्रकृति और अपनी संस्कृति से ही वह परिभाषित होता आया है। इसलिए आदिवासी आत्मकथा प्रकृति की आत्मकथा भी है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह हैं, जहाँ एक के बिना दूसरा अधूरा है। मद्रास जैसे मैदानी शहर में आकर सीता के जीवन में थकान और अकेलेपन का विस्तार लगातार बढ़ता जाता है और अन्तर्मन में यह पीड़ा और गहरे होती जाती है। सीता अपने को शहर के कृत्रिम, छल-कपटपूर्ण और दिखावे भरी जीवन-शैली के अनुकूल नहीं ढाल पाती। उस माहौल में उसका दम घुटने लगता है। अपनी नैसर्गिकता को बचाये रखने और सरल-सहज प्राकृतिक जीवन के लिए सीता को प्रकृति की गोदी ही अच्छी लगती है जहाँ की जीवन-शैली में किसी प्रकार का बनावटीपन नहीं है, संपूर्ण सृष्टि एक दूसरे के लिए जीती है। अंततः सीता मद्रास की काली सर्पिली सड़कों, रेलवे स्टेशन, शोरगुल, धूल, धुएँ और कंक्रीट के उस जंगल को पीछे छोड़ पुनः जंगल की ओर लौट जाती है । लौटते हुए वह अनुभव करती है, "इसके बाद मैं जंगल में घुस गई। अपने पेड़ों के बीच वापस लौटकर मैं हर्षित थी। मैं खुद को जंगल कीमहान रहस्यमयी आत्माओं के बीच पाकर उल्लासित थी, जो गहरी धरती के रहस्य को जानते हैं और जो उज्ज्वल चमकीली हवाओं के रहस्य से भी बहुत अच्छी तरह से परिचित हैं।... और मैंने फिर से उन सबके और अपने अप्पा के साथ खुद को एक होते हुए महसूस किया।"[2] सदियों से आदिवासी घने जंगलों में रहते आए हैं। हर दिन वह प्रकृति से कुछ न कुछ नया सीखता है। प्रकृति नैसर्गिक जीवन जीना सिखाती है । देखा जाये तो प्रकृति के संरक्षण के सार्थक प्रयास आदिवासी समुदाय द्वारा ही किये गए हैं। जिस प्रेम और आदर भाव के साथ आदिवासी प्रकृति की रक्षा करते हैं, वह अपनत्व अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। आदिवासी जंगलों की खुली हवा के बिना जीवित नहीं रह सकते। यह बात सीता रत्नमाला ने अपनी आत्मकथा के माध्यम से बहुत ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त की है।

121

Scanned with CamScanner

संदर्भ सूची:

1. रत्नमाला, सीता. 2018. जंगल से आगे. अनु. अश्विनी कुमार पंकज, झारखंड, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन. पृ. 9
2. वही, पृ. 45
3. वही, पृ. 54
4. वही, पृ. 61
5. वही, पृ. 55
6. वही, पृ. 87
7. वही, पृ. 246
8. वही, पृ. 247
9. वही, पृ. 186
10. वही, पृ. 32
11. वही, पृ. 144
12. वही, पृ. 254-255

■ ■ ■

122

Email Id : editor.tpijssh@gmail.com Website : www.tpijssh.com

Scanned with CamScanner

HOME CALL FOR PAPER AUTHORS EDITORIAL BOARD ARCHIVES CONTACT

Mukt Shabd Journal

UGC CARE LIST GROUP - I JOURNAL

ISSN NO : 2347-3150 Impact Factor ... submitmsj@gmail.com

VOLUME IX ISSUE IX 2020

1. The Effect of Covid-19 on the Indian Economy
Dr. Britto Singarayar, Dr.Santhiya Rani - Citizen University, SNMV college Shri gambhirmal bafna nagar Malumachampatti, Coimbatore Tamil Nadu.
Page No: 1-8
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1200

2. Quality of life and burnout among mothers of children with neurodevelopmental disorders
Akhilesh, V. L., Jasseel, L. - Trivandrum International School, Thiruvananthapuram, Kerala, University of Kerala, Thiruvananthapuram.
Page No: 9-15
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1201

3. WORKLIFE BALANCE OF WOMEN EDUCATORS DURING COVID-19 PANDEMIC
Dr. K. Naga Sundari, Dr. Malathi Gottumukkala, Thota Prameela, Sirisha K Ghanta - Maris Stella College, Vijayawada
Page No: 16-24
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1202

4. MAKE IN INDIA ADVANTAGES, DISADVANTAGES AND IMPACT ON INDIAN ECONOMY
Dr. Bulla Thirumalesh, B. Bhagyalakshmamma - SMC GDC Yemmiganur, Kurnool (Dist), A.P.Model school, Kalyandurg, Ananthapuramu(Dist)
Page No: 25-32
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1203

5. RURAL HOUSING PROBLEMS AND REMEDIES IN INDIA
Roopashree M.N., Prof. K. Chandrashekhar - Kuvempu University, Shankaraghatta, Shivamogga (d), Karnataka, India
Page No: 33-41
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1204

6. Distribution of Irrigation Subsidies in India (Zone-Wise Analysis)
Dr. Rajwinder Kaur - Guru Hargobind Sahib Khalsa Girls College, Karhali Sahib, distt Patiala (Punjab).
Page No: 42-48
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1205

7. PANCHAYATI RAJ IN JAMMU AND KASHMIR: SUCCESS OR FAILURE?
BASHARAT AHMAD MIR - Indira Gandhi National Open University (IGNOU), New Delhi, India.
Page No: 49-60
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1206

8. EMPLOYEE GRIEVANCE REDRESSAL AT GSKCH Ltd, DOWLAISWARAM
D.Mani Kishore, Mrs.Ch.Rajeswari - GODAVARI INSTITUTE OF ENGINEERING & TECHNOLOGY (A), RAJAHMUNDRY.
Page No: 61-69
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1207

9. STUDY OF INTER- PERSONAL RELATIONSHIPS IN THE POEMS OF GAURI DESHPANDE
DR.SWETA SINGH
Page No: 70-76
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1208

10. Adversarial Learning with both Two-Player Sequential Games and Multiplayer Stochastic Games over Deep Learning Networks
K.Manoj Kumar, A.Nagaraju - CVR College of Engineering
Page No: 77-82
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1209

11. Fuzzy based Vector controlled Induction Motor Drive for Water pumping System fed by Standalone PV
Mohd Athar Nawab Jani, Mr.Shaik Ansar - St.PETER'S ENGINEERING COLLEGE, Maisammaguda, Dhulapally, Telangana, India
Page No: 83-91
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1210

12. RSC-MLC BASED DC VOLTAGE CONTROL FOR THREE LEVEL PV BASED DSTATCOM FOR POWER QUALITY IMPROVEMENT
Somnath Sandeep Kumar, G.Mohan Krishna - ST.PETER ENGINEERING COLLEGE TELAGANA,MAISAMMAGUDA,DULLAPALLY,INDIA
Page No: 92-99
DOI:09.0014.MSJ.2020.V9I9.0086781.1211

13. SNDDNA: Secure Numerical Data using DNA Cryptography Method in Cloud Computing Environment
L. Leelavathy, Dr. Ramalingam Sugumar - Christhu Raj College (Affiliated to Bharathidasan University) Tiruchirappalli, Tamil Nadu, India

123

Scanned with CamScanner

सत्ता संघर्ष, पलायन और 'इसी सदी के असुर'

डॉ. स्नेह लता नेगी
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

देश को आजाद हुए कई वर्ष बीत गए और हम लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखते हैं। जब भी हम लोकतंत्र की बात करते है तो हमारे सामने किसी भी देश की यही छवि उभरती है कि देश के हर नागरिक खुशहाल और बराबरी का अधिकारी हो. जहाँ एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से श्रेष्ठ या निम्न नहीं समझा जाता हो। संविधान की नजर में तो कोई भेदभाव नही है लेकिन क्या संविधान को व्यावहारिक बनाया गया है। लेकिन हम अपने देश समाज को देखते हैं तो हमे निराश होना पड़ता है जहाँ लोकतंत्र उन्ही के लिए है जिनके पास सत्ता है बाकी समाज तो सत्ताशासितों के अनुकूल चलती है या चलाई जाती है। अश्विनी कुमार पंकज की कहानी संग्रह 'इसी सदी के असुर' देश के उसी लोकतांत्रिक व्यवस्था पर सवाल उठाते हैं। जहाँ असुर जैसे आदिवासी समुदाय आज भी मिथकों में गढे गये राक्षस (असुर) के रूप में ही देखे जाते हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है। आदिवासियों की लड़ाई तो अपने को मनुष्य सिद्ध करने की रही है। जो लोग इंसान की गिनती में नहीं उन्हे संविधान और लोकतंत्र से क्या लेना देना। मिथकों में देव–असुर अमृत मंथन मे असुर पराजित होते हैं, असुरों के वही वंशज आज पलामू, लोहारदगा जिला, गुमला, नेतरहाट आदि क्षेत्रों में बसे हुए हैं जिनकी जनसंख्या 2011 के जनगणना के अनुसार 22,459 है। असुर आदिवासी मूलतः

126

अपना पारंपरिक पेशा लोहा गलाने का काम करते थे, साथ ही शिकार और बाद में खेती भी करने लगे। वर्तमान में भी असुर आदिवासी जीवन के मूलभूत सुविधाओं के लिए संघर्ष रहा है जहाँ स्कूल, स्वास्थ्य और यातायात की कोई व्यवस्था नहीं है। बॉक्साइट के खनन के कारण उनकी उपजाऊ जमीनें बंजर हो गई है और वह पलायन के लिए विवश है और गरीबी ने नाबालिक लड़कियों को शहरों की ओर खींच लिया है जहाँ वे अनेक तरह के शोषण झेलती हैं।

इसी सदी के असुर में छः कहानियाँ संकलित हैं। अगर 'सातवीं मंजिल का बूढ़ा' कहानी को छोड़ दें तो सभी कहानियाँ आदिवासी समाज की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। कहानी संग्रह की पहली कहानी 'जहाँ फूलों का खिलना मना है' में कथावाचक और मीतू के माध्यम से झारखण्ड के अलग राज्य बनने के बाद की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। झारखण्ड को बने नौ साल हो गए हैं लेकिन नक्सलवाद और भ्रष्टाचार दोनों ही चरम पर है जिसमें कोई बदलाव नहीं है। मीतू उदयपुर के स्टेट एजुकेशन रिसोर्स सेंटर में काम करती है और शिक्षा नवाचार में आदिवासी शिक्षण परंपरा पर अध्ययन कर रही है। इसी सिलसिले में वह झारखण्ड में आदिवासियों के बारे में जानकारी हासिल करने आती है। आदिवासी जानकारों से मिलती है और स्थितियों का आंकलन करती है।

'जहाँ फूलों का खिलना मना है' कहानी में आश्विनी कुमार पंकज झारखण्ड की राजनीतिक समस्याओं और चुनौतियों को लेकर सचेत है। झारखंड देश के सभी आदिवासी क्षेत्रों के मुकाबले सबसे पहले राजनीतिक स्तर पर चेतना संपन्न हुई है। जिसकी जनता करीब ढाई सौ साल से अपने अधिकारों के लिए लड़ रही है। अलग झारखण्ड राज्य के लिए मुख्यधारा की राजनीति से संघर्ष करता रहा और आज

Scanned with CamScanner

झारखंड राज्य भी बन गया जहाँ आदिवासी ही सत्ता में है। सत्ता में आये नौ वर्ष बीत गए लेकिन आदिवासियों की समस्याएँ ज्यों की त्यों ही दिखाई देती है। सत्ता में आने के बाद क्या उन्हें मूलभूत अधिकार से वंचित नहीं रखा गया? क्या झारखंड राज्य बनने के बाद नक्सलवाद, भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ कम हुई? ऐसा क्यों है कि आदिवासियों की ही सत्ता राज्य में होने के बावजूद आदिवासी अपने अधिकारों से वंचित है? इस संदर्भ में कहानी का यह अंश उल्लेखनीय है– "झारखंड की सत्ता पर रहे सभी चेहरे जरूर आदिवासी हैं, लेकिन वे जिसकी उपज हैं और इस पूरे खेल के पीछे कौन है यह भी तो सोचो। यहाँ होता वही है जो मुख्यधारा चाहता है। आदिवासियों की आड़ में जिन लोगों ने अपने हित साधे हैं, वही लोग मीडिया के जोर पर आदिवासियत को बदनाम करने में लगे हैं।"[1]

आज भी झारखंड, छत्तीसगढ़ के क्षेत्रों में नक्सलवाद के नाम पर बन्दुक चल रहे हैं और हर पार्टी अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेक रही है। दोनों तरफ की गोलाबारी में आदिवासी ही मर रहे हैं। ऐसे में आम आदिवासी के पास विकल्प नहीं है कि वह किसे चुने। नक्सली को शरण देने के आरोप में पुलिस प्रशासन की बन्दूक से आम आदिवासी का सीना ही छलनी हो रहा है। लेखक की गहरी चिंता इस ओर है कि मुख्यधारा की राजनीति किस तरह राज्य के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के लिए इन आदिवासियों के चेहरों का इस्तेमाल कर उनकी आदिवासियत को मीडिया के दम पर बदनाम करने की भी कोशिश हो रही है। "वह इसलिए कि पिछले नौ सालों में डेढ़ सौ से ज्यादा बहुराष्ट्रीय खनन कंपनियों के साथ किये गये करार को झारखंड के आदिवासी लागू नहीं होने दे रहे हैं।"[2]

मीतू राज्य में नक्सलवाद की स्थिति के बारे में पूछती है तो उसकी सहेली उसे बताती है कि – "बस इतना ही कि वे भटके हुए लोग हैं। बंदूक की बजाय जनता की गोलबंदी पर उनका विश्वास जिस दिन हो जाएगा, देखना यह सत्ता और सरकार रेत की दीवार की तरह भरभरा कर गिर पड़ेगी।"[3] मीतू को हैरत होती है कि उसकी सहेली नक्सलवाद की रणनीति का पक्ष ले रही है, और कहती है कि

Scanned with CamScanner

ISSN NO : 2347-3150

क्या वह कम्युनिस्ट हो गई है? यहाँ लेखक का सवाल मीतू की सहेली का कम्युनिस्ट होने न होने का नहीं है उससे ज्यादा महत्वपूर्ण सवाल है न्याय और अन्याय के पक्ष में होने का है। यहाँ लेखक आदिवासियों के प्रति सरकार की नियत पर सवाल उठाता है– "जो संसद पिछले कई सालों से महिला बिल को पास नहीं होने दे रहा है, वह देश के गरीब, कमजोर वंचित जनता के साथ किस तरह से पेश आता रहा होगा।"[4] यह विचारनीय है।

कहानी में झारखंड की राजनीतिक परिस्थिति को दर्शाने और राजनीतिक चेतना जागृत करने मे मीडिया की भूमिका अहम रही है। यहाँ मीडिया जिस तरह के चुनाव के रिपोर्ट प्रस्तुत करता रहा है यह मुख्यधारा की राजनीति की साफ–सुथरी छवी को ही भुनने में लगा हुआ है और मधु कोड़ा की राजनीति को भ्रष्ट करती दिखाई देती है। मीडिया को लेकर मीतू का कथन देखने योग्य है– "मुझे तो लगता है कि इस बार चुनाव जनता नही यहाँ के अखबार लड रहे हैं। सुबह समाचार और दूसरे अखबारों ने यहाँ जिस तरह कैम्पेन चला रखा है वह संभवतः पत्रकारिता के इतिहास में अब तक नहीं हुआ था।"[5] आदिवासियों की अपनी राजव्यवस्था रही है जिसे धीरे–धीरे मुख्यधारा की राजनीति ने ध्वस्त कर दिया आदिवासी आज मुख्यधारा की राजनीति मे शामिल तो हो गए हैं लेकिन सत्ता का संचालन मुख्यधारा की राजनीति के अनुकूल ही चल रहा है। इस संदर्भ में हेरॉल्ड एस. तोपनो की यह बात उल्लेखनीय है– "राजनीति में बेदखल जनजातियों को एक सुनियोजित तरीके से लाने की पहल राष्ट्रीय सरकार कर रही है। मगर इसके फलस्वरूप जन–जातियों की पंरपरागत राजनीतिक संस्था तहस–नहस हो गयी और उन्होंने राजनीति स्वतंत्रता खो दी। इन्हे प्रभावी समाज की राजनीति में ढकेला गया। उनको राष्ट्रीय राज्य–व्यवस्था की राजनीति में शामिल करने के लिए उन पर प्रभावी समाज के लोगों को थोपा गया। राज्य का कानून और न्याय–व्यवस्था पुलिस और जेल उनकी इच्छा के विरूद्ध थोपा गया। कर और लेवी ने भी जनजातीय समाज को जकडने में राज्य की मदद की। नतीजन जनजातियाँ

Scanned with CamScanner

राजनीतिक रूप से असहाय हुई और उन्हें हाशिए में डाल दिया गया। जहाँ प्रभावित समाज शोषित ही रहे हैं।"[6]

यहाँ स्पष्ट है कि मीडिया किसी न किसी रूप में राजनीतिक सत्ता के साथ खड़ा है। झारखण्ड की मौजूदा राजनीति पर सवाल खड़ा कर क्षेत्रीय राजनीति को भ्रष्ट और मुख्यधारा की राजनीति को क्लीनचिट देने का काम मीडिया करती हुई दिखाई देती है। यहाँ लेखक सवाल उठाता है कि "मधु कोड़ा भ्रष्ट हैं, मतलब लालू यादव नहीं। बाबूलाल मरांडी भ्रष्ट हैं लेकिन राजनाथ सिंह नहीं, शीबू सोरेन भ्रष्ट हैं, परंतु मनमोहन सिंह दूध के धोये हैं। देखो, जब आप एक को टारगेट करते हैं तो प्रकारांतर से दूसरे को क्लीन चिट दे रहे होते हैं।"[7] यहीं लेखक मीडिया की जवाबदेही और उत्तरदायित्व पर सवाल उठाता है कि किस तरह मीडिया को जनता के हित में बिना राजनीतिक पक्ष लिए खड़ा होने की जरूरत है ताकि मीडिया लोकतंत्र का मजबूत स्तंभ बन सके। कहानी में दिखाया गया कि किस तरह मीडिया अपने पोलिटिकल एजेंडा पाठकों पर थोपता है और बिना चुनाव लड़े झारखंड की सत्ता पर नियंत्रण करना चाहता है। और किस तरह कॉरपोरेट घरानों का मीडिया पर कब्जा लोकतंत्र की निष्पक्षता और उसकी आवाज को कमजोर करने का काम कर रही है।

लेखक मीडिया में स्त्रियों के प्रतिनिधित्व पर भी सवाल उठाता है। मीडिया के क्षेत्र में स्त्रियों को लेकर आज भी मानसिकता में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। मीतू की सहेली के माध्यम से मीडिया में स्त्रियों की स्थिति का अवलोकन करते हैं। मीतू की सहेली जो मीडिया में अपना कैरियर आजमा चुकी है वह वहाँ कि स्त्रियों पर बात करते हुए कहती है– "यार यह समाज और देश औरतों के बारे में इससे आगे कभी नही सोंच सकता। हम आज भी उनके लिए नर्क के द्वार से ज्यादा हैसियत नहीं रखते।"[8] आदिवासियों को सरकारी क्षेत्र में रोजगार में संविधान द्वारा आरक्षण का अधिकार तो मिला लेकिन यह देखने की जरूरत है कि आरक्षित सीटों पर किस तरह फाउँड नोट सूटेबल कह कर उस आरक्षित सीट पर दूसरों को

Scanned with CamScanner

बिठाया जाता है। आदिवासियों के साथ यह ज्यादा हुआ है उन्हें मालूम है कि शांतिप्रिय आदिवासी उनका उस तरह विरोध नहीं करेंगे। जिस तरह अन्य पिछड़ा वर्ग करता है। कहानीकार इस कहानी में आदिवासी युवक जो किसी समय राँची के किसी कॉलेज में एडहाक लेक्चरर था जब नौकरी पक्की होने की बात आई तो उस आदिवासी की जगह कोई दूसरा आ बैठता है। आज वह अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए रिक्शा चला कर गुजारा कर रहा है। यहाँ मीडिया को अहम भूमिका निभानी चाहिए थी ताकि सरकार तक ऐसे लोगों की आवाज पहुँचे लेकिन पूरे मीडिया में सन्नाटा छाया हुआ है। यही लोकतंत्र का तकाजा है। कहानी का शीर्षक 'जहाँ फूलों का खिलना मना है' अपनी सार्थकता सिद्ध करता है कि आदिवासी क्षेत्रों में नये विचार, आन्दोलन और चेतना के बीज प्रस्फुटित न होने पाये यही कोशिश सत्ता के मठाधीश , कॉरपोरेट घराने और खदान कंपनियाँ करती नजर आती है। अगर आदिवासी क्षेत्रों में विद्रोह और चेतना के फूल खिलने लगें तो इनकी दुकानें बंद होते देर नहीं लगेगी।

'भूत का बयान' कहानी में लेखक साठ वर्ष के आस–पास की उम्र का फूदन नाग के दो एकड़ बारह डिसमिल ज़मीन का दिकू (बाहरी व्यक्ति) के हड़पने पर केन्द्रित है। दिकू फूदन नाग की बूढ़ी माँ को बहला–फुसला कर फूदननाग की ज़मीन अपने नाम कर लेता है और फूदन नाग को मरा हुआ घोषित कर देता है। फूदन उस दौरान गाँव में अकाल पड़ने के कारण मजबूती के लिए पंजाब गया हुआ था। पंजाब में भी वह दिकुओं के शोषण का शिकार होता है जिस घर में वह काम किया करता था वहाँ के मालिक ने मज़दूरी माँगने पर उसे जेल भेज देता है। मेहनत मजदूरी करने अपने गाँव से बाहर आये आदिवासियों के साथ उनके मालिक किस तरह का बर्ताव करते हैं फूदन नाग का यह कथन उल्लेखनीय है– "वहीं मालिक से पइसा माँगने पर झगड़ा

Scanned with CamScanner

हो गया। मालिक ने हमको फंसाने के लिए थाना–पुलिस कर दिया।... आठ साल जेहल खरे। इधर गाँव में सब कोई बुढ़िया को समझा दिया मै मर गया हूँ। बुढ़िया भी मान ली।"[9] इन आठ सालों के कारावास ने फूदन का जीवन ही बदल दिया। जहाँ उसे अब अपने जिंदा होने का प्रमाण देना पड़ रहा है। फूदन नाग अपने को जिंदा साबित कर पाया तो कोर्ट उसकी ज़मीन उसे दे देगी। फूदन का जीवन संघर्ष अपने के जिंदा साबित करने का है और कहानी का केन्द्रीय बिंदु भी। फूदन के जीवन की कितनी बड़ी बिडंबना है कि पूरा गाँव उसे बचपन से जानता है, उसकी माँ पत्नी उसके साथ हैं। लेकिन फूदन के पास कोई कागजी प्रमाणपत्र नहीं है कि जो उसे कानून के सामने यह साबित कर पाये कि वह ही फूदन नाग है। कानून की नजरों में उसके साथ खड़े लोगों का कोई महत्त्व नहीं है लेकिन कागजी तंत्र इतना महत्त्वपूर्ण हो गया कि उसके अभाव में फूदन स्वयं को जीवित साबित नहीं कर पाया।

आदिवासी जिस समाज व्यवस्था में रहता है वहाँ कभी कोई लिखा पढी नहीं थी ज़मीन उनके कब्जे में है तो वह उनकी है कोई सरकारी तंत्र वहाँ काम नहीं करता लेकिन जैसी–जैसी व्यवस्थाएँ बदली और फोरेस्ट एक्ट आदि बनने लगे उसके बाद ज़मीन के भी नाम चढ़ने लगे लेकिन आदिवासी समाज उन परिवर्तित व्यवस्थाओं से परिचित नहीं था जिसके कारण फूदन नाग जैसे आदिवासियों की ज़मीन बाहरी लोगों ने हड़पना शुरू किया। हम सुनते आये हैं कि भारत के सभी नागरिक को न्याय का अधिकार है लेकिन यह हमारी कैसी न्याय व्यवस्था है जहाँ गरीब उसकी पहुँच से दूर है। फूदन नाग जैसे

Scanned with CamScanner

आदिवासी जो कानून की भाषा नहीं जानते उसकी कोई सुनने वाला नहीं है। ऐसे में हमारी न्याय व्यवस्था पर सवाल खड़े होते हैं। फूदन नाग कहता है– "साहेब जी जोहार! मैं अनपढ़ फूदन नाग नइ नहीं जानता कि पिछले कई सालों से उनकी तरफ से का कहा जा रहा है। हमारी तरफ से का बोला जा रहा है। आप का कहते रहे हैं और आज आखिरी बार भी जाने का कहने वाले हैं। मैं तो ठीक से हिंदी भी नहीं जानता। हिआँ की जो भाषा है वह तो मेरे पुरखों की खातिर भी अबूझ थी।"[10] फूदन नाग के माध्यम से लेखक भारतीय न्याय व्यवस्था के कार्यप्रणाली पर सवाल उठाते हैं। न्याय व्यवस्था जो आम जनता के लिए है लेकिन न्यायालय में होने वाले संवाद उसकी भाषा, कार्य प्रणाली, पक्ष–विपक्ष के संवाद को जानने समझने में आम व्यक्ति असमर्थ दिखाई देता है जैसे फूदन नाग हमें दिखता है। फूदन को नहीं मालूम कि उसकी बात को किस तरह न्यायालय में प्रस्तुत किया जा रहा है और कितनी दृढ़ता के साथ उसका पक्ष रखा जा रहा। यह फूदन की कमजोरी नहीं कही जा सकती हमारी न्याय व्यवस्था इतनी जटिल है कि पढ़ा लिखा व्यक्ति भी उसे समझने में असमर्थ महसूस करता है। धन बल से कैसे दिकूओं ने आदिवासियों की ज़मीनों पर कब्जा कर उन्हें अपने गाँव, खेत खलिहान छोड़ने को विवश कर दिया है साथ ही बाहरी लोगों के आने से जंगल की संस्कृति और पर्यावरण में बदलाव आया है फूदन नाग अपने आजा (परदादा) की कहानी सुनाता है। पहले लोग जंगल में जाने से डरते थे क्योंकि जंगल घना होता था। लेकिन आज जंगल बाहरी लोगों से डर रहा है "आज तो उल्टा हो

Scanned with CamScanner

ISSN NO : 2347-3150

गया है हजूर। अब जंगल–पहाड़ ही आदमी से डरता है। आप कहिएगा क्यों, तो इसलिए साहेब जी कि जंगल अब पहले जैसा ताकतवर (घना) नहीं रहा दिकू लोग और जंगली बाबू सब उसे काट–कूट कर एकदम बाँस जैसा कमजोर कर दिये हैं।"[11]

चौदह सालों से फूदन नाग अपने को जिंदा साबित करने में लगा रहा ताकि उसका जमीन उसे वापस मिल सके कोर्ट कचहरी के चक्कर काटता रहा। इतने लम्बे संघर्ष के बाद भी षड्यंत्रकारी तंत्र जीत जाता है और फूदन नाग हार जाता है। फूदन जैसे आदिवासी व्यक्ति षड्यंत्र तंत्र को नहीं जानता वह दूसरे आदिवासियों की तरह ही मनुष्यता में विश्वास रखता है। उसे क्या मालूम कि एक मनुष्य अपने सीमित स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरे मनुष्य को मार सकता है या मरा हुआ घोषित कर सकता है। उसने अपने समाज में कभी भी इस तरह के षड्यंत्र होते नहीं देखे। फूदन को न्यायालय से निराश होना पड़ता है लेकिन वह जज के सुनाये निर्णय को स्वीकार नहीं करता और कोर्ट परिसर में ही दिकू दुश्मन पर सवार होकर खूब पीटता है। और फूदन जज को कहता है– 'ई लुटेरा दिकू को हम नहीं छोड़ेंगे। आपका फैसला हमको मंजूर नहीं है। कागज का नेयाय हम नहीं मानेंगे। इसको कभी भी नहीं छोड़ेंगे। आज इसका मुंडी–पेट सब काट देंगे। मरा हुआ आदमी का आपका कोरट का कर लेगा साहेब जी?"[12]

आदिवासी समाज अपने में स्वायत समाज है जहाँ सुख और शांति से लोग रहते हैं लेकिन दिकुओं की लालच और पूँजीवादी संस्कृति के प्रवेश ने

Scanned with CamScanner

आदिवासियों का सब कुछ ध्वस्त कर दिया आज फूदन अपने जीवित होने की सबूत जुटाने में असफल होता है। लेकिन उसकी जीवन जीने की जीवट इच्छा शक्ति में किसी प्रकार की निराशा का भाव नहीं दिखता है। वह हार के बाद भी अपनी पहचान को वापस हासिल करने की अदम्य साहस लिए पूरी व्यवस्था से भिड़ जाता है। यही अदम्य जिजीविषा आदिवासी जीवन का आधार है जो वह अपने जंगल के परिवेश से सीखता है और उसके संस्कार का अभिन्न हिस्सा है। फूदन का अपनी जमीन के लिए संघर्ष अपने पूर्वजों के संचित ज्ञान परंपरा और संस्कार को संचित और संरक्षित करने का जज्बा है। ताकि वह अपनी भावी पीढ़ी को सुरक्षित स्वच्छ भविष्य दे सके। हेरॉल्ड एस. तौपनों के विचार इस संदर्भ में देखा जा सकता है– "भाषा और संस्कृति में दिकुओं द्वारा विकार भरने के कारण हमारी जमीन और हमारा समाज चिंतित है। हमारे पूर्वजों द्वारा हमें सौंपी गयी और भरण–पोषण के लिए दी गयी ज़मीन को हवा–पानी और जंगल को अपमानित किया जा रहा है। शताब्दियों से हम घने जंगलों में विचरण करते रहे, हर दिन हमने प्रकृति से सीखा, प्रकृति ने हमें सिखाया, प्रकृति को हमने सम्मान दिया। लोग खुली हवा के बगैर जीवित नहीं रह सकते, हम खुले जंगलों के बिना नहीं रह सकते। लेकिन हमारे जंगलों को लोग जीवित मुर्गे के पंख नोचने के समान निर्दयता से पुदक कर साफ कर रहे हैं। हमारे जंगलों में खदाने खोदी जा रही हैं। भयाक्रांत हम चुप हैं, क्योंकि हज़ारों आरा मशीनों की दैत्याकार दातों से लकड़ियों को इस तरह काटा जा रहा है मानो पेड़ रातभर में उग कर तैयार हो जाते हैं।"[13]

Scanned with CamScanner

ISSN NO : 2347-3150

"गाड़ी लोहरदगा मेल" इस संग्रह की तीसरी महत्वपूर्ण कहानी है। टांगरबसली रांची–लोहरदगा रेल रूट पर एक छोटा सा आदिवासी गाँव है जो राँची शहर से 20 किलोमीटर की दूरी पर है। रांची लोहरदगा ट्रेन इस आदिवासी गाँव के लोगों के आर्थिकी का अभिन्न हिस्सा है। ट्रेन से रांची साग–सब्जी, मेहनत–मजदूरी करने जाते आदिवासी लोगों की जीवन रेखा भी इसे कहा जा सकता है। गाँव की स्त्रियाँ राँची शहर में रात के दस बजे लगने वाली सब्जी बाजार में अपने खेत के साग–सब्जी बेचने आती उन्हीं स्त्रियों के साथ सुसाना भी छः सात बार रात के सब्जी बाजार में अपनी साग–सब्जी लेकर आती है। अक्सर उसकी माँ आती थी जब वह अस्वस्थ होती तो माँ की जगह सुसाना आती। रात के दो घंटे का यह बाजार गरीब आदिवासियों के लिए तुरंत नगद पाने का अच्छा विकल्प था। इसलिए गाँव की हर स्त्री इस बजार में आती और अपनी परिवार का भरण–पोषण करती। गाँव के साफ–सुथरे स्वच्छ साग सब्जियों की माँग शहरों में ज्यादा भी और आदिवासी स्त्रियों को अच्छा दाम भी मिल जाता था। दो घंटे बाजार में सब्जी बेच कर वह सुबह की ट्रेन से गाँव लौट जाती सुबह तक प्लेटफॉर्म पर रात बिताते गर्मियाँ तो आसानी से कट जाता था। लेकिन सर्दियों में रात काटनी उतनी ही मुश्किल हो जाती साथ में पुलिस बदमाशों की भी कमी नहीं जो उनहें तंग करते पैसा वसूलते इन सब के बावजूद में आदिवासी स्त्रियाँ अपने परिवार की बेहतर स्थिति के लिए हर जोखिम से बिड़ने को मुस्तैद दिखती हैं। रचनाकार ने इस कहानी में आदिवासी स्त्रियों की संघर्ष और विषम परिस्थितियों में

136

Scanned with CamScanner

हिम्मत न हारने की अथाह जिजीविषा को दर्शाया है। "सब्जी, दातुन, लकड़ी, पत्तल–दोना वगैरह लेकर ढेर सारी औरतें हर रोज रांची आती हैं। दिन भर चुटिया, बहु बाजार, डेली मार्केट के बाजार–मोहल्लों में अपना सामान बेचती हैं और तकलीफ भरी पूरी रात गुजार कर दूसरे दिन घर लौटती हैं।"[14] कहानी की नायिका लोहरदगा कॉलेज में बी.ए. फाइनल में पढ़ रही है। उसे रांची बाजार जाकर सब्जी बेचना अच्छा नहीं लगता था फिर भी घर की स्थिति देखकर पिता की दवाई के लिए पैसों की जरूरत उसे न चाहते हुए भी बाजार जाने के लिए विवश करता है। सुसाना को रात के बाजार जाने की सोच से भी घबराहट होने लगती है रात किस तरह काटेगी, उस दिन जब सब्जी बेचने के बाद प्लेटफार्म की सर्दी से बचने के लिए ट्रेन की बोगी में जाती है तो पुलिस वाला उसकी इज्जत पर हाथ डालने की कोशिश करता है दोनों के बीच झड़प होती है और पुलिस वाले के साथ मुठभेड़ में उसके साथ की आदिवासी स्त्रियाँ साथ देती है और पुलिस वाले को जमकर पीटती है। जनता की सुरक्षा के लिए बेहतर प्रशासन व्यवस्था बनाना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिए। लेकिन आज भी हमारे समाज में गरीब आदिवासी, दलित और स्त्री इसी प्रशासन तंत्र के शोषण का शिकार हो रही है। कहानी के माध्यम से लेखक समाज के उस यथार्थ को हमारे सामने रखते हैं कि जनता के रक्षक होने का दावा करने वाली पुलिस ही किस तरह भक्षक बन रहा है।

रेलवे पुलिस–स्थानीय गुंडों का एक पूरा गिरोह था जो रांची आने वाले और प्लेटफॉर्म पर रात गुजारने वाले गरीब आदिवासियों ग्रामणों की मामूली

Scanned with CamScanner

ISSN NO : 2347-3150

कमाई पर घात लगाये रहते थे। ट्रेन में आते–जाते टी.टी.–पुलिस लेते थे सो अलग।''[15] कहानी देश के भ्रष्ट प्रशासन तंत्र की कलई खोलती है जो गरीब किसान और आदिवासी जो नकद कमाई की लालसा में गाँव से साग–सब्जी और रोज की जरूरत की चीजें शहर में लाकर बेचता है और उनकी मेहनत की कमाई शासन तंत्र के भ्रष्ट कर्मचारी और गुंडे मवाली बड़ी आसानी से लूट लेते हैं। दूसरी तरफ इसी प्रक्रिया में सुसाना जैसी कितनी आदिवासी स्त्रियाँ पुलिस और शहरी लोगों के हाथों शोषित होती है उसका कोई हिसाब नहीं है। हर रोज कोई न कोई सुसाना इसी तरह पुलिस वालों या हफ्ता वसूलने वालों से अपने को बचाने का संघर्ष करती है। कहानी में सुसाना की ओर पुलिस वाला बढ़ता है तो सुसाना के मन में यही विचार चल रहे है। 'गाँव से आने वाली बहुत सारी आदिवासी लड़कियों और औरतों की तरह ही उसकी यह रात भी काली होने वाली है। काली रात की ऐसी कई कहानियों को दिन के उजाले कभी नहीं जान पाते। इस अर्थ में घर गाँव से निकली हर तीसरी–चौथी आदिवासी लड़की काली रात के कहानियों की जीती–जागती कब्रगाह है। पर नुची–खुंची देह और लहूलुहान आत्मा लेकर जिंदा रहने के ख्याल से ही उसकी सांसे गाड़ी, लोहरदगा मेल से भी भयानक गति से भागने लगी।''[16] इस देश की सभी आदिवासी स्त्रियाँ हैं जो अपने परिवार के भरण पोषण में पुरुष से कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं उसे अपने समाज में तो बराबरी का दर्जा मिला है लेकिन बाहरी समाज में जब वह प्रवेश करती है तो

Scanned with CamScanner

सभ्य समाज के शोषण तंत्र का वह भी शिकार होती है लेकिन यह स्त्रियाँ एक जुट होकर हर तरह के तंत्र पर जीत दर्ज करती है।

फेंटकरी कहानी में हरमाभाई अचानक पटवारी का कॉलर पकड़ता है। और चीखता हुआ कहता है– "यही है न वह जमीन जिसको तूने अपने रपोट में बंजर और कंकरीली–पथरीली बताया था, आँ... बोली...? यही जमीन है न। आँखे खोलकर देखा था बंजर नइ है ये जमीन देखो लहलहाती हुई गेहूँ की इन बालियों को ही दे फाड़कर देखो... पथरीली जमीन पर उगती देखी है तूने कहीं ऐसी फसल? बोलो? जवाब दो?"[17] इसी तरह बडे–बडे ठेकेदार, कंपनी के मालिकों और सरकारी परियोजनाओं के नाम पर आदिवासियों की अच्छी खासी उपजाऊ जमीन को षड्यंत्रकारी प्रशासनक तंत्र बंजर घोषित कर उनसे अच्छी खासी रकम वसूलते है और आदिवासी अपनी जमीन से बेदखल होते रहे हैं।

यह कहानी साण्डभाटिया बस्ती के अढाई सौ परिवारों की अपनी जमीन के लिए संघर्ष की कथा है। इस गाँव की 292 बीघा 7 बिस्वा जमीन पर श्रीनाथ सीमेंट कंपनी खोलने के लिए जमीन अधिग्रहण का नोटिस इस गाँव के जमीन के मालिकों को मिलता है। जिसका सभी विरोध तो करते हैं लेकिन प्रशासन तंत्र के षड्यंत्रों से यह आदिवासी वाकिफ नहीं थे। आदिवासियों के भीतर पुलिस, कानून और प्रशासनतंत्र का हर संभव डर पैदा किया गया। "हम लोग सरकार से नहीं लड़ सकते पुलिस और कानून बहुत बड़ी ताकत है। भगवान के बाद यही इस दुनिया के मालिक हैं।"[18] साण्डमारिया गाँव में

139

Scanned with CamScanner

पढ़े–लिखे लोग नहीं थे। जो पटवारी, तहसीलदार की भाषा को समझ सके और उनका विरोध कर सके गाँव का एकमात्र पढ़ा–लिखा व्यक्ति रामा गमैती गाँव वालों को समझाता है और ज़मीन फैक्टरी के लिए नहीं देने के लिए गाँव वालों को एकजुट करता है और तहसीलदार को लिखित प्रार्थना–पत्र भेजता है। जो तहसीलदार को पसंद नहीं आता। "मुर्ख हो तुम लोग मुर्ख इतना अच्छा मौका हाथ लग रहा है बेवकूफ कहीं के। लक्ष्मी खुद चलकर आ रही है और तुम हो कि–।"[19] तहसीलदार के प्यार और रोबदार आवाज से सभी लोगों का हिम्मत डगमगाने लगता है। लेकिन रामा दृढ़ता से अपने निर्णय पर टिका रहता है। उसकी दृढ़ता तहसीलदार को पसंद नहीं आती और वह अपनी असलियत दिखाता है। उसके जैसे दिकुओं की नजर में आदिवासी क्या है "ऐसा दो टूक जवाब सुनते ही तहसीलदार की एड़ी से माथे तक गुस्से की लहर दौड़ गई। 'तो देश अब तुम लंगटों की मर्जी से चलेगा।' आवाज में वही पहली वाली सख्ती थी। 'हूँऽऽ।"[20] इसी तरह की मुख्यधारा की सोच को लेकर एस.सी. रॉय की किताब खाड़िया समाज की प्राक्कथन में समाजशास्त्री आर्नू आर. मैरिट का कथन उल्लेखनीय है। "मेरे कुछ विद्यार्थी, यद्यपि सारे नहीं, एक श्रेष्ठता के भाव के कारण उन समाजों के बारे में अज्ञानता प्रदर्शित करते हैं जैसे कि ये तथाकथित पिछड़े लोग कितनी अन्य दुनिया के निवासी हैं। मगर विज्ञान के विषय में हम यह कह सकते हैं कि यह किसी वस्तु को अस्पृश्य नहीं मानता। विज्ञान के जानकार के लिए सभी वस्तुएँ शूद्र हैं। दुर्भाग्यवश 'आम आदमी' रंग पूर्वाग्रह से ग्रस्त होता है और वह ऐसी सतही

Scanned with CamScanner

ISSN NO : 2347-3150

विशिष्टता को बढ़ावा देता है जो हर प्रकार की समूहजनित स्वार्थपरता का मुख्य कारण बनता है।'[21]

इतिहास का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि इसी विशिष्टता के भाव बोध से ग्रसित मानसिकता ने ही एक मनुष्य को दूसरे से श्रेष्ठ बनाता आया है और हमेशा ही श्रेष्ठता बोध वाले मानव समुदाय ने अपने समूहजनित स्वार्थ के लिए आदिवासियों के संसाधनों के दोहन के लिए उन्हें निकृष्ट साबित करने की हर संभव कोशिश की है। जैसा कि यह कहानी भी उसी यथार्थ का ज्वलंत दस्तावेज है जहाँ विकास के मॉडल आदिवासियों पर थोपा जा रहा है। लेकिन जिसके लिए विकास हो रहा है उनकी सहमति असहमति और वे किस तरह का विकास चाहते हैं कोई जानना नहीं चाहता सभी विकास का डुगडुगी बजाता प्रशासन, सांसद, विधायक सरपंच सभी साण्डमारिया गाँव आते हैं और लोगों को लुभाने का हर संभव कोशिश करते हैं और अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने को कहता है "जमीन नहीं देकर बड़ी गलती कर रहे हो जो कि आर्थिक प्रगति और समाज के विकास को रोक रहे हो गाँव में फैक्टरी लगेगी सबको रोजगार मिलेगा। काम के लिए बाहर जाने की जरूरत नहीं होगी स्कूल कॉलेज और अस्पताल खुलेंगे। भविष्य सुधर जायेगा। फिर तत्काल उन्हें प्रति बीघा सात हजार रुपया तो मिलेगा ही मिलेगा।'[22] गाँव के आदिवासी बेशक पढ़े–लिखे नहीं थे लेकिन पहले के अनुभवों से उन्होंने बहुत कुछ सीखा था। उनके आस–पड़ोस के गाँव में सीमेंट फैक्टरी के लगने से वहाँ के लोगों की क्या स्थिति है वे अच्छी तरह जानते थे। उन्हें इस बात की

Scanned with CamScanner

समझ है कि फैक्टरी से उनका विकास तो निश्चित तौर पर नहीं है जो बार–बार उन्हें समझाने आये हैं उन्हें अपना विकास अवरुध्द होता नजर आने लगा तो सांसद गुस्से से चेतावनी देते हैं। "क्षेत्र का विकास होकर रहेगा। कोई माई का लाल नहीं रोक सकता उसे। इलाके का विकास नहीं हुआ तब तक वह चैन की सांस नहीं लेगा। विधायक ने सांसद की हाँ में हाँ मिलाई। रामा को किनारे ले जाकर धमकाया। लीडर मत बनो। घुसेड़ दूँगा सब लीडरई। कोई बचाने नहीं आएगा। रामा मुस्कुराता रहा। उसने देखा सारे गाँव की निगाह उसी पर लगी हुई थी। थक–हार कर आधी रात को ही सांसद महोदय विधायक और तहसीलदार के साथ लौट गए।"[23] आदिवासियों की विकास की चिंता आज शासन तंत्र के निचले पायदान से लेकर सर्वोच्च अधिकारी, सांसद, विधायक सभी को है लेकिन क्या यह चिंता वास्तविक है? अगर वास्तव में वह आदिवासी क्षेत्रों का विकास चाहते उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाने चाहते तो बेहतर शिक्षा की सुविधाएँ जुटाते उनकी भाषा संस्कृति के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण विकसित करते उनके जल, जंगल ज़मीन का संरक्षण करते ना कि उन्हें अपनी ही ज़मीन से विकास के नाम पर बेदखल करते। तथाकथित दीकू समाज ने आदिवासियों के विकास के नाम पर अपनी ही तिजोरियाँ भरी और अपनी ही राजनीति चमकाते रहे हैं। कहानी का पात्र रामा आदिवासी समाज के चेतना संपन्न वर्ग का प्रतीक है जो अपने समाज के लोगों को अपनी ज़मीन पर जमे रहने की ऊर्जा प्रदान करता है। शासन तंत्र के खिलापफ निरंतर संघर्ष का साहस रखता है। अब दीकू समाज को चिंता

Scanned with CamScanner

करने की जरूरत नहीं कि आदिवासी क्षेत्र का विकास कैसे हो। आदिवासी अपने क्षेत्र का विकास अपनी शर्तों पर कैसे करना जानने समझने लगा है। रामा आदिवासी समाज की नई पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो शोषणतंत्र के विरुद्ध आवाज उठाना जानता है।

रचनाकार देश की प्रशासन व्यवस्था का व्यवहार कितना गैर जिम्मेदाराना है इस कहानी के माध्यम से चित्रित करते हैं जब सभी आदिवासी मिलकर राज्यपाल को पत्र लिखकर अपनी समस्या से अवगत करते हैं तो तहसीलदार इसे कुछ लोगों का असंतोष कहकर सीमेंट फैक्टरी की स्थापना के पक्ष में कलेक्टर को रिपोर्ट भेज देता है। यही स्थिति क्रमोबेश सभी आदिवासी क्षेत्रों की है जहाँ भ्रष्ट पटवारी तहसीलदार गलत रिपोर्ट बनाकर अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए पूरे गाँव के लोगों की भावी पीढ़ी के जीवन से खिलवाड़ करते हैं उन्हें बेदखल होने के लिए विवश करते हैं।

'इसी सदी के असुर' कहानी रंथु असुर की पुरखों की ज़मीन खदान कारखाने के मालिकों द्वारा हड़पने की कहानी है जहाँ बॉक्साइट की छाई से भविष्य के लिए ज़मीन खेती योग्य भी नहीं रही। रंथु असुर के घर का सब कुछ बिक चुका था। पेट की भूख शांत करने के लिए अब उसकी पत्नी का एकमात्र चाँदी का आभूषण सिकड़ी था जिसे वह बाजार में बेच कर चावल–दाल खरीदने घर से शहर की तरफ निकलता है। आदिवासियों के पास अब न तो ज़मीन है और न ही रोजगार दो वक्त की रोटी के लिए ही जीवन का संघर्ष है उससे आगे की सुविधाओं की तो वह कल्पना ही नहीं करते। इन

Scanned with CamScanner

सबका जिम्मेदार आदिवासी समाज बड़े–बड़े पूँजीपतियों, खादान मालिकों और सरकार की योजनाओं को मनती है। यहाँ रंधु असुर के माध्यम से लेखक ने आदिवासियों की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है– "उसके पुरखों को क्या मालूम था कि रंधु असुर को एक दिन इतना बुरा समय देखना पड़ेगा। 'बिर' (जंगल) 'होड' (इंसान) के वंशजों से जंगल छीन लिया जाएगा। ज़मीन जबरन ले ली जाएगी। नदियाँ, हाडी, चुंआ... पानी के सभी स्रोतों को खदान–कारखाने पी जाएंगे। पहाड़ों की पीठ पर टंगे, खेत बॉक्साइट की छाई से ऐसे दब जायेंगे कि कोई फसल फिर कभी किसी पीढ़ी में सांस नहीं ले पाएगी। जानवरों को जंगल छोड़कर भाग जाना पड़ेगा। जो नहीं भाग पायेंगे उन्हें मार डाला जाएगा। पाट के इस पूरे इलाके में बड़े–बड़े चक्केवाले मशीनी जानवर (ट्रक) दिन–दिन जंगल–धरती असुर जीवन को रौंदते फिरेंगे। अपने ही जंगलों में सभ्यता के आदिम निवासी असुरों का वंशज रंधु किसी बाघ की तरह शिकारियों से घिर कर ताउम्र भागता रहेगा।"[24] बड़े–बड़े पूंजीपतियों के आगमन और खादानों कारखानों ने आदिवासियों की ज़मीन तो छीना ही है साथ ही बाहरी लोगों के आगमन से आदिवासियों की सामाजिक सांस्कृतिक जीवन को भी प्रभावित किया है। 'इसी सदी के असुर' आदिवासियों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तबाही के दर्द को भी बयान करता है। सरकार और पूंजीपति जिसे विकास कह रहे हैं उस विकास के नाम पर अंधा–धुंध जंगल के जल स्रोत और उपजाऊ ज़मीने किस तरह नष्ट हो रही है, 'इसी के सदी के असुर' तथाकथित विकास के उसी मॉडल की पोल

Scanned with CamScanner

खोलती है जो पोलिटिशिन, आला अफसर, कॉर्पोरेट घराने और मीडिया के गठजोड से संचालित हो रहा है। भूमंडलीकरण के अंधाधुंध प्रतिस्पर्धा के दौर में सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टिकोण से जो क्षति आदिवासियों की हुई है उसकी बरपाई नहीं हो सकती है उनकी पूरी की पूरी भावी पीढ़ियाँ भूखमरी के शिकार हो गये हैं। कभी आत्मनिर्भर खुशहाल आदिवासी गाँव समाज आज गरीबी की गरत में जीने के लिए मजबूर है। रंथु असुर की यह पीड़ा इस कथन में देखी जा सकती है "लेकिन जब से हम लोग के पाट का इलाका में बॉक्साइट का खदान खुला, डम्पर–गाडी और बेवपारी–दलाल सब आने लगे दारू–निसा जुआ का बाजार लगने लगा, सभी असुर लोग जैसा तुम्हारे आजा भी गरीब होते चले गये। हम लोग का जंगल को घेर के कंपनीवाला सब आजा लोग को जानवर जैसा खदेड दिया। कंपनी आने से पहले आजा लोग कचिया–पाइसा नई जानते थे बाबू। पहले जमाना में रूपिया–पइसा नहीं था। फिर भी आदिवासी लोग सुख–मजा से जीते थे। अब सब कुछ के लिए कचिया चाहिए। आदिवासी लोग के पास कचिया कहाँ है। खाली जंगल भर था, उसको भी छीन लिया सरकार–पुलिस ने। बचा–खुचा जंगल तक नहीं छोड़ रहे है। जंगल साहेब लोग अभी भी आदिवासी लोग को भगाने में लगा हुआ है।"[25]

कहानी आदिवासियों का महत्वपूर्ण त्यौहार सरहुल के महत्व को भी चित्रित करता है कि किस तरह आदिवासी अपने पर्वों को मनाता है और आनंदित होता है लेकिन पूंजीवादी व्यवस्थाओं ने उनकी पारंपरिक पर्व त्यौहारों

Scanned with CamScanner

और उनके पारंपरिक ज्ञान को भी तबाह करा दिया है– "फिर तो मांदर–नगाड़े और हांडिया (चावल की शराब) रात भर, पूरे गाँव–जंगल पाट को महदहोश किये रही, लेकिन जैसे–जैसे खदान खुलते गये पसरते गए पूरे असुर इलाके में बाजार उनके जीने रहन–सहन के तौर तरीकों और पर्व त्यौहारों तक भी पहुँच गया। लोहा बनाने का पारंपरिक पेशा तो जाने कब का टाटा जैसे कारखाने लील चुके थे। रंथु को तो जब से होश हुआ है, तभी से वह हर पर्व–त्यौहार में झूले, मिठाई, सिंदूर–टिकुली, नकली गहनों आदि की दुकाने देखते आ रहा है। जो असुर आदिवासी समाज अपनी जरूरतें खुद पूरी करता था कुछ के लिए जंगलों पर निर्भर रहता था, अब बाजार पर निर्भर हो गया था। अखड़ा अब भी गाँव में पर्व–त्योहारों में जमता है पर ज्यादा भीड़ मेले में ही दिखायी देती है।"[28]

जब बाहरी लोगों का आगमन आदिवासी क्षेत्रों में होता है और उनका और उनके संसाधनों का शोषण दोहन करने लगते हैं तो ऐसी ही परिस्थितियों में वहाँ नक्सलियों का समूह भी आता है। इस कहानी में रंथु असुर और सबन असुर के माध्यम से दो पीढ़ियों के बीच का नक्सलियों को लेकर द्वंद भी दिखाई देता है। रंथु जंगल में जब नक्सलियों के आने की आहट सुनता है तो चट्टान की ओट में छुप जाता है और सबन को भी खींच कर बिठाता है। रंथु नक्सलियों से डरता है "इतने करीब से रंथु ने नक्सलियों को कभी नहीं देखा था और न ही उसका उनसे कभी सामना हुआ था। असुर बिरजिया, किसान आदिवासी तथा पाट के दूसरे समुदाय इन नक्सलियों से डरते भी थे और

146

Scanned with CamScanner

सहानुभूति भी रखते थे।"[27] लेकिन उसकी अगली पीढ़ी छोटा **सबन** असुर उसका स्वागत करता है और चिल्ला उठता है– "लाल सलाम" रंथु की पीढ़ी के आदिवासियों के वैचारिक सहमति नक्सलियों के प्रति बाहरी है लेकिन सबन असुर के लिए उनकी लड़ाई आदिवासियों की ही तरह बाहरी सत्ता उनके दमनकारी नीतियों से है। कहानी के अंत तक आते–आते रंथु को विश्वास होने लगता है कि उसकी अगली पीढ़ी इन पूंजीवादी ताकतों से संघर्ष कर विजय होगी "रंथु को लगा उसे क्या, जवान हो रही सबन असुर की अगली कोई भी पीढ़ी भूख से कभी नहीं हार सकती।"[28] यहीं आकर कहानी खत्म होती है लेकिन कहानी यहीं से एक नये संघर्ष की दिशा तय करती हुई दिखाई देती है।

अश्विनी कुमार पंकज अपनी कथा लेखन में आदिवासी समाज के संघर्षशील और चेतना संपन्न पात्रों के माध्यम से आदिवासी जीवन–जगत की यथास्थितियों को उसी रूप में चित्रित करते हैं जिस रूप में वह है। मौजूदा परिस्थितियों के प्रति उनके पात्र विद्रोह भी करते हैं और आदिवासी समाज की नई पीढ़ी के लिए संघर्ष की नई ज़मीन भी तैयार करती है।

Scanned with CamScanner

संदर्भ सूची

संदर्भ

1. इसी सदी के असुर, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन रांची, झारखण्ड, सं. 2010, पृ. 14
2. वही, पृ. 14
3. वही, पृ. 14
4. वही, पृ. 14
5. वही, पृ. 16
6. उपनिवेशवाद और आदिवासी संघर्ष, हेरॉल्ड एस. तोपनो, संपा. अश्विनी कुमार पंकज, विकल्प प्रकाशन, सं. 2015, पृ. 54–55
7. इसी सदी के असुर, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, रांची, झारखण्ड, सं. 2010, पृ. 16–17
8. वही, पृ. 18
9. इसी सदी के असुर, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन रांची, झारखण्ड, सं. 2010, पृ. 27
10. वही, पृ. 22
11. वही, पृ. 23
12. वही, पृ. 29
13. उपनिवेश और आदिवासी संघर्ष, हेरॉल्ड एस. तोपनो, संपा. अश्विनी कुमार पंकज, विकल्प प्रकाशन, सं. 2015, पृ. 25
14. इसी सदी के असुर, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन रांची, झारखण्ड, सं. 2010, पृ. 27

Scanned with CamScanner

15. वही, पृ. 35
16. वही, पृ. 38
17. वही, पृ. 40
18. वही, पृ. 47
19. वही, पृ. 44
20. वही, पृ. 44
21. खडिया समाज, भाग–1, एस.सी. रॉय, अनु. रंजना गुप्ता, प्रकाशन जेवियर पब्लिकेशस, राँची, सं. 2016
22. इसी सदी के असुर, अश्विनी कुमार पंकज, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन राँची, झारखण्ड, सं. 2010, पृ. 45
23. वही, पृ. 45
24. वही, पृ. 68
25. वही, पृ. 69
26. वही, पृ. 73
27. वही, पृ. 77
28. वही, पृ. 80

149

Scanned with CamScanner

अंक 47, अक्टूबर-दिसम्बर 2020 ISSN 2347-8454

अनहद साँचा

साहित्य और संस्कृति की त्रैमासिक पत्रिका

संपादक

द्वारिका प्रसाद चारुमित्र

अतिथि संपादक

सुशील द्विवेदी / सरोज कुमारी

150

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

सम्पादकीय	सम्पादकद्वय	

आलेख

1. प्रो. चंद्रदेव यादव	नामवर सिंह और छायावाद	: 05
2. रचना सिंह	क्योंकि मैं कभी ताकत से नहीं बोला	: 25
3. आशीष त्रिपाठी	प्रेमचंद की सामाजिक चेतना	: 31
4. समीक्षा ठाकुर	पंत : दूर्वा की मृदु छाया में	: 46
5. डॉ. सरोज कुमारी	आदिवासी समाज और साहित्य	: 57
6. डॉ. हरीन्द्र कुमार	पंडित लखमी चन्द के सांगों में शृंगार एवं प्रेम	: 66
7. डॉ. प्रियदर्शिनी	महामारी में स्त्री : जीवन संघर्ष	: 72
8. डॉ. पूनम ओझा	धर्म और बनारस : संदर्भ हिन्दी उपन्यास	: 77
9. फुरकान शाह	छत्तीस वर्ष और स्वयं प्रकाश	: 91
10. स्नेहलता नेगी	बुद्ध का कमंडल लद्दाख : संस्कृति के विविध आयाम	: 101
11. सन्ध्या शर्मा	मध्ययुगीन काव्य में ब्रजभाषा : संवेदनशील व्याख्या	: 107

साक्षात्कार

माधव हाड़ा से ललित श्रीमाली की बातचीत	कोई निंदो कोई बिंदो	: 114

स्मृति लेख

पल्लव	स्वयं प्रकाश : अनुपस्थिति का एक साल	: 124

उपन्यास का अंश

पानू खोलिया	संसार का नरक अर्थात् तू घर से बाहर हो जा	: 128

शोध आलेख

1. आशुतोष तिवारी	हिंदी दलित कविता का सौंदर्यशास्त्र	: 133
2. बुशरा खान	मार्कण्डेय के कथा साहित्य में हाशिए का समाज	: 140
3. प्रीति	हिन्दी दलित स्त्री कविता का सौन्दर्यबोध	: 145

Scanned with CamScanner

बुद्ध का कमंडल लद्दाख : संस्कृति के विविध आयाम

स्नेहलता नेगी

लद्दाख दर्रों, आर्यों, बौद्धों और बस्तियों की धरती है। लद्दाख की विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियाँ रही और इन्हीं परिस्थितियों से विभिन्न संस्कृतियों का जन्म होता है। संस्कृति किसी समाज विशेष की धरोहर होती है और व्यक्ति के जीवन पर उसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। उस क्षेत्र विशेष का इतिहास और संस्कृति का ज्ञान हमें कला और साहित्य से मिलता है। इस लेख में लद्दाख का इतिहास और संस्कृति को कृष्णनाथ और कृष्णा सोबती के यात्रा-वृत्तांत क्रमशः 'लद्दाख में राग विराग' और 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख' को केंद्र में रखकर देखने की कोशिश की है। 'लद्दाख में राग-विराग' सन 2000 में प्रकाशित हुई है और कृष्णा सोबती का यात्रा-वृत्तांत 'बुद्ध का कमंडल लद्दाख' 2012 में प्रकाशित हुआ है। दोनों ही यात्रा-वृत्तांत में समय का अंतराल है जो हमें लद्दाख की बौद्ध संस्कृति को देखने का व्यापक दृष्टिकोण देती है। दोनों यात्रा-वृत्तांत में लद्दाख की प्राकृतिक सौंदर्य वहाँ का इतिहास, धर्म-दर्शन और जीवन का विस्तृत चित्रण मिलता है।

लद्दाख में बौद्ध धर्म को फैलाने में बुद्ध का मानव धर्म सफल हुआ है। यहाँ के जनजातियों ने बौद्ध धर्म को आत्मसात किया और परंपरागत बौद्ध धर्म ने यहाँ की संस्कृति और कला को समृद्ध किया। बौद्धों के इस सांस्कृतिक अभियान ने भारत ही नहीं पूरी दुनिया में भगवान बुद्ध के संदेश कू फैलाया। ऐसे में हिमालय क्षेत्र की बौद्ध संस्कृति अपनी अनेकानेक उद्गम स्रोतों से समृद्ध हुई जो भारतीय जनमानस के आध्यात्मिक स्रोत भी है। 'हिमालय देश की चारों दिशाओं में फैले भारतीय जनमानस का भौगोलिक आध्यात्मिक स्रोत है। शिखरों पर स्थित तीर्थों का पवित्र प्रतीक है। भारतीय मन की रुचियों को उद्वेलित करती कलात्मक अभिव्यक्तियाँ इसी उद्गम से निकली नदियों के साथ-साथ प्रवाहित होती रही है। भारत भूमि और उसके नागरिकों के मानस को सींचती रही है। हिमालय हमारे भूगोल और इतिहास का महानायक है। हमारी संस्कृति और इतिहास की महागाथा।' (बुद्ध का कमंडल लद्दाख पृष्ठ-8) लद्दाख भारत का सर्वाधिक गोम्पाओं (बौद्ध विहारों) वाला क्षेत्र है। जहाँ असंख्य लामा (बौद्ध भिक्षु) निवास करते हैं। अलग-अलग बौद्ध शाखाओं के गोम्पाओं में अपूर्व भित्ति चित्र, दुर्लभ

मूर्तियाँ और अनेकानेक अनमोल ग्रंथ बौद्ध धर्म की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में हेमिस, थिक्से और अलची आदि अनेक गोम्पाओं में सुरक्षित हैं। इन गुम्पाओं के दर्शन से हर पर्यटक के अंतर्मन शान्त और आत्मिक हो उठते हैं जो मात्र दर्शनीय ही नहीं है बल्कि अलौकिक अनुभूति का आभास भी कराता है।

लद्दाख की बौद्ध संस्कृति ने यहाँ के लोगों के सामाजिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया है। यहाँ धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में विशेष भेद नहीं है। यहाँ के जनजीवन में समानता का व्यवहार प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है।यहाँ छोटे-बड़े, स्त्री पुरुष सभी श्रम करते हैं, शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा है। इसलिए भेदभाव उस रूप में नहीं है जैसा हम मैदानी क्षेत्रों में पाते हैं। वेशभूषा और साज-सज्जा से आप किसी के अमीर गरीब होने का निर्णय नहीं ले सकते। यहाँ के लोग स्वभाव से सरल, मृदुभाषी, छल-कपट से दूर और बड़े धार्मिक प्रवृत्ति के होते हैं। दूसरों के प्रति सम्मान की भावना इनकी भाषा में आने वाले श्रद्धा एवं आदर सूचक शब्दों से लगाया जा सकता है।

देश की आजादी के बाद भी लद्दाख अपनी भौगोलिक विषमताओं के कारण उपेक्षित रहा। 1962 में चीन ने लद्दाख पर आक्रमण कर बहुत बड़ा क्षेत्र हड़प लिया तब सरकार का ध्यान इस क्षेत्र की बौद्ध संस्कृति की सुरक्षा की तरफ गया। तत्कालीन धर्मगुरु कुशोक बकुला ने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू से लद्दाख की बौद्ध संस्कृति की सुरक्षा हेतु बौद्ध दर्शन विद्यालय खोलने का अनुरोध किया। जिसके बाद लद्दाख में बौद्ध संस्कृति को और मजबूती मिली।कुशोक बकुला ने लद्दाख की संस्कृति और धर्म को संरक्षित करने के श्रेष्ठ सराहनीय भूमिका निभाई। दोनों यात्रा-वृत्तांत एक तरफ उस क्षेत्र विशेष की समाज और संस्कृति का विस्तृत चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करती है तो दूसरी ओर वह इतिहास का स्रोत भी होता है। लद्दाख का संक्षिप्त राजसी इतिहास दोनों ही यात्रा-वृत्तांत में तथ्यों के साथ उपलब्ध है।कारगिल का नाम कैसे पड़ा इसका संक्षिप्त इतिहास कृष्णनाथ जी 'लद्दाख में राग-विराग' में लिखते हैं। वह तीन कारण बताते हैं। पहली मान्यता यह है कि करगिल में बौद्ध राजा खिचा खिरग्याल का राज था और उन्हीं के नाम पर खिरग्याल से करगिल पड़ा। दूसरा कारण है करगिल खर-किल का अपभ्रंश है। खर का अर्थ है किला, कारगिल तीन किलों के बीच बसी है (चिकतनखर, कर्चे खर और प्रस्ता खर) इसलिए करगिल नाम पड़ा। तीसरा कारण यह माना जाता है कि तीन भाई गिलगित से लद्दाख की ओर आये। करगी,पुई और बरोर यह तीनों भाई बौद्ध थे। तीनों भाइयों ने इस इलाके को आबाद किया और करगी के नाम पर करगिल पड़ा पुई पुई गाँव में बसे और बरोर बरू में जाकर बसे। कृष्णा जी तीसरे कारण को ज्यादा सटीक मानते हैं। कृष्णा सोबती कारगिल को लेकर उपरोक्त दूसरे कारण का जिक्र अपने यात्रा-वृत्तांत में करती हैं। "कारगिल तीन किलों से घिरा है इसीलिए इस क्षेत्र का नाम कारगिल पड़ा। इन तीन किलों से एक कथा और भी जुड़ी है कि तीन भाई गिलगित से चले और उन्होंने यहाँ अपने लिए तीन किले बनवाए।" (बुद्ध का कमंडल लद्दाख, पृष्ठ-142) कहा जाता है कि लद्दाख के इतिहास में राजा

Scanned with CamScanner

छेवन नमग्याल लद्दाखी अपने रक्षक के रूप में देखते हैं। राजा छेवन नमग्याल तिब्बत के राजकुमार थे जो अपनी प्रेमिका को लेकर ल्हासा से लद्दाख की ओर भागे थे। दुर्भाग्य से राजकुमार की प्रेमिका का रास्ते में ही देहांत हो गया। उस समय भारत मुगलों के अधीन था। बादशाह जहांगीर का शासन काल था। नमग्याल एक वीर योद्धा थे।लद्दाख में उन्होंने अपनी सेना तैयार की और लद्दाख का राजपाट संभाला। नमग्याल के बाद उन का छोटा भाई जमयंग नमग्याल लद्दाख का शासक रहा। "पुरिक के राजा को छोड़कर लद्दाख के लगभग सभी छोटे-बड़े राजाओं ने जमयंग नमग्याल को लद्दाख का शासक स्वीकार किया" (बुध का कमंडल लद्दाख पृष्ठ-100)

कहा जाता है कि करगिल के लोग पहले बौद्ध थे, बाद में मुस्लिम हुए, जब पुरिक, बल्तिस्तान के शासक अलीमीर के साथ मिलकर जमयंग नमग्याल पर आक्रमण किया और अलीमीर ने जमयंग नमग्याल को बंदी बना लिया। अलीमीर ने जमयंग नमग्याल के सामने राजकुमारी के साथ निकाह का प्रस्ताव रखा। "नमग्याल ने इस्लाम कबूल किया। मुसलमान होने के बाद इनका क्या नाम हुआ इसका पता नहीं। बेगम का नाम ग्याल खातून था। राजा ने इस्लाम कबूल कर लिया था। इसलिए यहाँ इस्लाम फैला।" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ-17) राजकुमारी से निकाह के बाद जमयंग नमग्याल लद्दाख के महाराजा के रूप में वापस लौटे। कहा जाता है कि नमग्याल के बेटे ने अपनी माँ के लिए लेह में मस्जिद बनवाया था। अलीमीर की मृत्यु के बाद उनका बेटा अलीशेर गद्दी पर बैठा और कुछ समय बाद नमग्याल और उनके बीच का संबंध तनावपूर्ण होने लगा। इधर नमग्याल ने लेह की सुरक्षा अपने छोटे भाई सेंगगे नमग्याल को दिया जिन्होंने अलीशेर की फौज को करगिल की ऊँचाइयों में घेरकर विजय प्राप्त किया। "लद्दाख के इतिहास-परंपरा के अनुसार महाराज सेंगगे के महान योद्धा थे। उन्होंने अपनी लद्दाख की सीमाएँ विस्तृत की। पुरिक, स्टोक, मंगीग्राम और सिंध किनारे का 'दाह' भी जीता।" (बुद्ध का कमंडल लद्दाख, पृष्ठ-140) राजा सेंगगे ने अपने जीवन काल में ही राज्य को अपने तीनों बेटों में बांट दिया। सबसे बड़े को लेह,पुरिक,स्टोक,सुरू और हिमबाब दिया। दूसरे को गुगे प्रदेश और तीसरे को स्पीति और जंस्कार का राजा बनाया। लगभग 50 वर्षों का तक सेंगगे ने लद्दाख पर राज किया।1834 ईस्वी में महाराजा गुलाब सिंह के शासनकाल में जोरावर सिंह ने लद्दाख पर आक्रमण किया और फतेह हासिल की तब करगिल सहित संपूर्ण लद्दाख जम्मू राजा के अधीन आ गया। इस तरह लद्दाख में मिली-जुली संस्कृति है यहाँ "ना शुद्ध बौद्ध है, ना शुद्ध मुस्लिम। ना शुद्ध लद्दाखी, ना बल्ती। मिली-जुली है।" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ 17) उपरोक्त सभी तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि लद्दाख में समृद्ध राजवंशों का इतिहास रहा है।

विभिन्न जातियों और धर्मों का सम्मिश्रण लद्दाख के जनजीवन में देखा जा सकता है। एक और उदाहरण से हम यहाँ के धार्मिक सद्भाव को समझ सकते हैं। लेह में मोरावियन चर्च है जिसकी स्थापना 1885 में हुई। 1971 की जनगणना के अनुसार

155

कारगिल और लेह में कुल 15 पुरुष और 28 स्त्रियाँ ईसाई थे। जो जनसंख्या की दृष्टि से नगण्य है। वर्तमान में यह आंकड़ा 2011 के जनगणना के अनुसार 1262 ईसाई जनसंख्या है। यहाँ मोरावियन मिशन ने बहुत सेवा की स्कूल अस्पताल चलाया। लद्दाखी में पहला अखबार मोरावियन मिशन ने ही निकाला। हिमालय क्षेत्र में स्वेटर, मोजा बुनना, हथकरघा आदि मिशन ने ही यहाँ स्त्रियों को सिखाया। लद्दाख की स्त्रियाँ मिशन में बुनाई करती थी। जहाँ से लद्दाख कि स्त्रियों ने बुनाई सीखी। लद्दाखी बौद्ध और ईसाइयों में कोई संघर्ष नहीं दिखाई देता और न ही मुस्लिम से खास झगड़ा है।" धर्म और संस्कृति को अलग-अलग भी देखना अच्छा है। धर्म अलग चीज है, संस्कृति अलग। बुद्धि में यह नहीं धंसता। आखिर धर्म संस्कृति का अंग है बल्कि आधार है। परिभाषा से ही धर्म धारण करने की शक्ति देता है। फिर धर्म और संस्कृति को अलग कैसे देखा जा सकता है?" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ-62) यह व्यावहारिक रूप में हमें लद्दाख कि संस्कृति में दिखाई देती है। यहाँ अलग-अलग धर्म और समुदाय के लोगों के धार्मिक सौहार्द और सद्भावना सिर्फ धर्म ग्रंथों तक सीमित नहीं है। बल्कि धर्म ग्रंथों से बाहर निकलकर रोजमर्रा के जीवन में रच बस गई है। लद्दाखी ईसाई, बौद्ध और मुस्लिम बेशक धर्म से अलग है लेकिन इनकी संस्कृति रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा और भाषा सभी मिलती-जुलती है। "लद्दाखी ईसाई धर्म से ईसाई है लेकिन संस्कृति लद्दाखी है।" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ-63) "विभिन्न जातियों और धर्मों का सम्मिश्रण लद्दाख के जनजीवन और कलाओं में प्रदर्शित और प्रतिबिंबित है।" (बुद्ध का कमंडल लद्दाख, पृष्ठ-115) संस्कृति के मामले में लद्दाखी बौद्ध और मुसलमानों की संस्कृति भी प्रायः एक-सी है। मुसलमान स्त्रियाँ सिर पर दुपट्टा बांधती है और बौद्ध स्त्रियाँ ऊँची टोपी पहनती है इसके बिना बाहर नहीं निकलती।अगर दोनों ही समुदाय की लड़कियाँ दुपट्टा बांधना और सिर पर टोपी पहनना छोड़ दें तो उन में फर्क करना मुश्किल होगा कौन बौद्ध है और कौन मुसलमान। "लद्दाखी मुसलमान लद्दाखी बौद्ध के ज्यादा निकट है बनिस्बत कश्मीरी मुसलमान के। वैसे धर्म-मजहब है जो फाक डालता है। लेकिन देश, भाषा का नाता भी गहरा है।" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ-64)

भूगोल इतिहास और संस्कृति की दृष्टि से लद्दाख किन्नौर और लाहौल-स्पीति एक दूसरे से भिन्न नहीं है। पहाड़, जीवन, वनस्पति, स्त्री-पुरुष संबंध, विवाह, गीत-संगीत, नृत्य सबके ऊपर कबीलाई और बौद्ध धर्म कि समान रूप से प्रभाव देखा जा सकता है। लद्दाख में सभी का आकार विस्तृत है। चौतरणी, रीनक और गाँव-गोम्पा सभी बड़े आकार में है। संस्कृति का किसी भी समाज के लोक जीवन से गहरा संबंध होता है। लद्दाख की संस्कृति में त्योहारों का अपना विशेष महत्व है।लद्दाख में लोसर त्योहार बहुत धूमधाम के साथ मनाया जाता है। लद्दाख के अतिरिक्त लोसर त्योहार लाहुल स्पीति किन्नौर, अरुणाचल, तिब्बत, भूटान और सिक्किम में भी बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। लोसर लद्दाख की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। घाटी में लोग दिसंबर माह में लोसर मनाना आरंभ करते है। जिस प्रकार हिंदू दीपावली, मुसलमान ईद और ईसाई क्रिसमस

मनाते है उसी तरह यहाँ लोसर लगभग एक सप्ताह तक मनाया जाता है। साथ में अन्य गतिविधियाँ होती है। लोग छङ (लद्दाखी शराब) पीते है, अच्छे पकवान बनाते है और परंपरागत वस्त्र, आभूषण पहन कर एक-दूसरे को नववर्ष के आगमन की बधाई देते है। अपने नजदीकी रिश्तेदारों के घर जाकर बधाई देने की परंपरा है। लोसर के एक दिन पहले अपने पूर्वजों को याद करते है। उन्हें अच्छे पकवान चढ़ाते है। "इस साल नए साल लोसर के एक दिन पहले रात रहते ही फसपुन के शमशान पर आते है। गुजरी हुई पीढ़ियों में से जितने का नाम याद है सबके नाम पर पकवान चढ़ाते है। अगर कोई एक साल के अंदर मरा है तो उसके लिए विशेष आयोजन करते है। जो-जो खाना पीना उसे प्रिय रहा है वह सब विशेष रूप से चढ़ाते है।" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ-95) लोसर के अलावा छेशु लोगों के मनोरंजन के लिए और गाँव की सुख शांति के लिए गाँव के गोम्पा में इस त्योहार का आयोजन किया जाता है। छेशु बौद्ध पंचांग के अनुसार पांचवे महीने के दसवें और ग्यारहवें दिन होता है। सभी बौद्ध क्षेत्रों में छेशु का विशेष महत्व है। इस दिन बौद्ध गुरु पदमसम्भव का जन्म हुआ था इस उपलक्ष में छेशु मनाया जाता है। लद्दाख में राजा सींगे नमग्यल द्वारा बनवाया हेमिस गोम्पा का छेशु लोकप्रिय है। छेशु देखने देश-विदेश की सैलानी आते है। स्थानीय लोग अपनी परंपरागत पोशाकों में सज धज कर बड़े उत्साह के साथ छेशु देखने जाते है। "हेमिस छेशु के लिए लद्दाख बावला है। सारी दुनिया से इसके लिए बुकिंग हुई है, ऐसी सूचना मुझे नई दिल्ली के पर्यटन निदेशालय से मिल चुकी है।" (लद्दाख में राग-विराग, पृष्ठ-53) छेशु में बौद्ध मंत्रोच्चारण के साथ गोम्पा में लामा (बौद्ध भिक्षु) चेहरे पर रंग बिरंगे मुखौटा लगाकर छम नृत्य करते है। छम नृत्य छेशु के अलावा लोसर से एक दिन पहले गुस्तोर मेला में भी मुखौटा पहन कर नाचने गाने की परंपरा है। जहाँ पर बड़े-बड़े गोम्पा नहीं होता है वहाँ गाँव के लोग ही मुखौटा पहनकर नाचने गाने का कार्यक्रम करते है। इससे अधिक से अधिक लोगों का मनोरंजन होता है।

किसी भी समाज के संस्कृति को सुरक्षित रखने और उसके विकास के लिए भाषा सशक्त माध्यम होती है। जब मातृभाषा का उस समाज के जीवन से जैसे-जैसे संबंध टूट जाता है, वहाँ की संस्कृति अपनी सजीवता खो देती है। लद्दाखी अपनी भाषा, धर्म एवं संस्कृति को लेकर बहुत सचेत है। लद्दाखी भाषा अथवा यहाँ की भोटी भाषा न केवल लद्दाख की मातृभाषा है बल्कि इनमें संचित भोट ज्ञान का भंडार भी है। इसलिए इसे पवित्र धर्म की भाषा भी कही जाती है। बौद्ध दर्शन, विपुल साहित्य, साधना, काव्य और कलाएँ इसी भाषा में सुरक्षित है। लद्दाखियों ने अपनी भाषा, धर्म एवं संस्कृति किसी से उधार नहीं लिया। कालांतर में जब भोट लिपि के पदार्पण के साथ लद्दाख में साहित्य का विकास हुआ। इस संदर्भ में कृष्णा सोबती का कथन उल्लेखनीय है-"लद्दाखी बोलियों की बात हुई तो उन्होंने बताया कि यहाँ बोलियों की भी कमी नहीं है। विभिन्न इलाकों के हिसाब से उसका ध्वनि संसार एक दूसरे से बदल जाता है। जैसे नुब्रा चाग-थांग, कारगिल। साहित्यिक गतिविधियाँ खूब उभर रही है। लोग विविध विषयों पर

लिख रहे हैं।. लद्दाख की कहानी को तो पुरस्कृत भी किया जा चुका है। लद्दाखी जनता आज अपने लोक की ओर आकर्षित हो रही है। वह लोकगीत, लोककथा और पारंपरिक काव्यकृतियों को नाट्यमंच पर प्रस्तुत कर रही है। यहाँ का साधन बहुत समृद्ध है उसमें कई भाषाओं का सम्मिश्रण है।" (बुद्ध का कमंडल लद्दाख, पृष्ठ 144-146)

वर्तमान में लद्दाख में पर्यटन उद्योग बहुत तेजी से फल-फूल रहा है। हर साल देश-विदेश से लाखों पर्यटक लद्दाख घूमने आते हैं। निश्चित ही पर्यटन उद्योग ने लद्दाख की सूरत बदल दी है। यहाँ के लोग आर्थिक रूप से संपन्न हुए हैं। लेकिन हिमालय जैसे संवेदनशील क्षेत्र के लिए पर्यटकों का इतनी बड़ी तादाद में आना, आने वाले समय के लिए भयानक संकट को न्योता दे सकती है। यहाँ प्राकृतिक संसाधन बहुत ज्यादा नहीं है, खासकर पानी की आपूर्ति आने वाले समय के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। पर्यटन उद्योग के विकास के साथ-साथ लद्दाख में आधुनिकता का दौर चल पड़ा है। लोग अपनी परंपरागत रीति रिवाजों से दूर पर्यटकों के पीछे अधिकतर पुरुष साथ चले जाते हैं। अन्य एंटीक दुकानें, रेस्टोरेंट खोलकर पर्यटकों के आने का इंतजार करते हैं। वर्तमान में आर्थिक प्रगति एवं आधुनिकीकरण के कारण लद्दाख में सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं। जिस पर गंभीरता से सोचने की जरूरत है। जिस रफ्तार के साथ सरकार लद्दाख को अंतर्राष्ट्रीय पर्यटन स्थल में बदलने जा रही है। ऐसी परिस्थिति में लद्दाख कब तक अपनी भाषा संस्कृति को सुरक्षित रख पाएगा? लद्दाखी युवा वर्ग आज अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर ज्यादा जोर दे रहे हैं। अंग्रेजी को विशेष प्रोत्साहन दिया जाता है। यह हमारे समाज की विडंबना है कि अंग्रेजी बोलने-लिखने वालों को विद्वान समझा जाता है और इसी अंग्रेजी के चक्कर में हम अपनी भाषा संस्कृति से उतने ही दूर हो जाते हैं। भाषा हमें मानसिक और सांस्कृतिक गुलामी की जंजीरों में जकड़ लेती है। लेकिन अंग्रेजी भाषा का इतना अधिक प्रयोग कहाँ तक उचित है यह समाज को सोचने की जरूरत है।

□

Scanned with CamScanner

इतिहास

भारतीय नवजागरण और पाइक विद्रोह / पल्लिश्री आइच 161
भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विकास में क्षेत्रीय-स्थानीय हितों की भूमिका / सूर्य प्रकाश दुबे 174

सामाजिक विज्ञान

सामाजिक उत्तरदायित्व के बदलते स्वरूप / आशुतोष पाण्डेय 193

साहित्यिक-विमर्श

हिंदी के प्रमुख 'रेखाचित्रों' में चित्रित 'संवेदना' के विविध आयामों का अध्ययन/ डॉ. विश्वजीत कुमार 201
हिंदी में लिखित प्रमुख महिला यात्रियों के यात्रा-वृत्तान्त: एक अध्ययन / बृजेश कुमार यादव 217
कथाकार की यात्रा-कथा: गोविन्द मिश्र के यात्रा-संस्मरण / डॉ. रेखा उप्रेती 238
कृष्ण नाथ का यात्रा साहित्य और पश्चिमोत्तर हिमालय का जनजातीय समाज / डॉ. स्नेह लता नेगी 251
अज्ञेय के यात्रा-वृत्तांतों में सांस्कृतिक दृष्टि: भारतीय यात्राओं के विशेष संदर्भ में / रज्जन प्रसाद शुक्ला, डॉ. जया द्विवेदी 263
बाढ़ सिंचितों की केस स्टडी 'कोसी के वटवृक्ष'/ अमन ऋषि साहू 276
कथात्मक गद्य साहित्य में प्रयुक्त चरित्र- चित्रण की प्रणालियाँ (विशेष सन्दर्भ: जीवनी, उपन्यास और जीवनीपरक उपन्यास)/ नीरज तिवारी 289
अन्तस के पल का रथी : दिनकर की डायरी / मनोज शर्मा 303
हिंदी की व्यंग्य प्रधान ग़ज़लें / डॉ. जियाउर रहमान जाफरी 315
रामदरश मिश्र का आलोचनात्मक दृष्टिकोण / धनराज 324
समकालीन हिंदी कविता के मायने / डॉ. सत्यवन्त यादव 332
चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' में अभिव्यक्त 'वृद्ध विमर्श'/ ज्योति ढींगरा 341
कृष्णा सोबती के उपन्यास दिलो-दानिश में स्त्री / पारोमिता दास 350
उषा प्रियंवदा की कहानियों में पारिवारिक विघटन की मनोवैज्ञानिकता / डॉ. लेखा पी. 357
प्रेमचंद की कहानियां और स्वाधीनता आन्दोलन / डॉ. रामानुज यादव 363
फांस के संदर्भ में : किसान जीवन की दुर्दशा एवं विस्थापन / शेष कुमार 373
"युवा पीढ़ी का 'आखेट' करता दफ़्तरी परिवेश"/ ताराचंद कुमावत 379
आधुनिकता के आईने में वृद्ध / डॉ. रितु अहलावत 395
'उत्तर पूर्व' जैसा मैंने जाना / प्रदीप कुमार सिंह 404
रीतिकालीन कवि घनानंद के काव्य में 'प्रेम का स्वरूप'/ दीपाली 415
जैन-धर्म, गांधी-दर्शन एवं जैनेंद्रीय-दृष्टि : अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में / डॉ. अनामिका जैन 429
नरेन्द्र कोहली की रामकथा में परिकल्पित प्रसंग / डॉ. एम. नारायण रेड्डी 438
भीष्म साहनी की कहानियाँ : पाठ की नयी संभावनाएं / डॉ०शशिभूषण मिश्र 454
सूरदास का काव्य: लोक जीवन के अनुभवों की रागात्मक परिणति / अनिल कुमार 464

Scanned with CamScanner

कृष्णा नाथ का यात्रा साहित्य और पश्चिमोत्तर हिमालय का जनजातीय समाज

डॉ. स्नेह लता नेगी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

कृष्णनाथ मूलतः अर्थशास्त्र के विद्वान रहे हैं और काशी विद्यापीठ में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर रहे। जीवन यात्रा और अध्ययन-अध्यापन के दौर से ही बौद्ध दर्शन के प्रति उनकी गहरी रुचि रही। बौद्ध दर्शन और संस्कृति को जानने समझने के उपक्रम में ही कृष्णा ने हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों की यात्रा की, विशेष कर जिनका संबंध बौद्ध दर्शन और उसकी संस्कृति से रही है। वहीं उनकी यात्रा वृत्तांत 'किन्नर धर्मलोक', 'स्पीति में बारिश', 'लद्दाख में राग-विराग', 'पृथ्वी परिक्रमा' और 'अरुणाचल यात्रा' आदि महत्वपूर्ण रचनाएं उस स्थान विशेष से जुड़ी धर्म, भाषा-संस्कृति और जीवनशैली को जानने समझने में मददगार है। कृष्णनाथ अपनी यात्रा के दौरान स्थान विशेष से जुड़ी अनुभवों और विभिन्न जानकारियों को अपनी यात्रा वृत्तांतों में बारीकी से वर्णन किया है। इस लेख में जनजातीय क्षेत्र किन्नौर, स्पीति और लद्दाख के जनजाति समाज और संस्कृति से जुड़ी उन तमाम विशेषताओं को जानने समझने की कोशिश की गई है।

बीज शब्द : जनजाति, संस्कृति, प्रकृति, हिमालय, धर्म, सामूहिकता, अभिव्यक्ति, परंपराएं, यात्रा, हिमालय, भौगोलिक, पर्व-त्यौहार आदि

शोध आलेख

मनुष्य प्रकृति से सौंदर्य प्रेमी है और घुमक्कड़ी उसकी प्रवृत्ति रही है। वह जहां भी यात्रा करने जाता है वहां से कुछ न कुछ ग्रहण करना उसका स्वभाव है। उस ग्रहण किए अनुभवों को अभिव्यक्त किए बिना साहित्यकार मन नहीं रह सकता। यही अनुभव जब स्मृतियों से बाहर निकलकर आती है तो साहित्य में एक नई

 ISSN 2454-2725

विधा का रूप ले लेता है। जिसे हम यात्रा साहित्य कहते हैं। किसी भी देश का भ्रमण करना उस देश की सांस्कृतिक विविधता, वहां का इतिहास, राजनीति और भाषा आदि से परिचित होना है। इससे भ्रमण करने वाले व्यक्ति का ज्ञान तो समृद्ध होता है साथ ही पाठक का भी ज्ञानवर्धन होता है। अज्ञेय ने बिल्कुल सही कहा कि "ज्ञान बुद्धि और अनुभव संचय के लिए देशाटन उपयोगी है।"[3] पश्चिम के प्रख्यात विचारक मानतेन का मानना है कि 'भ्रमण के अभाव में कोई व्यक्ति पूर्ण शिक्षित नहीं कहा जा सकता।' मानव जीवन में यात्रा का अपना प्रयोजन रहा है। मुख्यतः राजनीतिक, धार्मिक सांस्कृतिक, व्यवसाय और व्यापारिक आदि अनेक कारणों से भ्रमण किए जाते रहे हैं। इनके अतिरिक्त मनोरंजन, अनुसंधान, अध्ययन, स्वास्थ्य लाभ अथवा अन्य व्यक्तिगत कारणों से भी स्थान विशेष की यात्रा का कारण रहा है। आज सांस्कृतिक आदान-प्रदान के चलते विश्व भर के सभी देश एक दूसरे के ज्यादा करीब आ गए हैं। जो एक दूसरे के प्रति अपरिचय के दीवार को तोड़ती है। इस दिशा में भी यात्रा वृतांत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जो साहित्य के माध्यम से दो संस्कृतियों के बीच मेल मिलाप बढ़ाता है।

हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग से यात्रा साहित्य की शुरुआत देखी जा सकती है। लेकिन यात्रा साहित्य की समृद्ध परंपरा राहुल सांकृत्यायन से शुरू होते हुए अज्ञेय और निर्मल वर्मा के बाद कृष्णनाथ जी अपनी समृद्ध यात्रा साहित्य के कारण हिंदी साहित्य में भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। अर्थशास्त्र के प्राध्यापक होते हुए भी साहित्य के प्रति कृष्णनाथ जी का विशेष रुझान रहा है। हिमालय पर हिंदी भाषा में अनेक महत्वपूर्ण यात्रा वृतांत उन्होंने लिखे। जिनमें 'किन्नर धर्मलोक', ' स्पीति में बारिश', ' लद्दाख में राग विराग', 'अरुणाचल यात्रा',' कुमाऊं यात्रा', 'हिमालय यात्रा' आदि अनेक यात्रा वृतांत हिंदी यात्रा-साहित्य को समृद्ध करता है। कृष्णनाथ जी के यात्रा साहित्य में पश्चिमोत्तर हिमालय के किन्नौर, स्पीति और लद्दाख की भाषा-संस्कृति वहां का भुगोल, इतिहास और प्राकृतिक सौंदर्य

---

[3] एक बूंद सहसा उछली, पृष्ठ 15

165

की अभिव्यक्ति के साथ-साथ जनजातीय समाज की सामाजिक संरचना, जीवन दर्शन वहां के लोगों की सहजता और सरलता का सुंदर चित्रण मिलता है। इन यात्रा वृत्तांतों में हिमालय का जनजातीय समाज मुख्यधारा के समाज से कई मामलों में अलग दिखाई पड़ता है। जिसके चलते बाहरी लोगों का उनके पर्व-त्योहारों, परंपराओं और रीति-रिवाजों के प्रति पूर्वाग्रही दृष्टिकोण देखा जा सकता है। किन्नौर में बाहरी लोगों को 'कोचा' कहा जाता है। किन्नौर से बाहर का हर व्यक्ति वहां के लोगों के लिए 'कोचा' है। जब कोचा किन्नौर में आते हैं, वह अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति लेकर आते हैं और वहां की संस्कृति और लोगों को अपने से कमतर समझने लगते हैं। इसलिए उनके पर्व त्योहारों को लेकर भी नकारात्मक दृष्टिकोण इन यात्रा वृतांतों में देखा जा सकता है।

कृष्णनाथ जी किन्नौर, लद्दाख और स्पीति की ओर इसलिए भी आकर्षित होते हैं क्योंकि यह तीनों ही क्षेत्र महत्वपूर्ण बौद्ध स्थल हैं। तीनों ही यात्रा वृतांत में वहां के मोनास्टिक कल्चर के दिग्दर्शन होते हैं। किन्नौर के निचले हिस्से में हिंदू धर्म का प्रभाव ज्यादा है। लेकिन जैसे-जैसे किन्नौर के ऊपरी हिस्से में आगे बढ़ते हैं तो बौद्ध धर्म का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है। कृष्णा जी ने अपने यात्रा वृतांतों में उस समय के इतिहास, संस्कृति और समकालीन परिवेश को तथ्यों के साथ रखा है। किन्नौर के संदर्भ में वह लिखते हैं-" इतिहास पुराण में किन्नर देश बड़ा भौगोलिक सांस्कृतिक क्षेत्र रहा है।..किसी समय किम्पुरुष वर्ष प्रायः सारे ही हिमालय का नाम रहा होगा यद्यपि आज वह संकुचित होकर बुशहर रियासत की एक तहसील चीनी एवं कुछ नीचे उतरकर उस से लगे हुए 20-25 गांव के लिए व्यवहृत होता है। किन्नौर का यह जिला तो हाल हाल का है। इतिहास पुराण के किन्नर या किम्पुरुष तो मिथक जैसे है। देवयोनी में माने जाते हैं।"[1] बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व हिमालय क्षेत्र के लोग किस धर्म में आस्था रखते थे। यह इन यात्रा वृतांतों से हमें ज्ञात है। किन्नौर में 'शू' संस्कृति है

[1] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 40-41

166

Scanned with CamScanner

जो हिंदू देवी देवता नहीं है। वह उस समाज का अपना विशिष्ट आराध्य है।"किन्नौर का देवता अलग है। वह राम, कृष्ण, शिव जैसा नहीं है, यह अलग बात है। आदिम देवता है।"[1] 'शू' यहां की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा रहा है। यहां यह माना जाता है कि बौद्ध धर्म के आगमन से पूर्व बोन धर्म के प्रति लोगों की आस्था थी जो आज भी न्यूनाधिक रुप में देखने को मिलता है। पूरे हिमालय क्षेत्र में बोन धर्म को मानने वाले लोग रहे हैं। इस संदर्भ में कृष्णा जी लद्दाख के सर्वमान्य लामा (बौद्ध भिक्षु) कुशोक बकुला से जाने की कोशिश करते हैं कि आखिर यह बोन धर्म क्या है? तो बकुला स्पष्ट करते हैं कि बोन सिस्टम के अंतर्गत बड़े-बड़े पहाड़ों, नदी, नालों गांव के 'शू', 'ला' को पूजते हैं। यह सभी तत्व सर्वोच्च शक्ति के प्रतीकात्मक रूप में माने जाते हैं। इसलिए इन्हें पूजा जाता है। बकुला कहते हैं कि लामा इसे नहीं मानते। बौद्ध धर्म को बोन धर्म से ऊपर मानते है। लामा इससे ऊपर है। इसलिए 'शू' और 'ला' भी लामा से डरते हैं। इसी तरह सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई समानताएं तीनों ही क्षेत्रों में दिखाई देती है। कृष्णनाथ जी का वहां के धर्म की भाषा और संस्कृति को लेकर गहरी चिंता इन यात्रा साहित्य में देखी जा सकती है। भाषा को लेकर कृष्णनाथ जी कहते हैं- " भोटी लद्दाख से लेकर अरुणाचल तक हिमालय की धर्म भाषा है। इसके ज़रिए हिमालय का धर्म उसकी संस्कृति का मर्म समझ में आ सकता है। अन्यथा नहीं।... भोटी भारतीय हिमालय के प्रत्येक देश की भाषा है। तिब्बत में इसका विशेष विकास हुआ लेकिन यह सिर्फ तिब्बत की भाषा नहीं है। भाषा और संस्कृति की सीमा राजनीतिक सीमाओं से बंधी हुई नहीं होती उनके पर भी जाती है।"[2] किसी भी समाज की भाषा उस समाज की धरोहर है। भाषा के विलुप्त होने के साथ उस भाषा में परंपरा से अर्जित ज्ञान संपदा भी विलुप्त हो जाती है। कृष्णा जी की चिंता वाजिब है। वहां की भाषा को संरक्षित करने और नई पीढ़ी को अपने धर्म की भाषा सीखने के लिए कृष्णनाथ जी भावी पीढ़ी को भोटी भाषा

[1] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 113

[2] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 134

Scanned with CamScanner

 ISSN 2454-2725

सीखने के लिए प्रेरित करते हैं। उनका मानना है कि हिमालय कि " भाषा के बिना मनुष्य जाति दरिद्र होगी।[1] इसलिए कृष्णनाथ जी अपने यात्रा वृतांतों में भारत सरकार द्वारा चलाए गए त्रिभाषा सूत्र को महत्वपूर्ण बताते हुए पश्चिमोत्तर हिमालय के किन्नौर, स्पीति और लद्दाख के स्कूलों में तीसरी भाषा के रूप में उर्दू की जगह भोटी भाषा को पढ़ाये जाने पर जोर देते हैं। जिसके लिए जनता को एकजुट होने के लिए आग्रह करते हैं।" भोटी भाषा की पढ़ाई हो इसके लिए सीमांत प्रदेशों में जनमत का दबाव जरूरी है। जनतंत्र का प्रशासन आंदोलन के अंकुश से चलता है। नहीं तो कर्मचारी तंत्र अपने आप में जड़ होता है। भोटी आंदोलन विचार-प्रचार, सूचना- संचार, सभा वगैरह में प्रस्ताव, विधायकों, मंत्रियों और अफसरों से अनुनय-विनय और अंत में जरूरी होने पर सविनय अवज्ञा के रूप में चलाया जाना चाहिए।"[2]

अपने हिमालय की यात्रा में वहां के पर्व त्योहार और जीवन देखने का नया दृष्टिकोण कृष्णनाथ जी हमें देते हैं। जो मैदानी क्षेत्रों से भिन्न है। यहां मेला मैदानी क्षेत्र के मेले से अलग है। यहां मेला विशेष सांस्कृतिक अर्थ का द्योतक है। मेले को देखने का बाहरी नजरिया इन यात्रा वृतांतों में देखा जा सकता है। किन्नौर में सितंबर माह से अक्टूबर अंत तक 'उख्यड०' यानी फूलों का त्यौहार मनाया जाता है। जिसे आजकल 'फुलेच' भी कहा जाता है। किन्नौर के अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग समय पर यह त्योहार मनाया जाता है। उनको कई जगह 'मैनथोको' भी कहा जाता है। उस समय गांव के अधिकांश लड़के-लड़कियां, स्त्री पुरुष सभी ऊंचे-ऊंचे पर्वत शिखरों पर जाते हैं और वहां से ब्रह्म कमल और अन्य उपलब्ध पवित्र फूल चुनकर लाते हैं। रात भर लड़के लड़कियां वही रुकते हैं और सामूहिक नृत्य करते हैं। आनंद के साथ अपने शू, सावनी और प्रकृति का पूजन कर अगले दिन उन फूलों के साथ वापस गांव की ओर लोटते हैं। और उन फूलों

---

[1] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 135

[2] स्पीति में बारिश, पृष्ठ 220

168

Scanned with CamScanner

को 'शू' को अर्पित करते हैं। इसी तरह 'डखरेन' पंगी गांव में मनाया जाता है। जिसके बारे में कृष्णनाथ जी 'किन्नर धर्मलोक' में जिक्र करते हैं। 'डखरेन' में भी लड़के-लड़कियां पहाड़ की ऊंचाई पर दो-तीन रात रुकते हैं और वहीं पर खाना पीना नृत्य में झूमते युवक युक्तियां आनंदित होते हैं और अपने पूर्वजों को पितरों को भोजन अर्पित करते हैं। उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। यह संस्कृति यहां की विशेषता को दिखाता है लेकिन बाहर के लोग (कोचा) इन पर्वों त्योहारों और परंपराओं को अपने ही चश्मे से देखने और व्याख्या करने के आदी हैं। इसी संदर्भ में कृष्णनाथ जी चीनी गांव के स्कूल मास्टर पांडे जी से जब डखरेन जाने की बात करते हैं तो पांडे जी का मानना है कि युवक-युवतियों का पहाड़ियों पर दो-तीन दिन रात भर रुकना काम रोक पर जाना है यही दृष्टि 'डखरेन' को देखने का कोचा दृष्टि कहा जा सकता है।

" उनकी राय तो मेला देखने जाने की नहीं है। साफ-साफ कह देते हैं कि और सब मामले में आपका साथ दे सकता हूं। मेले में नहीं। ना में मेला देखता हूं। ना आपको जाने की राय दे सकता हूंना जाना ही सहज है।"[1]

यह वही बाहरी दृष्टि है जिसके आधार पर वहां की संस्कृति को देखने का उसे परखने का बाहरी व्यक्ति का अपना नजरिया है। कृष्णनाथ जी इन मुद्दों को बड़ी आत्मीयता के साथ उठाते हैं। इसी तरह का एक चित्रण हमें 'लद्दाख में राग विराग' में देखने को मिलता है। यहां कश्मीरियों का नजरिया लदाखियों के प्रति किस तरह से रहा है। इस संदर्भ में यह उद्धहरण महत्वपूर्ण है। "लद्दाख के बारे में कहते हैं। यहां की जमीन फलदार नहीं। यहां के मौसम का ऐतबार नहीं। यहां की बीवी वफादार नहीं।"(लद्दाख में राग विराग, पृष्ठ-56) इस तरह का नजरिया किसी भी समाज और संस्कृति के लोगों के प्रति कुत्सित मानसिकता का ही प्रमाण है। जब कि सांस्कृतिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र अपने में विशिष्ट हैं। कृष्णनाथ जी लद्दाख के मुसलमानों और बौद्धों की संस्कृति को प्रायः एक समान मानते

[1] किन्नर धर्म लोक, पृष्ठ 59

Scanned with CamScanner

ISSN 2454-2725

हिंदीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। ऐसे अनेक उदाहरण है जैसे पंगी गांव का किनौरी नाम पडे हैं। इसी तरह स्पीलो का किनौरी नाम पिलाड और मुरड का स्थानीय नाम गिनम है। स्थानीय निवासी जालम्बर जी इन सब घटनाओं से दुखी हैं। कृष्णा जी के साथ संवाद जालंबर जी का संवाद महत्वपूर्ण है। "जालंबर इससे दुखी हैं। कहते हैं कि लोग नीचे से आते हैं। वह हमारा इतना भी ख्याल नहीं रखते हमारा नाम भी ठीक ठीक नहीं पुकारते।अपनी जुबान नहीं बदलते। हमारा नाम बदल देते हैं। वह मुझसे जानना चाहते हैं कि वह ऐसा क्यों करते हैं? क्यों हमारा नाम बिगाड़ते हैं?[1]

कृष्णानाथ जी अपने हिमालय यात्रा के दौरान पश्चिमोत्तर हिमालय के क्षेत्रों में हस्तकलाओं की अनंत संभावनाएं देखते हैं। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में हस्तकला की अहम भूमिका रहती है।यह ग्रामीण इलाकों में एक बड़े तबके को रोजगार उपलब्ध कराने का महत्वपूर्ण स्रोत है। और विदेशी मुद्रा कमाने का भी साधन, साथ ही यह देश की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण में भी सहायक है। हिमालय क्षेत्र में हस्कलाओं की अनंत संभावनाओं को देखते हुए यहां सरकार और प्रशासनिक स्तर पर इन गतिविधियों को आगे बढ़ाने की जरूरत कृष्णनाथ जी महसूस करते हैं। किन्नौर, स्पीति और लद्दाख के हस्तकलाओं की बदहाली पर भी चर्चा करते हुए वह लिखते हैं कि यहां के हैंडीक्राफ्ट सेंटर प्रशासन के उपेक्षा का शिकार है। संपूर्ण भारत में हस्तशिल्प की अपनी अनोखी परंपराएं रही हैं। इन में मुख्यता स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री का उपयोग किया जाता है। जिसके जरिए स्थानीय कारीगरों को रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है। हिमालय के इन छोटे-छोटे खेतिहर किसानों के लिए यह आय का एक वैकल्पिक साधन भी हो सकता है। हस्तशिल्प और ऊनी वस्त्र बनाने के क्षेत्र में यह क्षेत्र अपना महत्वपूर्ण योगदान देश को दे सकता है। कृष्णनाथ जी इन क्षेत्रों के हस्तकलाओं को संरक्षित करने की बात करते हैं। जो वहां की आर्थिकी को और

[1] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ, 73

170

Scanned with CamScanner

हैं। मुस्लिम स्त्री सिर पर एक दुपट्टा ना बांधे तो बौद्ध स्त्री ही लगती है। बौद्ध स्त्री और मुस्लिम स्त्री में भेद करना मुश्किल होगा उन्हें देखकर आप कह नहीं सकते कौन मुस्लिम है और कौन बौद्ध। भाषा , वेशभूषा और नैन-नक्श सभी एक दूसरे से मिलते जुलते हैं। कृष्णनाथ जी का मानना है कि "वैसे धर्म मजहब है। जो फांक डालता है। लेकिन देश, भाषा का नाता भी गहरा है। जो जोड़ता है। जिंदगी तो ऐसी ही है, दोरसी।"[1] हिमालय क्षेत्र की धार्मिक सौहार्द का परिचायक है। लद्दाख जहां अलग-अलग धर्मों के लोगों की भाषा रहन-सहन एक दूसरे को करीब लाती है। जो देश के अन्य हिस्सों में हमें कम ही देखने को मिलता है। इन यात्रा वृतांतों से ज्ञात होता है कि किन्नौर, स्पीति और लद्दाख की संस्कृति कितनी उन्नत और संपन्न रही है। लेकिन जैसे-जैसे वहां के लोगों का संपर्क कोचा (बाहरी लोगों) से हुआ जो अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति लेकर आए, इनके आने के साथ धीरे-धीरे यहां की संस्कृति में भी बदलाव आया है। जिससे यहां के लोग उस सांस्कृतिक क्षति को देख चिंतित भी दिखाई देते हैं। कृष्णा जी लिखते हैं "कोचा तो गैर -किन्नौरी है। अपने साथ गैर किन्नौरी जीवन शैली, भाषा और वर्षा लाये हैं।"[2]

कोई भी समाज तब तक गुलाम नहीं होता है। जब तक वह अपनी भाषा संस्कृति को बचाए रखता है। गुलामी की प्रक्रिया तभी पूरी होती है, जब हम अपनी भाषा संस्कृति को खो देते हैं और दूसरों की भाषा संस्कृति को अपनाने लगते हैं। जो अनेक रूपों में सांस्कृतिक उपनिवेशिकरण की प्रक्रिया है। केन्या के प्रसिद्ध साहित्यकार और आदिवासी चिंतक न्गुगी तो साफ शब्दों में कहते हैं कि "कोई भी गुलामी तब तक स्थाई नहीं होती है जब तक भाषागत सांस्कृतिक गुलामी की पूरी प्रक्रिया संपन्न नहीं होती है।"(औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति) पश्चिमोत्तर हिमालय के बहुत से गांव और लोगों के स्थानीय नाम बाहरी लोगों के आगमन के साथ-साथ बदलने शुरू हुए। वहां के लोगों और उनके स्थानों का

[1] लद्दाख में राग विराग, पृष्ठ 64

[2] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 42

Scanned with CamScanner

ISSN 2454-2725

मजबूत कर सकती है। "हस्तकलाओं के संरक्षण संवर्धन के रास्ते में यह प्रशासनिक रुख हिमालय में सब दूर बाधा है। दस्तकारी का संगठन सरकारी दफ्तर जैसा नहीं। इसका तो कामकाजी होना जरूरी है। इसके जरिए ही हिमालय के इन सीमा क्षेत्रों में रोजी-रोजगार दिया जा सकता है। सिर्फ जीविका ही नहीं जीवन का छंद लौटाया जा सकता है। यह छंद टूट गया है।"[1]

अगर हिमालय के इन सीमांत क्षेत्रों में प्रशासन थोड़ा सा भी संजीदगी के साथ हस्तकलाओं को प्रोमोट करने का काम करें तो यहां की पारंपरिक कला पुनर्जीवित हो उठेगी। हस्तकला आम लोगों की कला है जिसके माध्यम से हिमालय के आम जन-जीवन के सौंदर्य बोध की अभिव्यक्ति हो सकती है।

वर्तमान में पश्चिमोत्तर हिमालय क्षेत्र के आर्थिकी का एक और स्रोत पर्यटन उद्योग है। जो बहुत तेजी के साथ फलने-फूलने फूलना लगा है। विशेषकर लद्दाख क्षेत्र बाकी क्षेत्रों से आगे है पर्यटन ने एक तरफ यहां की आर्थिकी को मजबूत किया है तो दूसरी तरफ हिमालय जैसे संवेदनशील क्षेत्रों के लिए बड़ी चुनौती भी लेकर आया है। यहां के सीमित प्राकृतिक संसाधन खासकर पानी की कमी आने वाली पीढ़ी के लिए कई समस्याएं पैदा कर सकती है। भविष्य के लिए किस तरह प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करना है इसकी योजना इस क्षेत्र के लोगों को अभी से करने की जरूरत है। जिस तेजी के साथ यहां के पर्यावरण में बदलाव आ रहा है और जिसके कारण ग्लेशियर सिकुड़ते जा रहे हैं ऐसे में हिमालय क्षेत्र के लोगों को भावी पीढ़ी के लिए नए विकल्पों की तलाश करने की जरूरत है। हर साल लाखों की तादाद में पर्यटक इन क्षेत्रों में आते हैं और भविष्य में भी इसी तरह आते ही रहेंगे जो इन क्षेत्रों में बहुत बड़ी समस्या को न्योता दे सकती है। इससे निपटने के लिए स्थानीय प्रशासन और जनता को साथ मिल कर अनिवार्य कदम उठाए जाने की जरूरत है। पश्चिमोत्तर हिमालय के लोगों को विरासत में एक ऐसा समाज मिला है, जिसमें व्यक्ति और संपूर्ण समुदाय के हित में किसी

---

[1] लद्दाख में राग विराग, पृष्ठ 136

 ISSN 2454-2725

प्रकार का टकराव या संघर्ष नहीं मिलता है। यहां लोग एक दूसरे को नुकसान पहुंचाने के भाव से दूर हैं। गांव में आने वाले हर अजनबी को स्त्री पुरुष दोनों समान भाव से स्वागत करते हैं। उनकी सहायता करने में पीछे नहीं हटते। यहां की स्त्रियां मैदानी क्षेत्रों की तरह किसी अजनबी से बात करते हुए संकुचाती नहीं हैं। "मेड पर अकेले स्त्रियां आती मिलती हैं। सकुचती नहीं है। खुद छेड़ती हैं: कहां से आ रहे हो? कहां जा रहे हो?[1] उपरोक्त उद्धरण उस समाज के खुले पन को दिखाता है। जहां किसी स्त्री का अजनबी पुरुष के साथ बात करने पर कोई पाबंदी नहीं है। स्त्रियां खुल कर संवाद करती हैं। इसी तरह का एक अदृश्य 'किन्नर धर्मलोक' में देखा जा सकता है-"वह जोड़ा बाहों में बाहें डाले लौट रहा है। बहुत खुश। अलस, मदिर चल रहा है। संकोच नहीं है। दिल्ली में भी ऐसे किशोर-किशोरी बाहों में बाहें डाले घूमते हैं असहज। जैसे आवेश में हों। डरते हों। जैसे एक दूसरे को भगाए लिए जा रहे हैं। लेकिन वह दोनों चलते हैं। थमते हैं। चलते हैं। सहज हैं।" (किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ,18) यही सहजता संपूर्ण पश्चिमोत्तर हिमालय के जन-जीवन में रचा बसा है। जहां कोई दिखावा नहीं, कोई हड़बड़ी नहीं। जीवन को सहजता और सरलता के साथ जीना यहां के लोगों बखूबी जानते हैं। जो उन्हें अन्य क्षेत्रों से अलग और विशिष्ट बनाता है। क्या हम सोच सकते हैं कि तथाकथित सभ्य समाज का जज या कोई भी बड़ा अधिकारी रोडी-घारा, ईंट और सीमेंट का काम भी कर सकता है। लेकिन पश्चिमोत्तर हिमालय के लोगों की यही सहजता सरलता इन यात्रा वृतांतों को खास बनाती है। कृष्णनाथ जी जब किन्नौर के पूह गांव पहुंचते हैं तो देखते हैं कि "गांव के पास दो-तीन आदमी खच्चर लिए ऊपर पहाड़ की ओर जा रहे हैं। पूछता हूं कि कहां जा रहे हैं? मालूम होता है कि ऊपर पत्थर लेने। पत्थर लाकर मकान बनाएंगे। भाषा में संस्कार है। बाद में पता चलता है कि वह जो पत्थर ढ़ोने जा रहे थे वह निचले हिमाचल प्रदेश सरकार के कोई जज हैं। यह अपना मकान बनवा

[1] स्पीति में बारिश, पृष्ठ 58

Scanned with CamScanner

ISSN 2454-2725

रहे हैं। तो खुद ही पत्थर ढो रहे हैं। कहीं से कुछ सकुच नहीं रहे हैं।"[1] आज भी इन क्षेत्रों की लोगों में वही सहजता सरलता और श्रम के प्रति आदर का भाव देखा जा सकता है। श्रम किसी भी रूप में हो चाहे वह बौद्धिक या शारीरिक दोनों के प्रति समान आदर भाव है। आज भी हिमालय क्षेत्र के लोग देश के हर क्षेत्र में बड़े-बड़े सरकारी पदों पर आसीन हैं। लेकिन जब भी वे अपने गांव की ओर लौटते हैं तो वहां की जमीन से आत्मीय भाव से जुड़ते हैं। खेतों में, जंगलों में काम करते हुए वे शर्माते नहीं है। गर्व के साथ काम करते हैं। यही जीवन दृष्टि श्रम को लेकर मैदानी क्षेत्रों को भी अपनाने की ज़रूरत है। जहां बौद्धिक श्रम की तुलना में शारीरिक श्रम को कमतर आंका जाता है। शारीरिक श्रम करने वाले लोगों के प्रति हीन भावना देखने को मिलता है। क्या हम ऐसे समाजों को सभ्य कह सकते हैं? जो अपने को सभ्य कहने का दंभ भरता है।

कृष्णनाथ जी अपने तीनों यात्रा वृतांतों में पश्चिमोत्तर हिमालय की भाषा, संस्कृति यहां की परंपराओं, प्राकृतिक सौंदर्य और यहां के जनमानस के मनोभावों को व्यापक स्तर पर चित्रित किया है। इतना व्यापक चित्रण के बावजूद भी कृष्णनाथ जी महसूस करते हैं कि इस क्षेत्र को बहुत कम जान पाये हैं। बहुत कुछ जानना-समझना देखना पीछे रह गया- "देखता हूं कि कितना कम देख सका हूं। सतलुज के किनारे-किनारे ही किन्नौर को आर-पार कर रहा हूं... किन्नर देश को आर-पार जान लेना कोई हंसी खेल नहीं है।

इसकी परत पर परत है। यह एक बार में उघरती नहीं। जो उघरती है उसका भी अंत नहीं। यह लजाना और उघरना। उसे जान लेना तो जन्म जन्मांतर का काम है।"[2]

निष्कर्ष: अंत में कहा जा सकता है कि भूमंडलीकरण के इस दौर में जिस तरह हर क्षेत्र में बदलाव आया है, उसी तरह इन क्षेत्रों में भी बदलाव देखा जा सकता

---

[1] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 124

[2] किन्नर धर्मलोक, पृष्ठ 147

174

Scanned with CamScanner

है।आज इन क्षेत्रों में बर्फ, पहाड़ को काटकर सड़क बनाई गई है। गाड़ियां पहुंचने लगी है और रोजगार व संचार के साधन जुट गए हैं। बिजली पानी की आपूर्ति हो रही है। सीमा क्षेत्र होने के नाते भारतीय सेना तैनात की गई है और पर्यटन का विकास होने लगा है तो इसके साथ वहां का जीवन भी बदलने लगा है।

संदर्भ सूची

1. अज्ञेय, एक बूंद सहसा उछली, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
2. कृष्णनाथ, किन्नर धर्मलोक, वाग्देवी प्रकाशन, 2021
3. कृष्णनाथ, स्पीति में बारिश, वाग्देवी प्रकाशन
4. कृष्णनाथ, लद्दाख में राग विराग, वाग्देवी प्रकाशन

Scanned with CamScanner

Impact Factor : 2.636

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसे: प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विषय
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

179

Scanned with CamScanner

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	7-7
2.	A study of Teacher Burnout & secondary school Teacher Professional Commitment in Relation to their school Organizational Climate	Shakuntla, Dr. Rekha Soni	8-15
3.	ग्रामीण भारत को सशक्त बनाने में सोशल मीडिया की भूमिका	अशोक कुमार	16-21
4.	अलका सरावगी के उपन्यास 'कोई बात नहीं' का वस्तु-विधान एवं वैशिष्ट्य	बी. कविता कुण्डु	22-24
5.	ਕੈਨੇਡਾ ਦੇ ਪੰਜਾਬੀ ਨਾਟਕ ਦਾ ਗਲੋਬਲੀ ਪਰਿਪੇਖ (ਨਾਹਰ ਔਜਲਾ ਅਤੇ ਸਾਧੂ-ਸੁਖਵੰਤ ਹੁੰਦਲ ਦੀ ਨਾਟ-ਭਾਸ਼ਾ ਦੇ ਪ੍ਰਸੰਗ ਵਿਚ)	ਡਾ. ਸਤਵਿੰਦਰ ਕੌਰ	25-32
6.	त्रिशूल : जातीय उन्माद की विभीषिका	कपिलदेव प्रसाद निषाद	33-36
7.	भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका और योगदान	बबिता चौधरी	37-42
8.	हिन्दी साहित्य और किन्नर विमर्श	डॉ मनीषा	43-46
9.	उच्च माध्यमिक विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं की स्थिति एवं सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन	डॉ. रेखा सोनी, पवन कुमार शर्मा	47-52
10.	नई कविता में दलित विमर्श	डॉ. विनय कौशल	53-56
11.	'रश्मिरथी' में व्यक्त युद्ध संबंधी विचार तथा उनकी आधुनिक संदर्भ में सार्थकता	नीतीश मेहता	57-59
12.	शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009 की प्रभावशीलता में समग्र शिक्षा योजना की भूमिका	सुनील कुमार दूबे	60-65
13.	नई कहानी : स्त्री का बदलता सामाजिक स्वरूप	डॉ. स्नेहलता नेगी, डॉ. सरोज कुमारी	66-71

180

संगम Impact Factor : 2.636
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका A Peer Reviewed International Refereed Journal
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध को समर्पित मासिक
Vol. 10, Issue 22-24
पृष्ठ : 66-71

नई कहानी : स्त्री का बदलता सामाजिक स्वरूप

डॉ. स्नेहलता नेगी,
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. सरोज कुमारी,
एसोसिएट प्रोफेसर, विवेकानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सृष्टि के विकास में स्त्री तथा पुरुष दोनों का समान अभिनय है। स्त्री के बिना सृष्टि की कल्पना करना अपने आप में ही हास्य पद है। फिर भी ना जाने क्यों स्त्री को अबला कहने वाला यह समाज भूल जाता है कि स्त्री के बिना किसी भी मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। इसके बावजूद कब-कब इस समाज ने स्त्रियों पर अत्याचार नहीं किए। देवदासी प्रथा हो या फिर सती प्रथा और भी इसी प्रकार की प्रथाओं को माध्यम बनाकर इस समाज ने स्त्रियों को अनेकों प्रकार की यातनाएं दी और स्त्रियों का शोषण किया। समाज हाशिए पर स्त्रियों को इस कदर धकेल दिया गया कि जैसे-जैसे समाज में परिवर्तन होता गया वैसे वैसे ही स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया गया। भारत में ही नहीं विदेशों में भी स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए लंबे समय तक यातनाएं झेली अनेको संघर्ष करें।

वैश्विक स्तर पर नारीवादी आंदोलन की शुरुआत ब्रिटेन और अमेरिका में हुई। 1848 ईसवी में कुछ महिलाओं ने सम्मेलन करके नारी मुक्ति से संबंधित वैचारिक घोषणा पत्र जारी किया। इस सम्मेलन में निर्णय लिया गया कि स्त्री को संपूर्ण और बराबर के कानूनी हक दिए जाए। उन्हें पढ़ने, बराबर मजदूरी करने, वोट डालने का अधिकार आदि क्रांतिकारी मांगे पारित की गई। आंदोलन को असली सफलता 1920 में जाकर मिली। इसको एक प्रकार का आंदोलन भी कहा जा सकता है, और यह तेजी से पूरे यूरोप में फैल गया। इस आंदोलन के दौरान ही अमेरिका में स्त्रियों को वोट डालने का अधिकार भी मिला। 1859 में अगला आंदोलन हुआ। 1908 में "ब्रिटेन" में "विमन फ्रीडम लीग" की स्थापना हुई। इसके अलावा और भी आंदोलन पूरे विश्व में जगह-जगह हुए जिसके परिणाम स्वरूप 1975 में पूरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में मनाया जाता है।

इन आंदोलनों का असर हमें भारत में भी दिखाई देने लगा। भारत में नारीवादी आंदोलन की शुरुआत नवजागरण के साथ हुई। भारत में महान क्रांतिकारियों और विद्वानों के द्वारा स्त्रियों के अधिकार के लिए कई आंदोलन हुए बाल विवाह, विधवा विवाह, बहूपत्नी प्रथा, देवदासी प्रथा, सती प्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध हुआ और अनेकों संघर्षों से इन कुरीतियों पर प्रतिबंध लगाया गया। राजा राममोहन राय, पंडित रमाबाई, महात्मा ज्योतिबा फुले तथा उनकी पत्नी सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे जैसे महान विद्वानों ने भारत में नारी मुक्ति के लिए क्रांति की आग प्रज्वलित कर दी। 'डॉक्टर भीमराव अंबेडकर' ने भारतीय संविधान में दलितों अल्पसंख्यक

(1)

Scanned with CamScanner

वर्गों के साथ भारतीय स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा के लिए नए कानूनों का निर्माण किया और स्त्रियों को पढ़ने, रोजगार, वोट डालने जैसे महत्वपूर्ण अधिकार दिए।

नारीवादी आंदोलन की प्रज्वलित आग हमें हिंदी साहित्य में भी दिखाई देती है। समकालीन हिंदी कहानी के दौर में स्त्री विमर्श एक विशेष मुद्दा है। खासतौर पर "मन्नू भंडारी", "कृष्णा सोबती", "उषा प्रियंवदा" की कहानियों में हमें स्त्रियों के उत्पीड़न की दास्तां साफ देखने को मिलती है। लैंगिक असमानता, वर्ग असमानता तथा आर्थिक असमानता को अपनी कहानियों में बेबाक तरीके से प्रदर्शित करने में यह लेखिकाएं सफल रही है। समकालीन हिंदी कहानी के दौर में मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती एवं उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकाओं ने अपने कहानी लेखन के माध्यम से समाज में व्याप्त स्वतंत्र भारत की परतंत्र स्त्रियों के उत्पीड़न को केवल प्रदर्शित ही नहीं करा बल्कि उन्होंने स्त्रियों की समस्याएं चाहे पारिवारिक समस्याएं हो या सामाजिक समस्याएं हो इन समस्याओं से संघर्ष करते दिखाया है। इन लेखिकाओं ने घर की चारदीवारी में बंद स्त्रियों की समस्याओं से लेकर घर से बाहर जाती कामकाजी स्त्रियों की समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है।

"मन्नू भंडारी" समकालीन हिंदी व वरिष्ठ और सशक्त कहानीकार रही है। इन्होंने अपनी कहानियों में स्त्रियों के अनेक रूपों को चित्रित किया है इनकी कहानियों की स्त्रियां कुछ परंपरागत है, तो कुछ पढ़ी लिखी है, कुछ कामकाजी है, तो कुछ विशिष्ट वर्ग से तालुकात रखने वाली है। भंडारी जी की कहानियों की स्त्रियां अपने अस्तित्व, अपने व्यक्तित्व की रक्षा और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती है। वे ना केवल पुरुषों की अधीनता अस्वीकार करती है, बल्कि पुरुषों को चुनौती देती हुई दिखाई देती है।

मन्नू भंडारी जी की कहानी "जीती बाजी हार की" नायिका "मुरला" विवाह के बंधन में बंधना पसंद नहीं है उसे यह बंधन अपने व्यक्तित्व को बेचने जैसा लगता है। मन्नू जी की "घुटन" कहानी दो नारियों की व्यथा कथा है। इस कहानी की नायिका "प्रतिमा" विवाहित है। उसका पति नेवी में इंजीनियर है जब भी वह घर आता है तो शराब पीकर अपनी पत्नी को बाहों में जकड़ लेता है "प्रीतमा" को उसका ऐसा करना बिल्कुल पसंद नहीं वह उस जकड़न से मुक्ति चाहती है। इस कहानी की दूसरी नायिका "मोना" की शादी नहीं हो पाती है वह अपने प्रेमी "अरूप" से शादी करना चाहती है परंतु 'मोना' की मां शादी नहीं होने देती क्योंकि "मोना" नौकरी करती है जिस कारण उसकी मां अपनी बेटी की शादी करके अपनी आर्थिक हालत बिगड़ने नहीं देना चाहती। "घुटन" कहानी की नायिकाएं "प्रतिमा" तथा "मोना" अपनी–अपनी परिस्थितियों को "घुटन" में तो बदल सकती है, परंतु बंधन में नहीं। मन्नू भंडारी जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है कि अगर स्त्री की शादी ना हो तो वह किस प्रकार की घुटन महसूस करती है तथा अगर उसकी शादी हो गई है तो वह किस प्रकार की घुटन महसूस करती है इन्होंने शादी से पूर्व तथा पश्चात की परिस्थितियों को बड़े ही गंभीरता से दिखाने का प्रयास किया है।

मन्नू भंडारी जी ने नौकरी पेशेवर स्त्रियों को भी अपनी कहानियों की नायिका बनाया है। जब भी कोई स्त्री किसी कारणवश अपनी नौकरी छोड़ने को मजबूर होती है, तो उसके अंदर किस प्रकार की विचारधारा उत्पन्न होती है तथा उस स्त्री के नजरिए में कितना परिवर्तन होता है इस अंतर्द्वंद को मन्नु जी ने अपनी कहानियों के माध्यम से दिखाने का प्रयास किया है। "नई नौकरी" कहानी भी इसी प्रकार की एक कहानी है जिस की नायिका "रमा" अध्यापिका है उसे पढ़ने और पढ़ाने का शौक है। उसके पति की प्राइवेट फॉर्म की नई नौकरी

182

है जिसके कारण रमा को अपनी नौकरी छोड़नी पड़ती है। जिस कारण "रमा" की इच्छा आकांक्षा धरी की धरी रह जाती है। ऐसा नहीं है कि उसकी जिंदगी ऐशोआराम से भरी नहीं है। ऐशोआराम से भरी जिंदगी के बावजूद भी वह संतुष्ट नहीं रह पाती है। जब भी उसका पति नौकरी को लिए जाता, तो उसके अंदर अनेकों प्रकार की विचारधारा उत्पन्न होती है उसको लगता है कि वह कितनी पिछड़ती जा रही है। मनु जी की कहानियां "ऊंचाई", "यही सच है", "बंद दरवाजों का साथ" जैसी कहानियों में विवाहेतर स्त्री तथा पुरुषों के नाजायज संबंध होने के कारण पति पत्नी के बीच आई टकराहट, टूटते बिखरते संबंधों की झलक साफ देखने को मिलती है। ऊंचाई कहानी की पात्र "शिवानी" एक ही समय पत्नी और प्रेमिका दोनों की भूमिका अदा करती है। उसका मानना है कि "विवाह के बाद संबंध रखकर अगर पुरुष अपवित्र नहीं होता तो स्त्री कैसे अपवित्र हो सकती है पवित्रता का संबंध शरीर से नहीं मन से होता है।" 'शिवानी' अपने पूर्व प्रेमी "अतुल" के साथ शारीरिक संबंध को ना तो अनुचित मानती है और ना अनैतिक। "यही सच है" कहानी कि "दीपा" भी परंपरागत मूल्यों को तोड़ती हुई एक स्त्री के नए रूप को प्रस्तुत करती है दीपा निशीथ से प्रेम करती है अपने प्रेमी से धोखा मिलने पर वह संजय से प्रेम करने लगती है। मन्नू भंडारी जी की कहानी स्त्री पात्र ना सिर्फ परंपरागत मूल्यों को तोड़ती हुई दिखाई देती है बल्कि पुरुषों के समान ही स्वच्छंद प्रेम में विश्वास रखती है।

"बंद दरवाजों का साथ", "एक बार और जैसी" कहानियों में हमें पति की बेवफाई आधुनिक स्त्री को किस प्रकार तोड़ देती है, इस तथ्य को सामने लाती है। ना तो बंद दरवाजों का साथ कहानी की पात्र मंजरी अपने पति से धोखा खाकर किसी दूसरे पुरुष के साथ संबंध रख पाती है और ना ही एक और बार कहानी की नायिका बिन्नी अपने प्रेमी कुंज से धोखा खाने के बाद किसी दूसरे व्यक्ति से रिश्ता बना पाती है। यही इनकी कहानी "दीवार, बच्चे और दीवार" की नायिका अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व पर पति द्वारा आंच आते ही शादी के रिश्ते को तोड़ देती है मन्नू भंडारी जी की कहानी की नायिकाएं स्वतंत्र व्यक्तित्व की है। "हार" कहानी की नायिका राजनीति में उतर कर पुरुष प्रधान समाज को चुनौती देती हुई नजर आती है। "कमरा और कमरे" कहानी की स्त्री पात्र 'निलीमा' कॉलेज की प्राध्यापिका है। जैसे ही उसकी शादी हो जाती है, उसे अपनी नौकरी छोड़नी पड़ती है। अपने अस्तित्व को इस प्रकार तार-तार होते देख वह अंदर ही अंदर टूट जाती है।

कभी-कभी लगता है कि स्त्री होना किसी अभिशाप से कम नहीं है, क्योंकि जन्म से लेकर मृत्यु तक स्त्रीयां पारिवारिक, सामाजिक बंधनों में इस कदर जकड़ी हुई है चाहे वह कितना भी पढ़ लिख ले फिर भी कहीं ना कहीं उसे उसके अधिकारों से वंचित करने का प्रयास किया जाता है। स्त्री के समकक्ष निःसंतान समस्या, आर्थिक समस्या, विधवा विवाह समस्या और भी ऐसी समस्याएं हैं जिनका इन्हें सामना करना पड़ता है। समकालीन हिंदी कहानी की महत्वपूर्ण लेखिका 'कृष्णा सोबती' जिन्होंने अपने कहानी लेखन के माध्यम से इन सभी समस्याओं को बड़ी बेबाकी के साथ चित्रित किया है। ये अपने बोल्डनेस अंदाज से पुरुष प्रधान समाज को खुली चुनौती देती हुई नजर आती है। इनका एक मात्र कहानी संग्रह "बादलों के घेरे" है। जिसमें उन्होंने स्त्रियों की विभिन्न समस्या, परिस्थितियों और संघर्ष को दर्शाया है। कृष्ण सोबती जी के कहानी संग्रह बादलों के घेरे की महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस कहानी संग्रह में संकलित कहानियों के माध्यम से इन्होंने स्त्रियों के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है। कृष्णा जी ने अपनी कहानी "एक दिन" के माध्यम से 'द्वीपत्नीवाद' की समस्या को दिखाया है। इस कहानी का पात्र 'धर्मपाल' अपनी पहली पत्नी होते हुए भी दूसरी

183

Scanned with CamScanner

शादी कर लेता है। यह हमारी पुरुष प्रधान समाज की सबसे बड़ी विडंबना है, कि पुरुष अपनी पत्नी के होते हुए भी दूसरी शादी कर लेता है। अगर ऐसा ही कोई स्त्री करती है तो उसके चरित्र पर सीधा लांछन लग जाता है। एक दिन कहानी में धर्मपाल की दूसरी पत्नी श्यामा का शीला के प्रति रवैया सही नहीं है। शीला चुपचाप सब कुछ सहती रहती है उसने कभी विरोध नही किया।

कृष्णा सोबती ने "बहने" और "बदली बरस गई" कहानियों में एक विधवा की समस्याओं का चित्रण किया है। बहने कहानी की मैंझली बहन विधवा है, ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो उसे ना कोसता हो यहां तक की बड़ी बहन की सास उसे कोसने का एक भी मौका नहीं छोड़ती और तो और मैंझली विधवा होने के कारण अपनी बहन के बेटे की शादी में भी शामिल नहीं होती है वह दूर से ही शादी की सभी रस्में देखती रहती है। मैंझली विधवा होने के साथ–साथ निःसंतान भी है जिस कारणों से उसे ताने सुनने को मिलते हैं उसका यह दर्द उसकी छोटी बहन ही समझती है।

"बदली बरस गई" कहानी में भी कल्याणी के पिता की मृत्यु हो जाती है। उसके बाद कल्याणी की माँ पर सास तथा ननंद बहुत ही अत्याचार करती है। इन अत्याचारों के कारण वह अपनी बेटी के साथ आश्रम चली जाती है तथा रूप बदलकर साध्वी मां बन जाती है।

बदलते प्रवेश के साथ स्त्रियों के स्वभाव में भी परिवर्तन आया है। स्त्रियां मां, बहन, बेटी, बहू, इन सब किरदारों से खुद को अलग रखकर, सामाजिक रूढ़िवादी मान्यताओं को तोड़ती हुई अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान के लिए संघर्ष कर रही है। अब महिलाएं केवल घर तक सीमित नहीं है। वे पुरुषों को बराबर की टक्कर देती है। वर्तमान समय में ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहां स्त्रियों ने अपने हुनर का प्रदर्शन ना करा हो। समकालीन हिंदी कहानी की लेखिका उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में भारतीय एवं विदेशी परिवेश के माध्यम से स्त्री मुक्ति अस्मिता के प्रश्नों को अलग–अलग रूप में उजागर किया है उषा प्रियंवदा जी ने अपनी कहानियों में बदलते परिवेश के साथ–साथ स्त्रियों की बदलती छवि, उनकी स्वच्छता, जागरूकता को दिखाया है।

उषा जी की कहानियों की स्त्री पात्र आज के परिवेश की पुकार। वे पुरुष प्रधान समाज की अधीनता को स्वीकार नहीं करती है। परंतु यह कहना उचित नहीं होगा कि इनकी कहानियों की स्त्री पात्र अपने पारिवारिक बंधनों को तोड़कर पुरुषों का विरोध करती है। बल्कि वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती हुई नजर आती है वह परिवार भी चाहती है, पुरुषों का सहारा भी, परंतु साथ ही साथ अपनी खुद की स्वतंत्र पहचान और अस्मिता भी कायम करना चाहती है। उषा प्रियंवदा की शुरुआती कहानियों की दौर की स्त्रियां पढ़ी लिखी है। परंतु नौकरी पेशेदर होने के बावजूद वे रूढिवादिता को नहीं त्याग पाती है और इन रूढ़िवादिता से प्रताड़ित होने के बावजूद भी आवाज नहीं उठा पाती है। इनकी कहानियों के स्त्री पात्रों को मुख्य रूप से दो वर्गों में देखा जा सकता है। एक वर्ग स्त्रियों का वह है जो भारतीय पारंपरिक रूढ़िवादी मान्यताओं के प्रति सहज स्वीकृत है। इस वर्ग की स्त्रियां ना चाहते हुए भी परंपरागत मूल्यों के अनुसार जीवनयापन करने को मजबूर है।

दूसरा वर्ग उन स्त्रियों का है जो पारंपरिक मूल्यों को तोड़ती हुई आधुनिक मूल्यों को वरीयता प्रदान करती हुई नजर आती है। इनकी कहानी "प्रश्न उत्तर" इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। इस कहानी की दोनों स्त्री पात्र बन्नो बुआ अपने पारंपरिक मूल्यों को बिना किसी विद्रोह के सहज भाव से स्वीकार कर लेती है। वहीं दूसरी तरफ लता आधुनिक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करते हुए अपनी पारंपरिक मूल्यों के बंधनों को स्वीकार नहीं करती

184

Scanned with CamScanner

और विद्रोह करती है।

उषा प्रियंवदा की कहानियों में स्त्रियां अपने विचारों व स्वच्छंद स्वभाव के साथ प्रदर्शित हुई है मान और हट कहानी की नायिका अमृता भी एक स्वाभिमानी स्त्री है। वह समझौता करना पसंद नहीं करती। वह अपनी पसंद के पति ना मिल पाने के कारण दुःखी हो जाती है। परंतु पति द्वारा उसका अपमान किए जाने पर वह चुप नहीं रहती। अमृता का पति कहता है "मैं तुम्हारी जैसी हजारों को खरीद सकता हूं, तुम्हें अगर अपने रूप पर घमंड है तो मैं भी तुम्हें देखा दूंगा।" अमृता भी जवाब देती है "आपको अपनी दौलत का घमंड है, तो मैं भी आपको दिखा दूंगी"। अमृता कभी किसी के सामने नहीं झुकती वह अपने पति के सामने भी नहीं झुकती। वह इतनी स्वाभिमानी है, कि उसे पता है उसके सामने अनेको कठिनाईयां है, परंतु संघर्षशील स्त्री के रूप में पढ़ाई पूरी कर नौकरी करने का निश्चय करती है। जहां अमृता आधुनिक स्त्री का प्रतिनिधित्व है वही मुकुल पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतीक है और अमृता इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती हुई नजर आती है।

उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में प्रेम विवाह की समस्या को भी चित्रित किया है "तूफान के बाद" भी इसी प्रकार की कहानी है। इस कहानी की पात्र 'मन्नो' अपनी पसंद के लड़के से शादी करना चाहती है, परंतु उसका भाई विरोध करता है। वह अपनी बहन की शादी किसी और से करा देता है। भाई अपनी खुद की बेटी के कहने पर प्रेम विवाह कराने के लिए तैयार हो जाता है। ऐसे करने से उसके मन को तसल्ली मिलती है। अपनी बेटी का प्रेम विवाह करवाने के बाद उसके मन में हमेशा यही बात आती है कि यह कार्य उसे पहले ही कर देना चाहिए था। वह हमेशा आत्मग्लानी में डूबा रहता है। इसी आत्मग्लानि को देखकर मन्नो अपनी बरसो की पीड़ा को त्यागकर बिल्कुल फिर से जीवन की शुरुआत करती है। उषा जी की कहानी की स्त्री पात्र किसी भी बंधन से बंदकर रहना नहीं चाहती। वह सभी बंधनों को तोड़ने में ही अपनी भलाई समझती है। "मोहबंध" कहानी में भी हमें यही बंधन टूटे हुए नजर आते हैं। इस कहानी की पात्र 'नीलू' भी बंधन में बंध कर रहना पसंद नहीं करती पति से बार–बार कहती है "तुम समझने की कोशिश क्यों नहीं करते राजन! मैं एक दायरे में बंद कर नहीं रहे सकती हैं"। वह आधुनिक स्त्री है। वह एक ऐसी स्त्री है जो सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने तथा दोस्तों की पार्टी में व्यस्त रहती है तथा अपनी पहचान और अपने स्वतंत्र व्यक्ति के साथ जीवन बिताने में विश्वास रखती है।

इसी कहानी के दूसरी पात्र "अचला" अभिमानी है। वह देवेंद्र के प्यार में धोखा खाने पर थोड़ा विचलित होती है। लेकिन बाद में उसे एहसास भी होता है कि इस बंधन को छोड़कर उसे जाना ही है, क्योंकि इसी दुःख में दुःखी रहकर जीवन नहीं दिया जा सकता। "संबंध" कहानी भी इसी प्रकार की कहानी है। 'श्यामल' बधन मुक्त जीवनयापन करना चाहती है। वह शादी एवं परिवार का सहज रुप से विरोध करती है। वह स्वच्छंद आधुनिक स्त्री है। वह केवल घर परिवार में ही बंधकर रहना पसंद नहीं करती है। इनकी "प्रतिध्वनि" कहानियों में भी हमें नारी मुक्ति आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इस कहानी की पात्र 'वसु', पति 'श्यामल' और बेटी 'रुचि' को भारत में छोड़कर विदेश में रहने का निश्चय करती है। इनकी कहानी "आधा शहर" मे भी 'इला' स्वाभिमानी स्त्री है। वह अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती है घर से भागकर अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए विदेश चली जाती है। वह पितृसत्ता को चुनौती देते हुए कहती है "एक पुरुष 50 स्त्रियों से प्रेम करता फिरता है उसे तुम्हारा समाज कुछ नहीं कहता एक स्त्री अगर अकेली सम्मान से जीना चाहती है तो उसे चारों

185

तरफ से गीद्ध खाने को तैयार रहते हैं"। इससे पता चलता है कि "इला" अपनी खुद की शर्तों पर जीवन जीना पसंद करती है वह किसी भी प्रकार के बंधन में नहीं बंदना चाहती। उषा प्रियंवदा की कहानियों की सबसे खास बात यही है कि इनकी कहानियों की स्त्री पात्र सभी बंधनों से मुक्त होती हुई नजर आती है। इनकी कहानियों में पश्चिमी आंदोलनों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

समकालीन हिंदी कहानी के दौर की लेखिकाओं ने स्त्री मुक्ति के लिए अपनी कहानी के माध्यम से एक आंदोलन से खड़ा कर दिया। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा की कहानियों में हमें विभिन्नता देखने को मिलती है। परंतु फिर भी इनकी कहानियों का स्वर एक ही है– स्त्रियों की पारिवारिक रूढ़िवादिता से मुक्ति, स्त्रियों की सामाजिक रूढ़िवादिता से मुक्ति, स्त्रियों के हर एक उस शोषण से मुक्ति जो उसके मन को कचोटता हो और स्वाभिमान को ठेस पहुंचाता हो, स्त्रियों को पुरुषों के समान बराबरी का अधिकार।

वर्तमान समय की बात की जाए तो स्त्रिया पढ़ लिख कर नौकरी करने लगी है परंतु फिर भी कहीं ना कहीं उन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से शोषण का शिकार होना पड़ता है। आज भी स्त्रियों को 'ये पढ लिख कर बनेंगी मजिस्ट्रेट! ये पढ़–लिखकर बनेंगी मास्टराईन! जैसे तानो का शिकार होना पड़ता है। पितृसत्तात्मकता ने घर–परिवार तथा समाज में अपनी जड़े इतनी मजबूत करी हुई है कि अभी भी स्त्रियों को अपने अधिकारों, अपनी अस्मिता के लिए और भी संघर्ष करने पड़ेंगे। इस आलेख के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के आई.ओ.ई. परियोजना का सहयोग प्राप्त हुआ। सहयोग के लिए हम विश्वविद्यालय के आभारी हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. मन्नू भंडारी (1994), दस प्रतिनिधि कहानियां, किताब नगर प्रकाशन।
2. कृष्णा सोबती, बादलों के, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1– बी, नेताजी सुभाष, नई दिल्ली, 2002
3. उषा प्रियंवदा संपूर्ण कहानियां।
4. स्त्री मुक्ति फरवरी 2014
5. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श डॉक्टर मुदिता चंद्रा।
6. डॉ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का, मयूर बुक्स।
7. डॉ हेमंत कुकरेती, हिंदी साहित्य का, सतीश बुक डिपो।

186

Scanned with CamScanner

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
December 2022
Vol.-16, Issue-6

Impact Factor
5.642

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

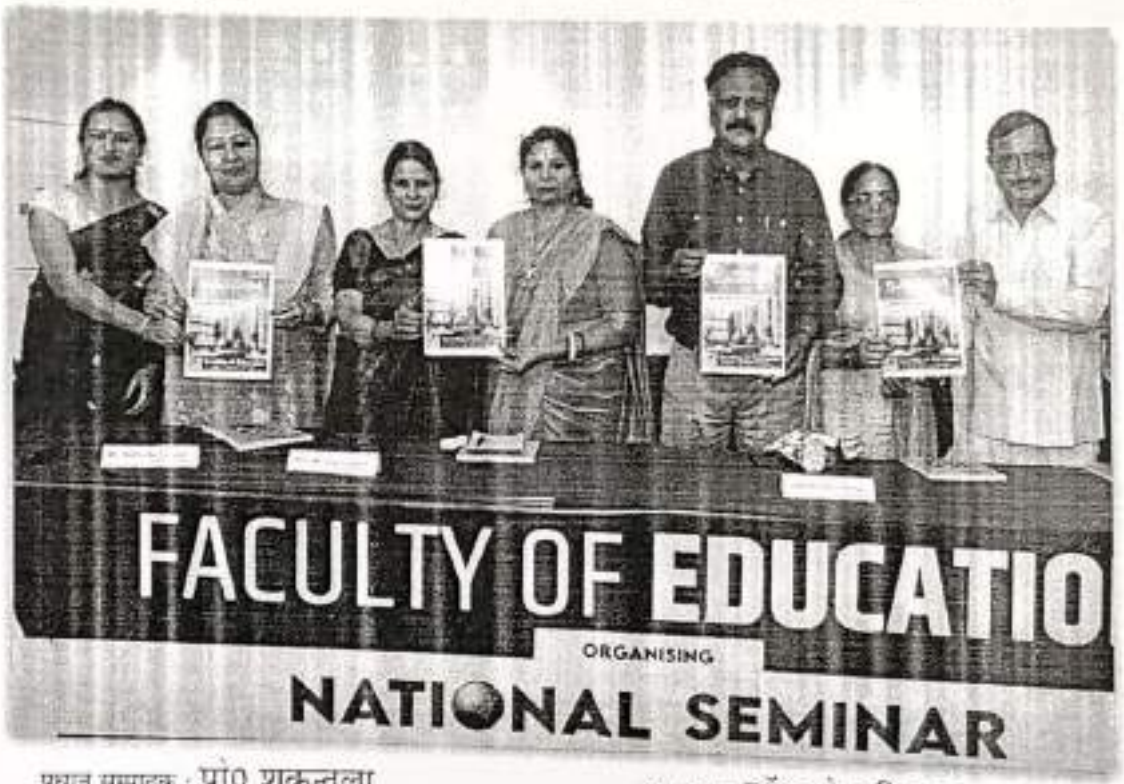

प्रधान सम्पादक : प्रो० शकुन्तला

सम्पादक : डॉ० नरेश सिहाग, एडवोकेट

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

194

Scanned with CamScanner

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc.,)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

₹200

Scanned with CamScanner

25.	कवि विजेंद्र का सौंदर्य दर्शन	मीना देवी,	
26.	प्रेमचंद का राष्ट्रवाद और समसामयिक परिवेश	कमला कौशिक	129-133
		लेफ्ट. डॉ. एम. गीताश्री	
27.	ममता कालिया के साहित्य की वर्तमान में प्रासंगिकता	डॉ. मो. रियाजखान	134-138
28.	आधुनिकता और पत्रकारिता	डॉ. ज्योति पटेल	139-142
29.	अम्बेडकरवादी चिंतन और दलित साहित्य	डॉ0 विनय कौशल	143-146
30.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य : पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता	श्रीमती किरण बाला	147-149
31.	समकालीन हिन्दी दलित कथा साहित्य : विविध आयाम	डॉ. निशा बहल	150-154
32.	दर्शन दिग्दर्शन रूराहुल जी का दर्शन के विकास के प्रति निरूपण	डॉ० मोहम्मद अलीखान	155-158
33.	ग्रामीण समाज तक संचार माध्यमों की पहुँच	कार्तिक मोहन डोगरा	159-163
34.	भारतीय कृषि में सिंचाई का भौगोलिक अध्ययन	डॉ. अशोक कुमार मीणा	164-168
35.	मानव जीवन के चार लक्ष्य-धर्म अर्थ काम और मोक्ष	डॉ० वेदप्रकाश	169-174
36.	स्वदेश दीपक के नाटकों में चित्रित शारीरिक एवं मानसिक शोषण	डॉ० निवारण महथा	175-179
37.	अष्टछाप कवि	रेश्मा कृष्णन जी. आर	180-182
38.	वैश्वीकरण के आईने में जयनंदन की कहानियों का विश्लेषण	डॉ. अजय शालिनी भट्ट	183-191
39.	शैक्षिक परिदृश्य में समयोचित पुनरूत्थान : महत्व और औचित्य	ROSHMA. B.S.	192-195
40.	केरलीय हिंदी शोध की समस्याएँ	डॉ. अखिला सिंह गौर	196-200
41.	वैश्विक स्तर पर हिन्दी	डॉ. श्याम प्रसाद.के.एन	201-205
42.	समावेशित शिक्षा के प्रति शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की जागरूकता का अध्ययन	क	206-211
		डॉ. श्रीकांत भारतीय,	
43.	अभिमन्यु अनत के साहित्य में भारतीय संस्कृति का चित्रण	पंकज सिंह	212-220
44.	चँदैनी गोंदा : छत्तीसगढ़ का सांस्कृतिक जागरण	डॉ. मुकेश कुमार	221-224
		डॉ. इसाबेला लकड़ा,	
45.	कुमाउनी लोकगाथाएं	हेमपुष्पा नायक	225-228
46.	निरर्हता संबंधित झारखण्ड विधानसभा के निर्णयों का समीक्षात्मक अध्ययन	कु. सुमन	229-232
47.	वैश्विक परिदृश्य में भारतीय विदेश नीति की प्रमुख चुनौतियाँ	मरियम मुर्मू	233-238
		डॉ० तृप्ति नामदेव	239-243
48.	ANALYZE THE INDIAN LAW AND CULTURE	MANISHA MARANDI	244-249
49.	भारतीय समाज की संरचना में तृतीयक लिंगी समुदाय एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (अजमेर जिले के संदर्भ में)	उन्नति शर्मा,	
		डॉ० परेश द्विवेदी	250-257
50.	नए कहानीकारों (कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा) की कहानियों में स्त्री विमर्श	डॉ. स्नेहलता नेगी,	
		डॉ. सरोज कुमारी	258-264

202

Scanned with CamScanner

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 5.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
December 2022 Page No. : 258-264

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

नए कहानीकारों (कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा) की कहानियों में स्त्री विमर्श

डॉ. स्नेहलता नेगी, एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
डॉ. सरोज कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर
विवेकानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

समाज के दो पहलू स्त्री पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। उसके बाद भी पुरुष समाज ने इस महिला समाज को अपने बराबर के समानता से वंचित रखा। इसी पक्षपाती दृष्टीकोण ने शिक्षित नारियों को आंदोलन करने पर मजबूर किया। जो आज ज्वलंत मुद्दा नारी विमर्श के रूप में दृष्टिगोचर है।

भारत की स्त्रियों में स्त्री विमर्श के दृष्टिकोण से स्त्री मुक्ति की प्रचलित समाज के स्तर को निश्चित खांचों या खानों में बांटना तो कठिन है, लेकिन वर्तमान स्थितियों ,परिस्थितियों के आधार पर स्त्रियों की समाज, सोच व अवधारणा के विभिन्न स्तर व रुझानों को चिन्हित तो किया ही जा सकता है। भारत में मुक्ति की यह सोच ऊपर के तबके की स्त्रियों में कुछ हद तक जरूर काफी व्यापकता पा गई है, भले ही वह अब भी अल्पसंख्यक समाज ही है। करोड़ों स्त्रियां इस सोच से अनजान है, यह भी कटु सत्य है। आज स्त्री विमर्श और स्त्री मुक्ति का सपना ऊंची उड़ाने भरने के लिए अपने पंख फड़फड़ा कर खुद को गतिमान बनाने की मुहिम चलाने में तो कामयाब हुआ है, लेकिन यथार्थ के धरातल पर ये सपने कितने परवान चढ़े हैं, वस्तु-स्थिति क्या है? इसे परखना बहुत आवश्यक है।

सभ्यता के आदिम रूप को देखते हुए यह कहा गया है कि बहुत पहले जब धरती विकास की प्रतिक्रिया से गुजर रही थी। सभ्यता स्त्री सत्तात्मक थी। कालांतर में स्त्री सत्ता पुरुष सत्ता में तब्दील हो गई और आज स्त्री होने की हीनभावना का मिथ स्त्री को यह नहीं सोचने देता कि कभी उनकी सत्ता प्रधान थी। वह घर की संचालिका थी, स्वामिनी थी और पुरुष उनका सहायक जिसका फर्ज था गृह संचालन में सहयोग करना। कालांतर में यही सेवक शासक बन गया।

डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर ने लिखा है कि – 'भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री दलितों में भी दलित है। इस व्यवस्था ने न केवल उसकी अस्मिता को नकारा है अपितु उसे हमेशा दोयम दर्जा दिया है। ज्ञान क्षेत्र से लेकर धर्म क्षेत्र तक में उसका प्रवेश वर्जित था। हजारों वर्षों से यह स्त्री उपेक्षिता का जीवन जी रही थी।'[१]

स्त्री–पुरुष के संबंध में यह कहा जाता है कि पुरुष का जीवन संघर्ष से प्रारंभ होता है और स्त्री का

203

आत्मसमर्पण से। जबकि वास्तविक रूप में दोनों ही संघर्ष करते हैं अंतर केवल इतना है कि स्त्री का संघर्ष घर में रहता है जो गृहस्थ धर्म के इर्द–गिर्द घूमता है और पुरुष का बाहर और घर दोनों तरफ। हिंदू परिवार में परिवार संबंधी अनेक तरह के बंधनों एवं विकास के अवसरों की व्यवस्था है। इसमें नारी को आर्थिक दृष्टि से पराधीन रहना पड़ता है। इसलिए परिवार की आंतरिक व्यवस्था का मूलाधार नारी बनती है। हिंदू परिवार में कन्या, पत्नी, मां, बहन जैसे मुख्य रूपों के लिए आदर्श गुणों की भी व्यवस्था है जिसमें नारी के उन रूपों का विकास होता है।

नारी का सीधा संबंध समाज से ना होकर पुरुष से है जिसे समाज ने पुरुष को एक जिम्मेदारी के रूप में सौंपा हुआ है। यदि वह समाज में आती है तो उसे पहले परिवार रूपी दीवार को पार करना पड़ता है साथ ही पुरुष की इच्छाओं को भी। यही कारण है कि पुरुष के लिए नारी सर्वस्व नहीं हो पाती जबकि नारी के लिए पुरुष सर्वस्व हो जाता है। इसी कारण नारी को समाज में पुरुष की विधवा और वैश्या के रूप में भी आना पड़ता है। पुरुष के साथ ऐसा बंधन नहीं है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी कहानी का एक नया आंदोलन अस्तित्व में आया, इसे 'नयी कहानी' के नाम से जाना जाता है। एक विधा के तौर पर कहानी को शायद सबसे अधिक लोकप्रियता इसी युग में प्राप्त हुई। 'नयी कहानी' में प्रेमचंदोत्तर युग की यथार्थवादी और मनोवैज्ञानिक कहानियों की दो अलग–अलग धाराएं पुनः एक होती नजर आती है। इस युग की कहानियों में भी सामाजिक समस्याओं और यथार्थ की जटिलताओं को चित्रित किया गया किंतु व्यक्ति के निजी व्यक्तित्व की उपेक्षा भी नहीं की गई। इस युग की कहानी के केंद्र में पारिवारिक और मानवीय संबंधों में आने वाले परिवर्तन प्रमुख रहे। पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–बहन के रिश्ते में ही नहीं, हमारे सामाजिक संबंधों में होने वाले परिवर्तन भी चित्रित हुए।यद्यपि इस युग के अधिकांश कथाकारों में मध्यम वर्ग को ही महानगर, शहर, कस्बों और गांवों की विशिष्ट जिंदगी में अलग पहचाना जा सकता था। नयी कहानी का केंद्रीय कथ्य स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के मध्य वर्ग की आशाओं, आकांक्षाओं और स्वप्नभंगो से संबद्ध है। इस युग में कुछ महिला कहानीकारों ने भी उल्लेखनीय कहानियां लिखी जिनमें कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा के नाम विशेष उल्लेखनीय है।[2]

विवाह स्त्री को उसकी देह और श्रम के बदले जीवन भर के लिए रोटी, कपड़ा और छत मुहैया कराता है और देता है, बाहरी पुरुष से सुरक्षा का आश्वासन (?) और वापिस लेता है उसका 'आत्म'। 'आत्म' जो बचपन से ही बनने नहीं दिया जाता। इस अनजाने 'आत्म' के अभाव का ही परिणाम है कि स्त्री शिक्षित और कई बार स्वाबलंबी होकर भी पिता पुत्र पर निर्भर रहने के संस्कार और परंपरा में जकड़ी रहती है। सुरक्षा (?) और सम्मान (?) के बदले में व्यक्तिगत जीवन जीने का दुस्साहस नहीं करती। व्यक्तिगत जीवन जीने का दुस्साहस न कर पाने का और परिवार से मिलने वाली सुरक्षा की मोहताजी का महत्वपूर्ण कारण उसका 'नाकमाऊ' समझा जाता है। जिसके पास अर्थ है शक्ति, सुरक्षा के स्रोत उसी के पास केंद्रित हो जाते है जो पुरुष को आर्थिक सुरक्षा देता है, वही उसे हस्तगत कर लेता है, अपने सारे अधिकार स्त्री पर सुरक्षित समझता है। वह जानता है कि मातृत्व और मानव शिशु की देखभाल की लंबी अवधि स्त्री को घर तक सीमित करती है। उबाऊ, थकाऊ, घरेलू श्रम में स्त्री अपनी जिंदगी खत्म कर देती हैं, जिसका न कोई मूल्य दिया जाता है न आंका जाता है। – रेखा कस्तवार[3]

आर्थिक स्वावलंबन और शैक्षणिक समानता ने स्त्री को जो सामाजिक प्रतिष्ठा दी है और उससे स्त्री में

204 Pr

Scanned with CamScanner

व्यक्तिक चेतना ने जन्म लिया है जिसके परिणामस्वरूप वह परिवार की व्यवस्था को पूर्णतया स्वीकार नहीं कर पाई है। आज स्त्री के लिए पारिवारिक रूपों में कन्या, पत्नी, मां, बहन रूप ही महत्वपूर्ण रह गए हैं। शेष रूप केवल निभाने के लिए ही रह गए हैं। मध्यवर्गीय स्त्री की स्थिति अधिक दयनीय हो उठी है। उसे एक ओर परंपराओं एवं आदर्शों का पालन करना पड़ता है दूसरी ओर नवीन मनःस्थिति और सामाजिक संरचना का सामना करना पड़ा है क्योंकि मध्यवर्गीय स्त्री आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वावलंबी हुई है।

प्रभा खेतान का मानना है :– "स्त्री होना कोई अपराध नहीं है, पर स्त्रीत्व की आंसू भरी नियति स्वीकार ना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको, तो वह एकलव्य की गुरु दक्षिणा होगी।[7]

राजी सेठ ने यह प्रश्न बडी शिद्दत से उठाया है कि क्या स्त्री की पूर्णता पुरुष के बिना संभव नहीं है? 'सार्थकता' और 'पुरुष' – ये दोनों एक ही चीज के नाम क्यों है स्त्री के जीवन में ? इतनी बड़ी जगह क्यों घेर ली है इस संबंध में कि हर चीज की व्याख्या इसी बिंदु में होने लगे।[8]

समकालीन दौर में अनेक स्त्री लेखिकाओं ने साहित्य लेखन के क्षेत्र में सकारात्मक हस्तक्षेप किया है। उन लेखिकाओं में कृष्ण सोबती एक विशिष्ट नाम है। कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'जिंदगीनामा', 'दिलो दानिश', 'तीन पहाड़ यारों के यार', 'सूरजमुखी अंधेरे के', समय सरगम के साथ–साथ ए लड़की है। जिसमें स्त्री बिंब के कई पहलू हैं। उन बिंबो में स्त्री के विलक्षण खुलेपन और बेबाक अभिव्यक्ति से लेकर परंपराओं–रूढ़ियों से लड़ते–जूझते स्त्री की कशमकश और संघर्ष है तो पितृसत्तात्मक व्यवस्था से टकराती हुई स्त्री का प्रखर स्वर भी है। उनके साहित्य को पढ़ते हुए एहसास होता है कि उनकी नायिकाएं पुरुष सत्ता –व्यवस्था के समकक्ष खड़ी होने के लिए कशमशा रही है।

हिंदी साहित्य में जिन नए साहित्यकारों ने नारी जीवन की गतिविधियों को अपने साहित्य में उकेरा है, उनमें कृष्णा सोबती का नाम शीर्षस्थ है। उन्होंने बदलते संदर्भ में नारी की बदलती हुई मानसिकता एवं समस्याओं को केंद्र में रखकर अपने साहित्य संसार का सृजन किया है।

अपनी दैहिक कामनाओं को लेकर 'मित्रो मरजानी' की नायिका 'मित्रों' में कोई झिझक नहीं, तमाम पारिवारिक मर्यादाएँ उसके किसी काम की नही है। इनकी आड़ मे वह अपनी इच्छाओं को झुठलाती नहीं। यह साहस आज भी ऐसे प्रकृत रुप में कम देखने को मिलेगा। विमर्श प्रेरित चित्रण में देह तो केंद्र में है किंतु सच्चाई का यह वास्तविक रूप व साहस नहीं। तमाम खुलेपन के बीच भी मित्रों की पहचान विशिष्ट है। नटखट, मुंहफट, बेबाक, वर्जनामुक्त, विद्रोही मित्रों कृष्णा सोबती की सशक्त स्त्री पात्र है। जो अपनी यौनिकता को लेकर स्पष्ट है। सच को सच की तरह स्वीकार करने का यह मादा चरित्र इस चरित्र–रचना को विशिष्ट आभा प्रदान करता है। अपनी देह इच्छाओं को लेकर यह साहसी पात्र मुखर है, गोपन भाव से पूर्णतः मुक्त। किंतु उसके साहस का एक रूप यह है कि जितने साहस से वह देह कामनाओं की तृप्ति चाहती है उतने ही साहस से वह अपनी मां को लताड़ कर अपने पति व परिवार की ओर लौटती है।

एक स्वतंत्रचेता स्त्री की वास्तविक इच्छा के अनुरूप है देह कामनाओं, मातृत्व, घर और परिवार का यह मेल। मित्रों की मुखरता आक्रामक और विघटनकारी नहीं प्रकृत है। ऐसे चरित्र को बड़ी कलम ही रच सकती है। यह चरित्र जितना उन्मुक्त व क्रांतिकारी है सामाजिक मूल्यों की ओर उसका प्रत्यावर्तन भी उतना ही अचरज से भरा है। मित्रों का परिवार व विवाह संस्कार की ओर झुकना अपनी यौनिक मुक्ति से सुरक्षित कवच में लौटना है।

205 [handwritten initials]

मुक्ति का ऐसा प्रत्यावर्तन ही संस्कार या मूल्य नाम से समाज में सुशोभित रहा है। कृष्ण सोबती के स्त्री पात्रों का संघर्ष किसी मूल्य चेतना से है।

कृष्णा सोबती की स्त्री में गहरी सजगता है। मृत्यु शैया पर भी यह स्त्री पुरुष की सामाजिक अवस्थिति पर विचार व्यक्त करती है। उसे सामाजिक अधिकार तभी प्राप्त हो सकते हैं, जब वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है। आर्थिक स्वतंत्रता उसकी अस्मिता का आधार है। यद्यपि यह सही है कि आर्थिक आजादी के बाद भी स्त्री की सामाजिक स्थिति में बहुत बड़ा हेर-फेर नहीं हुआ है। बल्कि दोहरी जिम्मेदारियां, दोहरे दबाव ने उन्हें अधिक संघर्ष की ओर भी धकेला है। फिर भी कृष्णा सोबती की स्त्री अपने विषय में बिना किसी आक्रोश और झंडाबरदारी के सोचने की ताकत खुद संजोती है :– "सोचने की बात है – मर्द काम करता है तो उसे एवज में अर्थ-धन प्राप्त होता है। औरत दिन-रात जो खटती है, वह बेगार के खाते में ही न! भूली रहती है अपने को मोह-ममता में। अनजान, बेध्यान। वह अपनी खोज-खबर न लेगी तो कौन उसे पूछने वाला है।"[6]

आधुनिक युग में औद्योगिकीकरण, भूमंडलीकरण और नारी-मुक्ति आंदोलनो ने नारी की सामाजिक स्थिति में अनेक सुधार किए हैं। स्त्रियों का एक बड़ा तबका आज शिक्षित और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है तथा इसी कारण जीवन के सभी पहलुओं जैसे आर्थिक स्वातंत्र्य, अस्तित्व बोध, प्रेम या विवाह से संबंधित निर्णय, सभी को आलोचनात्मक दृष्टि से देखती हैं। आज की स्त्री सभी मुद्दों पर पुरुष से बराबरी का अधिकार चाहती हैं। प्रेम अब कोई शाश्वत भावना नहीं रही और इसे अपनी सुविधानुसार तोड़ा या मरोड़ा जा सकता है। आधुनिक युग में प्रेम सिर्फ उदात्त भावना तक सिमटा हुआ नहीं है बल्कि शारीरिक और मानसिक संतुष्टि का भी उपादान बन चुका है।

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में बदलाव को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया गया है। 'कुछ नहीं, कोई नहीं' कहानी की शिवा अपने पति रूप से विरक्त नहीं बल्कि उससे गहरा प्रेम करती है। लेकिन जब रूप कुछ दिनों के लिए घर से बाहर है तो क्षणिक आवेश में आकर शिवा पति के मित्र आनंद से संबंध बना लेती है। यह कोई सोचा-समझा हुआ निर्णय नहीं था और इसका खामियाजा उसे भुगतना पड़ता है। रूप का घर और अपने बच्चों को त्याग कर। शिवा, आनंद के साथ चली तो जाती है लेकिन आनंद के साथ रहते हुए भी वह क्षण के लिए भी रूप को नहीं भूल पाती। आनंद की मृत्यु के साथ ही शिवा के पश्चाताप का सिलसिला शुरू हो जाता है। वह रूप के सामने क्षमा याचना प्रस्तुत करती है। शिवा के लिए अब कहीं कोई जगह नहीं, कहीं कोई रिश्ता नहीं बचता, "रूप मैं आज तुम्हारी कुछ नहीं हूं। आनंद के बच्चों को आनद का सब कुछ सौंपकर तीन-चार दिन में यहां से चली जाऊंगी। फिर ना कभी घर देखूंगी ... ना घर का सामान, ना सामान से लिपटी अतीत की स्मृतियां ...। कहां रहूंगी, कहां जाऊंगी, कुछ पता नहीं। रूप, अब किसे जानना है, मैं कहां हूं? मैं किसी की कुछ नहीं, कोई नहीं।"[7]

अगर इस कहानी के रचनाकाल को देखें तो यह मार्च 1955 में लिखी गई है। इस कहानी के तार आगे चलकर कृष्णा सोबती की मित्रों से जुड़ते हैं।

नई कहानी के अंतर्गत जीवन के हर क्षेत्र में आए परिवर्तन की वजह से मूल्य में बदलाव आ गया है। जिसके फलस्वरूप 'आधुनिक स्त्री' का एक वर्ग परंपरागत पति के आवरण को फाड़कर अपनी वैयक्तिक स्वतंत्रता, आशा, आकांक्षा एवं स्वाभिमान के साथ जीने का प्रयत्न करता है तो दूसरा वर्ग नैतिक मूल्यों की बलि

206

Scanned with CamScanner

देकर उन्मुक्त जीवन जीने को उद्धत है। स्वतंत्रता के पश्चात आए परिवर्तनों का गहरा प्रभाव पति–पत्नी संबंधों पर भी पड़ा है। अतः पति–पत्नी के बीच संबंधों में एक अलगाव, टूटन, दरकन–सा नजर आता है। पति–पत्नी के अहम की टकराहट, आर्थिक विषमता, आपसी अविश्वास, शक, तीसरे व्यक्ति का आगमन, अतृप्त यौन संबंध, अस्मिता की खोज आदि। आजकल 'अर्थ' ने सभी मानवीय संबंधों को बदल दिया।

स्त्री स्वतंत्रता व्यक्तित्व पाने के लिए संघर्ष कर रही है। प्राचीन मूल्यों को तोड़कर जीवन को अपने रूप में जीना चाह रही है। परंपरा से संघर्ष कर रही है, तो दूसरी ओर वह एक गहरे अंतर्द्वंद में भी है। जीवन का यह द्वंद कई कोणों से इन कहानियों में उभरता है. वह स्वतंत्र व्यक्तित्व पाने की चेष्टा में भी है आगे उसे पाकर उसके मन में एक द्वंद भी है। स्वतंत्र व्यक्तित्व की खोज ने कहीं दृ कहीं स्त्री को ऐसे दोराहे पर खड़ा कर दिया है जहां वह इस अंतर्द्वंद में है कि उसकी उपलब्धि क्या है? अपने पूर्ण व्यक्तित्व की खोज में स्त्री कई बार ऐसे विविध बिंदुओं पर आकर रुक जाती है जहां उसके लिए यह फैसला करना कठिन हो जाता है कि कौन–सा मार्ग उचित है? स्त्री परंपरा दृष्टिकोण को तोड़ चुकी है जो उसे पतिव्रत धर्म से जोड़ता था। अब वह पति और प्रेमी इन दोनों में कोई भेद नहीं करती। पति के रहते वह पर पुरुष से प्रेम करने में विश्वासघात नहीं समझती। उसने यौन मुक्ति भी प्राप्त कर ली है। एक ही पुरुष के साथ जिंदगी बिताना उसे अच्छा नहीं लगता, किंतु ऐसी स्थितियों में आधुनिक स्त्री एक अंतर्द्वंद का अनुभव भी करती है।

इस अंतर्द्वंद को मन्नू भंडारी की कहानी 'यही सच है' की दीपा के इस चिंतन में देखा जा सकता है– "संबंध टूट गए, अब उन पर बात कौन करे? मैं तो कभी नहीं करूंगी। पर उसे तो करनी चाहिए। तोड़ा उसने था.... मैं जानती हूं वह पूछना चाहता है दीपा तुमने मुझे माफ तो कर दिया? वह पूछ क्यों नहीं लेता? मान लो यदि पूछ ले तो क्या मैं कह सकूंगी, मैं तुम्हें जिंदगी भर माफ नहीं कर सकती। हम आज भी आत्मीयता के उन्हीं क्षणों में गुजर रहे हैं? मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर चीख पड़ना चाहती हूं नहीं नहीं ....नहीं।"[8]

परिवार के केंद्र में पुरुष धीरे–धीरे छूटता जा रहा है। स्त्री उस स्थान को प्राप्त करती जा रही है। घर के बीच उसी का अनुशासन चलता है। पुरुष भी उसकी शक्ति मानकर चलता है। परिवार के बीच स्त्री की स्थिति का अवलोकन मन्नू भंडारी के कहानी संग्रह "मैं हार गई" की कहानी "सयानी बुआ" के अंतर्गत किया जा सकता है :– "पर मैंने देखा कि परिवार के सभी लोगों पर एक विचित्र आतंक–सा छाया हुआ है– सब पर मानो बुआ जी का व्यक्तित्व हावी है। सारा काम, वहां इनकी व्यवस्था से होता, जैसे सब मशीनें हो, जो कायदे में बंधी, बिना रुकावट अपना काम किया करती हैं। ठीक पांच बजे उठ जाते, फिर एक घंटा बाहर मैदान में टहलना होता, उसके बाद चाय– दूध होता। उसके बाद अन्नू को पढ़ाने के लिए बैठना पड़ता था। भाई साहब भी तब अखबार और ऑफिस की फाइलें आदि देखा करते। नौ बजते ही नहाना शुरू होता। जो कपड़े बुआजी निकाल दें वही पहनने होते, फिर कायदे से आकर मेज पर बैठ जाओ और खाकर काम पर जाओ।"[9]

सामान्य जीवन में स्त्री चौतन्य एवं आधुनिकता ने स्त्री जीवन एवं उसकी सोच को एक नई दिशा दी है। पतिव्रत का मिथ वह तोड़ चुकी है। पति के प्रति उसकी देवत्व की भावना खंडित हो चुकी है। उसमें पुरानी आस्था डगमगाने लगी है। बराबर के स्तर पर व्यवहार चाहती है। परिवार के बीच किसी का वर्चस्व या हस्तक्षेप उसे सहन नहीं है। प्राचीन व्यवस्था के प्रति उसका मोहभंग हो चुका है।

मन्नू भंडारी की 'क्षय' कहानी की कुंती स्कूल में अध्यापिका है। कुंती परिवार की जिम्मेदारियों में टूटती

207

हुई स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। वह आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी है किंतु उस पर परिवार का बोझ भी है। वह घर में सबसे बड़ी है। उसके पापा क्षय रोग से ग्रस्त हैं और छोटा भाई स्कूल पढ़ने जाता है। पापा और भाई की जिम्मेदारियों के कारण उसे नौकरी से अलग ट्यूशन भी करनी पड़ती है। वह घर की जिम्मेदारियों से काफी दुखी हो जाती है। वह घर की जिम्मेदारियों को लगातार निभाती है, अपनी खुशियों का त्याग करती है और यहां तक की जिम्मेदारियों के दबाव के कारण वह कह उठती है 'हे भगवान! अब तो तू पापा को उठा ले। मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। मैं टूट चुकी हूं...।'

इस तरह कुंती आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन होने पर भी पराधीन बनी रही। जहां भारत में बेटियों की कमाई खाना बुरा समझा जाता था आज उसी बेटी को स्वयं कमाकर पारिवारिक जिम्मेदारियों को भी निभाना पड़ा है।

मन्नू भंडारी की कहानी 'नई नौकरी' की रमा अर्थ की दृष्टि से स्वाधीन होने पर भी पति की इच्छाओं के कारण नौकरी का परित्याग कर देती है किंतु उससे वह घुटन, पीड़ा और व्यथा की शिकार हो जाती है। इससे वह ना तो अपने अतीत के स्वावलंबी रूप को भूल पाती है और ना ही वर्तमान में जीवन जी पाती है। इसी कारण वह अकेलेपन की अनुभूति का शिकार हो जाती है, और पति–पत्नी के संबंधों में दरार पैदा हो जाती है।

आर्थिक स्वावलंबन की दृष्टि से स्त्री के रूपों के आयामों को दो तरह से देखा जा सकता है। एक पति–पत्नी एवं पारिवारिक संबंधों में आए तनाव एवं द्वंद के माध्यम से और दूसरे स्त्री के व्यक्तित्व पर पड़े प्रभाव के माध्यम से। पति–पत्नी एवं पारिवारिक संबंधों के बदलाव को उजागर करने वाली उषा प्रियंवदा की कहानी है 'दो अंधेरे'।

'दो अंधेरे' कहानी की सुमित्रा आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन स्त्री के साथ–साथ अपने परिवेश में भी अपने को आत्मनिर्भर अनुभव करती है। सुमित्रा नौकरी करती है और अकेली रहती है। उसका शंकर से प्रेम संबंध है। वह शंकर से शादी करना चाहती है। वह इससे भी संतुष्ट है कि उसकी शादी उस तरह से नहीं होगी जैसी ना कमाने वाली लड़की की होती है। इसलिए वह स्वयं सोचती है :– "उसमें जीत केवल सुमित्रा की अपनी जीत होगी, वह वर को दिखाई नहीं जा रही है। आज उसके लिए पिता कुछ चिंतित, कुछ दीन स्वर में यह नहीं पूछेंगे' आपको लड़की पसंद आई'?"[10]

उषा प्रियंवदा की कहानी 'जिंदगी और गुलाब के फूल' की वृंदा भी आर्थिक स्वावलंबन के कारण स्वच्छंद और स्वतंत्र जीवन जीती है। आर्थिक स्वाधीनता के कारण ही उसका घर में आत्मसम्मान बढ़ जाता है। उसका भाई पहले कमाता था किंतु उसकी नौकरी छूट जाती है और वृंदा पर पूरे घर की जिम्मेदारी आ जाती है। इस कारण वह भाई के प्रति प्रेम नहीं रखती।

उसका व्यवहार (वृंदा का) ठीक वैसा ही हो जाता है जैसा कि आम भारतीय परिवार में लड़के का होता है। लड़का कमाता है और घर वालों पर रौब भी जमाता है। वृंदा भी ऐसा ही करती है। बेटी के भीतर आर्थिक–स्वावलंबन के कारण यह बदलाव आया है। वृंदा अपने भाई के संबंध में कह देती है 'काम ना धंधा' तब भी दादा (भाई) से यह नहीं होता कि ठीक वक्त पर खाना खा ले। तुम कब तक जाड़े में बैठी रहोगी, मां? उठाकर रख लो, अपने आप खा लेंगे।"[11]

आजादी के बाद बदले परिवेश ने स्त्री को शिक्षित, व्यक्तित्व संपन्न, आत्मनिर्भर तथा अपने अस्तित्व के प्रति सजग बना दिया है। अब वह पति द्वारा प्रताडित होकर या उपेक्षापूर्ण जीवन जीने को तैयार नहीं। अगर

208

पति या पुरुष अपनी मर्जी से सुखों की तलाश कर सकता है तो वह भी कर सकती है या जीवन को सुरक्षित रख सकती है। स्त्री को केवल भोग्या नहीं मानना चाहिए उसके बदले अपने अस्तित्व के प्रति सजग नारी के रूप में तथा स्वस्थ और साहसी निर्णय लेने वाली सबल स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। इस आलेख के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के आई.ओ.ई. परियोजना का सहयोग प्राप्त हुआ। जिसके लिए हम विश्वविद्यालय के प्रति आभार प्रकट करते हैं।

संदर्भ सूची :-

1. साठोत्तरी हिंदी कहानी और महिला लेखिकाएं, डॉ. विजया वारद, विकास प्रकाशन, कानपुर संस्करण, 1993, भूमिका, पृष्ठ 2
2. नई कहानियों में स्त्री मुक्ति, डॉ. पूनम, इंदु प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 86
3. स्त्री मुक्ति का सपना – प्रो. कमला प्रसाद (सं), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2005, पृष्ठ 107–108
4. प्रभा खेतान, छिन्नमस्ता, सरस्वती विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1991, पृष्ठ 117
5. स्त्री – विमर्शवादी उपन्यास : सृजन की संभावना, योजना रावत, लोकवाणी संस्थान, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ 23
6. सूरजमुखी अंधेरे में, कृष्णा सोबती, राजकमल पेपर बैक्स, पृष्ठ 56
7. कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 91
8. मन्नू भंडारी, यही सच है, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1966, पृष्ठ 74
9. कृष्ण कांता भारद्वाज, आधुनिक हिंदी कहानी : नारी जीवन मूल्य, अनंग प्रकाशन, संस्करण 2009, पृष्ठ 72
10. उषा प्रियंवदा, जिंदगी और गुलाब के फूल (कहानी संग्रह), दो अंधेरे (कहानी), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण, 1961, पृष्ठ 97
11. उषा प्रियंवदा, जिंदगी और गुलाब के फूल (कहानी संग्रह), दो अंधेरे (कहानी), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण 1961, पृष्ठ 148

203 Pr.

Scanned with CamScanner

प्रोफेसर रामदरश मिश्र

(सरस्वती सम्मान से सम्मानित व्यक्तित्व)

(संरक्षक)

INTERNATIONAL PEER- REVIEWED(REFEREED) JOURNAL

RNI (UPHIN/2021/80567)

साहित्य मेघ

ISSN: 2583 - 5750

(साहित्यिक हिंदी मासिक)

प्रकाशन का आरंभिक वर्ष/माह : अप्रैल २०२१/ वर्ष २, अंक ९ , सितम्बर२०२२

सम्पादक मण्डल

भारत

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह
opsingh@mail.jnu.ac.in
विभागाध्यक्ष भारतीय भाषा केन्द्र,
जे.एन.यू.नई दिल्ली
M:(९८९९४४६८६१)

प्रोफेसर चन्द्रदेव यादव
cyadav@jmi.ac.in
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,जामिया मिल्लिया इस्लामिया,नई दिल्ली
M: (९८१८१५८७४५)

प्रोफेसर जितेंद्र श्रीवास्तव
jksrivastava@ignou.ac.in
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
इंदिरा गांधी ओपन विश्वविद्यालय (इग्नू),
नई दिल्ली M:9818913798

प्रोफेसर राज कुमार
M:09415201281
drrajkumar@bhu.ac.in
हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय ,वाराणसी

प्रोफेसर प्रभाकर सिंह
(9450623078)
prabhakarhindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर,हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

श्रद्धा सिंह ९४१५५३०५८७
shraddha.singh@bhu.ac.in
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ.आभा गुप्ता ठाकुर (9450960955)
abhag.hindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

डॉ.गाजुला राजू (9059379268)
raju.g@allduniv.ac.in
सहायक प्राध्यापक,हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

डॉ.जनार्दन 9026258686
janardan@allduniv.ac.in
(सहायक प्राध्यापक)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

डॉ. विजय कुमार रविदास
bkrabidas@allduniv.ac.in
9432345604
सहायक आचार्य हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

विदेश

प्रोफ़ेसर उल्फत मुखीबोवा
ulpatxon_muxibova@tsuos.uz
M:998946443037
Tashkand State University of Oriental Studies, Tashkand,Uzbekistan

प्रोफेसरग्युज़ेल स्त्रेलकोवा
str@iaas.msu.ru.
M: +79199933635
एशिया और अफ्रीकी देश अध्ययन संस्थान,मास्को राजकीय विश्वविद्यालय,मास्को

Farzaneh Azam Lotfi
f.azamlotfi@ut.ac.ir
Associate Professor
Department of foreign languages
University of Tehran,Iran

187

Scanned with CamScanner

साहित्य मेघ

sahityamegh.com

नवम्बर २०२२ /वर्ष:२,अंक:११

डॉ. दानिश (९६९६४८६३८६)
प्रधान संपादक
डॉ.तबस्सुम जहां (९८७३१०४११०)
उप-संपादक (अवैतनिक)

नवम्बर २०२२ / वर्ष:२,अंक:११
एक प्रति : १५०/-, वार्षिक : १५००/-
BANK DETAIL : IFSC CODE : UBIN0530371
MOHD SALEEM UNION BANK, CIVIL LINES, PRAYAGRAJ

डॉ.राजविंदर कौर (९७५९९१२४३४)
सह-संपादक (अवैतनिक)
श्रीमती एस.के.'सुमन' (९१७०६८०२३५)
आर्थिक सलाहकार
डॉ.मुहम्मद सलीम (संपादक) (९९१९१४२४११)
sahityamegh@gmail.com
४८३,अटाला,प्रयागराज-२११ ००३
उत्तर प्रदेश,भारत

युगानुसरण की प्रवृत्ति और मैथिलीशरण गुप्त
ओमप्रकाश सिंह ५
प्रेमचंद के 'पत्र-साहित्य' की निश्छलता
प्रो.डॉ. राम आह्लाद चौधरी १२
हरिऔध के काव्य में नारी
'प्रो० अशोक सिंह
डॉ० अपराजिता मिश्रा २३
२१वी सदी की हिन्दी कविता में हाशिये उलांघती स्त्रियों के स्वर
डॉ. प्रियंका सोनकर २६
'रूकती नही है नदि' -एक अद्धयन
डॉ.रंजीत एम् ३३
'स्त्री मुक्ति की अवधारणा और नई कहानी आन्दोलन'
डा स्नेह लता नेगी ३९
हिन्दी में शोध की समस्याएं'
डॉ. विजय कुमार रविदास ४४
मुक्तिबोधः संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदना
डॉ.अर्चना पाण्डेय ४८
सर्जक की आस्था और विवेक का विवेचन
डॉ. शम्भु नाथ मिश्र ५२
"संजीव के कहानियों में हाशिये के समाज का यथार्थ चित्रण"
सपना पाठक ५६
'समकालीन कविता में चंद्रकांत देवताले का मानवीय सरोकार'
ज्योति गिरि ५९
बोलने वाली औरत' कहानी में पितृसत्ता के वर्चस्व की अभिव्यक्ति
सिमरन ६६
विषयः पंजाबऔरहरियाणाप्रांतमेंकठपुतलीपरंपरा- एक अध्ययन।
डॉ हनीफ भाटी ७०
तीसरी ताली' उपन्यास में चित्रित एलजीबीटी
सीमा कुशवाहा ७३
माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हिंदी पाठ्यपुस्तकों
और शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के प्रति शिक्षकों की अवधारणाः एक अध्ययन
प्रो लालचंद राम ७९
साहित्य अकादेमी समाचार ९९

188

Scanned with CamScanner

'स्त्री मुक्ति की अवधारणा और नई कहानी आन्दोलन'

डा स्नेह लता नेगी

एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग ,दिल्ली विश्वविद्यालय
डा सरोज कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, विवेकानन्द कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय

सीमोन द बोउवार ने बहुचर्चित पुस्तक 'स्त्री उपेक्षिता' में लिखा है कि आदिम मातृसत्तात्मक समाज में गर्भ धारण में पिता की कोई विशिष्ट भूमिका नही मानी जाती थी, बल्कि यह माना जाता था कि पूर्वजों की आत्मा जीवित बीज के रूप में मातृ गर्भ में प्रवेश कर जाती है। पितृसत्तात्मक संस्थाओं के विकास के साथ पुरुष अपनी संतति के लिए अपने अधिकार का दावा करने को आतुर हो उठा'१

राहुल सांस्कृत्यायन की 'वोल्गा से गंगा' में संकलित कहानियों में इस बात के पुख्ता सबूत मिलते हैं कि पूर्व में स्त्रियां अधिक स्वतन्त्र थी, पूर्णरूप से मुक्त थी, वे किसी एक पुरुष के अधीन नहीं, उन्हें अपना अस्थायी प्रेमी बनाने का अधिकार था।

राहुल सांस्कृत्पात्यन के अपनी कहानी 'अमृताश्व' जिसमें ३००० ई. पू. की कथा है। उस कहानी में यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि अतिथियों और मित्रों के पास स्वागत के रूप में अपनी स्त्री को भेजना उस वक्त का सर्वमान्य सदाचार था। अमृताश्व कहानी की प्रमुख पात्र है 'सोमा'। इस कहानी का एक अंश है 'ऋजाश्व भी उसके प्रेमियों में था। उस वक्त सोमा को चाहने वालों की होड़ लगी थी, किन्तु जयमाला कृच्छाश्व को मिली। दूसरों के साथ रिजाश्व को भी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। अब सोमा कृहाश्व की पत्नी है, किन्तु उस जिन्दादिल युग में स्त्री ने अपने पुरुष की जंगम सम्पत्ति होना नहीं स्वीकार किया था, इसलिए उसे अस्थायी प्रेमी बनाने का अधिकार था। आज वस्तुतः सोमा ऋजाश्व की रही।२ स्त्री स्वातंत्र्य के इस सकारात्मक पहलू को स्त्रीमुक्ति का मानदण्ड माना जा सकता है। स्त्री किसी एक पुरुष की सम्पति नही थी, वह शारीरिक और मानसिक रूप से स्वतन्त्र, स्वच्छंद और उन्मुक्त थी। इसी कहानी की एक अन्य स्त्री पात्र है-मधुरा। मधुरा वो पात्र है जिसके माध्यम से उस समय की स्त्री की सामाजिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। अमृताश्व मधुरा से कहता है 'तुम्हें पता है ऐसे भी जनपद है जहां स्त्रियां दूसरे की नही, अपनी होती है।नही समझी अमृताश्व उन्हें कोई लूटता नही, उन्हें कोई सदा के लिए अपनी पट्टी नही बना पाता। वहां स्त्री-पुरुष समान होते है। समान हथियार चला सकते है।' हां स्त्री स्वतंत्र है, कहां है वह जनपद यहां से पश्चिम में बहुत दूर है 'वहां स्त्री किसी की पट्टी नही उसका प्रेम स्वच्छंद है ' तो वहाँ कोई बाप को नहीं जानता? सारे घर के पुरुष बाप है।'यह कैसा रिवाज़ है? इसीलिए वहां स्त्री स्वतंत्र है वह योद्धा है शिकारी है।३

इस कहानी के इन संवादों में यह स्पष्ट है कि पूर्व की स्त्रियां पुरुषों के साथ सामूहिक रूप में रहती थी, आज उन्हें किसी एक पुरुष रूप की निजी सम्पत्ति बनकर उसके संरक्षण और नियमों के अधीन रहना होता है।इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी कोख से जन्म लेने वाले बच्चे अपने को पहचानने लगे धीरे-धीरे परिवार में स्त्री के स्थान पर पुरुष प्रमुख हो गया,

189

Scanned with CamScanner

देवियों के स्थान पर देवो देवे लिखा, उदाहरण के लिए मां दुर्गा देवी की उपासना करने वाले दुर्गा को सर्व शक्तिशाली मानते हैं। दुर्गा के भक्तों का ऐसा विश्वास है कि वे उनकी सारी समस्याओं का समाधान हैं, परंतु यह क्या मां स्वयं ही गौरी के रुप में भगवान शंकर की आराधना में लीन है, अर्थ स्पष्ट है कि अन्ततः पुरुष शक्ति ही प्रमुख है, स्त्री उसके अधीन है। मूर्ति पूजा में विश्वास रखने वाले लोगों की भक्ति भावना का एक साधारण उदाहरण है। प्राचीन काल से ही स्त्री पुरुष वर्चस्व के सम्बन्ध में अनेक उदाहरण मानव इतिहास के पन्नों में बिखरे पड़े है। मानव सभ्यता के आदिम युग में धरती के विकास की प्रक्रिया से होकर गुजर रही थी तब परिवार और समाज में स्त्री की सत्ता थी। किन्तु मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ परिवार, समाज, धर्म, राजनीति और अर्थ की सत्ता पर पुरुष का अधिकार हो गया, आज परिणामतः स्त्री पुरुष के अधीन है, पूर्व में स्त्री घर की संचालिका थी, पुरुष उस संचालिका का मुनीम, सहायक या सेवक था, किन्तु मानव सभ्यता के आए विभिन्न परिवर्तनों के चलते वही सेवक शासक बन गया।

भारतीय परिवारों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था सदियों से चली आ रही है। इस व्यवस्था में वंश का नाम पिता के नाम से बढ़ता है, स्त्री का कार्य घर संभालना एवं पुरुषों का कार्य अर्थोपार्जन करके परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करना है। कृष्णदत्त पालीवाल ने 'नारी विमर्श की भारतीय परम्परा में लिखा है- 'नर-नारी के कार्य एवं स्थितियों में भिन्नता होने के कारण उनकी विभिन्न विशेषताएं उनके व्यक्तित्व में व्यक्तिगत रूप से झलकने लगती है, चूंकि व्यक्तित्व इन सभी विशेषताओं का मिश्रण है'४ स्त्रियां बाहरी धरातल पर पुरुषों से थोड़ा श्रेष्ठ होती है किन्तु आंतरिक धरातल में पुरुषों से कहीं अधिक बलशाली। उनके प्रजनन की क्षमता में विभिन्न मानवीय गुणों जैसे दया, ममता, करुणा, प्रेम आदि विशिष्ट रूप से पाए जाते हैं। हिन्दू धर्म की पौराणिक परम्परा के अनुसार संतान पर जन्मदात्री से ज्यादा अधिकार पुरुषों का होता है और इस सत्ता हस्तान्तरण को भारतीय धर्म परम्परा से जोड़ दिया गया है। धर्म वास्तव में सत्ता और सामंतो द्वारा नही अपितु स्वयं के हित में शासन करने का तरीका है- सुप्रसिद्ध इतिहासकार विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े ने लिखा है - 'धर्म का उद्भव मानव विकास यात्रा के साथ हुआ जिसमें भगवान की कल्पना की गई ताकि शासन करने मे बाधा न आए।५ भगवान की अवधारणा ने स्त्रियों को अधिक धार्मिक बना दिया, मन्दिरों, मठों में पुजारी, पुरोहित संकटमोचन बन बैठे, स्त्रियां उनके दिशा निर्देशन में अधिक उपासना करने लगी, परिणामतः उन्हें देवता की उपाधि मिल गई और स्त्रियों को देवदासी की।

पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की चाह १६ वी शताब्दी में मीराबाई के पदो में लक्षित होने लगी, जब वे लिखती है - छाडि दई कुकी कानि,कहा करै कोई।

संतन ढिग बैठि बैठि लोकलाज खोई।।

मीरा की इन पंक्तियों में पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की चाह स्पष्ट है। स्त्री मुक्ति की अवधारणा के केन्द्र में स्त्री-देह, वैचारिता, आर्थिक स्वावलंबन है। स्त्री मुक्ति की अवधारणा भिन्न-भिन्न कालावधियों में भिन्न-भिन्न रही है। विभिन्न सामाजिक मुद्दो मे स्त्री मुक्ति ही एक ऐसा मुद्दा है जिसे स्त्री और पुरुष दोनों वर्गों का समान सहयोग कभी नही मिला। गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा आदि मुद्दे समाज के प्रत्येक वर्ग के द्वारा उठाए जाते रहे है।

किन्तु स्त्री मुक्ति एवं स्त्री स्वतंत्र्य का मुद्दा केवल स्त्रियो के द्वारा ही उठाया जाता रहा है। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता मिली, विभिन्न शासनिक/ प्रशासनिक पदों पर कार्य की स्वतंत्रता मिली, लिखने की स्वतंत्रता मिली। उसे हर वह स्वतंत्रता मिली जो व्यक्ति को मिलनी चाहिए। नही मिला तो निर्णय लेने का अधिकार, हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी का दर्जा। परिवार में स्त्री का आधिपत्य समाज को स्वीकार्य नही।

190

Scanned with CamScanner

स्त्रियों को इसी तरह के अधिकार प्रदत्त करने के लिए बाबा साहेब ने हिन्दू कोड बिल पारित कराने का प्रयास किया। 'भारतीय समाज व्यवस्था में स्त्री दलितों से भी दलित है। इस व्यवस्था ने न केवल उसकी अस्मिता को नकारा है अपितु हमेशा दोयम दर्जा दिया है। ज्ञान क्षेत्र से लेकर धर्म क्षेत्र तक उसका प्रवेश वर्जित था। हजारों वर्षों से यह स्त्री उपेक्षिता का जीवन जी रही थी।... उन्होंने भारतीय समाज के सामने हिन्दू कोड बिल के रूप में नारियों की मुक्ति का टैसटामेंट बनाकर रखा था। उसके पास न होने पर उन्होंने भारत सरकार के प्रथम कानून मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया था। देखा जाए तो नारी ब्राह्मणी वर्ण व्यवस्था को जड़ सेष्ठष्ठदेता है और शूद्र नारी की तुलना में समान दर्जे पर लाकर ही अपने मन का सुख पाता है।'६

वैदिक काल में स्त्री और पुरुष को समान अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को वेदाध्ययन, भजन, पूजन, जप-तप, अध्ययन आदि की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। वे पुरुषों से पर्दा नहीं करती थीं अपितु ज्ञान-अध्ययन में बराबरी से हिस्सा लेतीं। अपने जीवनसाथी का वरण स्वयं करती यदि कोई स्त्री विधवा हो जाती तो उसे पुनर्विवाह का अधिकार था। कालांतर में स्त्री पुरुष विभेद मानव सथाता के विकास के साथ बढ़ता ही गया। रामायण और महाभारत जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में स्त्री-पुरुष के पुख्ता उदाहरण मिलते हैं। रामायण के प्रमुख पात्र गुरु वशिष्ट की पत्नी अरुंधति आचार्या थीं, विभिन्न विषयों की ज्ञाता थी तथा अध्यापन भी करती थीं। कौशल्या उच्च कोटि की विदुषी थी, वेदसूत्र की ज्ञाता थी। माता कुंती को अथर्ववेद कंठस्थ था तथा द्रोणाचार्य की पत्नी गौतमी को गुरु द्रोण के समान विभिन्न विषयों का ज्ञान था। मैत्रयी, गार्गी जैसी विदुषियां हमारी भारतीय परम्परा की वे स्त्रियां थी जिन्हें पुरुषों के समान समस्त ज्ञान-विज्ञान, वेद पुराणो का अध्ययन तथा तर्क-वितर्क की समझ थी । महाभारत काल के बाद स्त्रियों के अध्ययन की सुविधाओं में कमी के कारण धीरे-धीरे स्त्रियां इस क्षेत्र में कमजोर होती गई। बौद्ध और जैन प्रर्वतकों ने स्त्रियों के प्रति लचीलापन अपनाते हुए उन्हें क्रमोवेश धार्मिक अधिकार प्रदान किए इसी के परिणाम स्वरुप बौद्ध भिक्षुणियों का आविर्भाव हुआ। विदुषियों को जिन्हें बौद्ध भिक्षुणियां कहा गया उनके ज्ञान के स्तर के आधार पर आचार्य, अर्हता और सिद्धा की पदवी दी गयी। कुल मिलाकर जैन और बौद्ध धर्मावलंबियों ने पुरुष और स्त्री के भेद को मिटाने का कार्य किया। जैन धर्म में स्त्री और पुरुष को समानधर्मी माना गया है। डॉक्टर रमणिका गुप्ता ने लिखा है- 'नारी के विषय में महावीर का दृष्टिकोण बुद्ध की अपेक्षा अधिक उदार था। उन्होंने नारियों को दीक्षा देने में तनिक संकोच नहीं किया। जैन धर्म में साध्वियों को साधुओं से हीन नहीं माना गया। दीक्षा लेने के बाद साधुओं और साध्वियों के लिए भिक्षा,ष्ठष्ठ ,भाषण, अभिवादन आदि के विषय में समान नियम थे। सम्भवतः यह एक कारण था कि जैन धर्म के अनुयायियों में पुरुषों की उपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक थी।'७

मध्यकाल स्त्री सशक्तीकरण का काल था जिसे भक्त और सन्त कवि परम्परा ने ओझल कर दिया। बहुत सी ऐसी विदुषियां थी जिनका नाम इतिहास के पन्नों से उड़ा दिया गया। ष्ठष्ठ आंडाल, तमिल भाषा की प्रथम भक्त कवयित्री थीं। तमिल भाषा में लिखित ष्ठष्ठष्ठष्ठष्ठ प्रमुख दो ग्रंथ मिलते हैं। अव्वई भी तमिल की महान कवियत्री थी, उन्होंने रहीम के समान नीतिपरक काव्य की रचना की। प्राकृत और संस्कृत में प्रभुदेवी, मदालसा, ष्ठष्ठष्ठ, शिला जपत्ती देवी आदि मराठी भाषी कवियत्रियां हैं तथा कश्मीर की लल्लेश्वरी, उड़िया की माधवी देसाई तथा हिन्दी ब्रजभाषा की मीराबाई प्रवीणराय की श्रृंगार परक तथा मांसल कविताएं बहुत ही सार्थक हैं। मध्यकाल में मुगलों के आगमन से स्त्री ज्ञान परम्परा मे जैसे ग्रहण लग गया। उन्हें हिन्दुत्व के नकाब पहनाकर घर की चाहरदीवारी के भीतर कैद करके ज्ञान, अध्ययन और अध्यापन आदि सभी तरह के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

191

Scanned with CamScanner

वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है-वैदिक समाज व्यवस्था में गृहस्थ कुटुम्ब का बहुत महत्व है और विवाह समाज की रचना मूल षष्ठ है। स्त्री आर्थिक दृष्टि से कहीं भी स्वतन्त्र नहीं और न ही उसे अपनी रक्षा की चिन्ता करनी पड़ती है, क्योंकि कुमारी अवस्था में पिता,विवाहित अवस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र स्त्री की रक्षा करते हैं, स्त्री स्वातंत्र्य की अधिकारिणी नहीं होती।'८ पितृसत्ता की अवधारणा ने स्त्री को पुरुष की वैयक्तिक सम्पत्ति बना दिया। पीढ़ी दर पीढ़ी पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने स्वयं को स्त्री के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया और स्त्री धर्म रुपी षष्ठ जामा पहनकर उसे पुरुष के अनुसार रहने को बाध्य कर दिया। धार्मिक व्यवस्था में स्त्रियों और शूद्रों के लिए अलग नियम बनाए गए जिसमें स्त्रियों की शक्ति दिन ब दिन क्षीण होती चली गयी। यह धार्मिक और सामाजिक परम्परा आज भी जारी है।

आधुनिक युग स्त्री सशक्तीकरण का युग है, इसी युग में राजाराम मोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, पंडिता रमाबाई, महात्मा गांधी जैसे सुधारको ने स्त्री की शिक्षा व्यवस्था की ओर एक मजबूत कदम बढ़ाया, स्त्री के जीवन से जुड़ी बहुत सी परम्पराओं और रीतियों को सिरे से बन्द करने का प्रयास किया, उसके अधिकारों को दिलवाने के लिए संघर्ष किया। साहित्य में भी स्त्री सशक्तिकरण की प्रतिध्वनि विभिन्न विधाओं में सुनाई देने लगी।

नई कहानी आन्दोलन की शुरुआत यशस्वी संपादक भैरव प्रसाद गुप्त के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'नई कहानियां' से मानी गई है। यह पत्रिका नई कहानी आदोलन के लिए मील का पत्थर साबित हुई। इसी पत्रिका में डा. नामवर सिंह ने 'हाशिए पर' नाम से जो लेख लिखें,टिप्पणियाँ लिखीं उन्होंने नई कहानी की अवधारणा को एक मजबूत पहचान दी। इस विषय पर एक नई बहस छिड़ गयी, जिसमें हिन्दी के तत्कालीन कहानीकारों ने बहुत ही रुचिकर भूमिका निभायी। उसी समय ६ वें दशक में इलाहाबाद में साहित्यकारों का जो उसमें इस विषय को एक स्वीकृत नाम दिया -'नई कहानी'

कमलेश्वर ने लिखा है, -'सन् ५० के आसपास की कहानी से सन् ६५ की कहानी बदल गई है और यह प्रक्रिया ही नई कहानी की मौलिक और आधारभूत शक्ति और विविधता ही उसका वास्तविक स्वरूप है।

नई कहानी का नामकरण डॉ. नामवर सिंह ने 'कहानी' (जनवरी-५६) पत्रिका में प्रकाशित अपने लेख 'आज की हिन्दी कहानी' में किया और यह प्रश्न उठाया कि 'नई कविता' की तरह नई कहानी नाम कोई है क्या? लेकिन जब कहानी को 'नई कहानी' की संज्ञा दी गई तो स्वाभाविक रूप से प्रश्न सामने आया- आखिर नई कहानी का स्वरूप क्या है?

कमलेश्वर ने इस प्रश्न का सही उत्तर दिया– 'सर्जनात्मक साहित्य में जो कुछ व्यर्थ है उसे छांटते जाने की दृष्टि ही नई कहानी की वास्तविक प्रक्रिया है। इसलिए नया शब्द न विशेषण है और न संज्ञा, वह मात्र उस प्रक्रिया का द्योतक है जो सतत प्रवाहमान है।'१०.

नई कहानी आन्दोलन के विषय में गम्भीरता से बात से की जाए तो नई कहानीकारों ने मानवीय सम्बन्धों में आए परिवर्तन को नई दृष्टि से देखा, उन्हें अनुभव किया और अपनी अनुभव जन्य वेदना और पीड़ा को अभिव्यक्त किया। स्त्री रचनाकारों के यहां इसकी सशक्त अभिव्यक्ति लक्षित होती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में १९९४ से ही स्त्री के प्रति किसी भी तरह की हिंसा को शारीरिक लैंगिक या मनोवैज्ञानिक प्रताड़ना घोषित कर दिया था, स्त्रियों को भी पुरुषों के समान स्वतन्त्र जीवन जीने का अधिकार है। दहेज उत्पीड़न के अलावा, भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा के तरह-तरह के मामले स्त्री समाज की विभीषिका बन

192

Scanned with CamScanner

चुके हैं।

नई कहानी आन्दोलन में स्त्री रचनाकारों ने इस मुद्दे को केन्द्र में रखकर अनेक सवाल खड़े किए और केवल सवाल ही नही खड़े किए अपितु पुरुष के साम्राज्यवादी आवरण को फाड़कर स्त्री अपने अस्तित्व के लिए अकेली आगे बढ़ी।

मन्नू भण्डारी की कहानी 'ऊँचाई' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कहानी है, इस कहानी की प्रमुख पात्र शिवानी, जो एक ही समय में पत्नी भी है और प्रेमिका भी। वह कहती है यदि शादी-शुदा पुरुष पत्नी के अतिरिक्त किसी दूसरी स्त्री से सम्बंध रख सकता है तो स्त्री क्यों नही। स्त्री अपवित्र कैसे हो सकती है।

उनकी कुछ अन्य कहानियां- बंद दरवाजों के साथ, एक और बार, दीवार, बच्चे और दीवार, हार, कमरा और कमरे आदि में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व का चित्र मिलता है, जहां स्त्री पारिवारिक, सामाजिक रुकावटों को किनारे रख. हुए अपना रास्ता खुद बनाती है। पुरुष द्वारा कर्तव्य परायणता और पति प्रेम के जाल से बाहर आकर अपने जीवन का निर्धारण स्वयं ही करती है। कृष्णा सोबती वरिष्ट रचनाकार हैं, उनका समूचा कथा साहित्य स्त्री विमर्श का नया इतिहास रचता है। उनका उपन्यास 'कठगुलाब' स्त्री रचनाकारों द्वारा लिखे साहित्य का सर्वाधिक बोल्ड दस्तावेज है। उन्होंने कहानियां बहुत कम लिखी किंतु जितनी भी लिखी, उन्होंने नई कहानी आंदोलन की कहानी त्रयी-मन्नू भण्डारी, उषा प्रियम्वदा और कृष्णा सोबती ने लगभग आधी सदी को अपने लेखन में समेट लिया है।

'एक दिन' कहानी द्विपत्नीवाद की समस्या को उजागर करती है। बहनें, बदली बरस गई आदि कहानियां स्त्रियों के विभिन्न पारिवारिक और सामाजिक सरोकारों के साथ लिखी गई हैं। ऊषा प्रियम्वदा इस कहानी त्रयी की महत्वपूर्ण लेखिका है । प्रियम्वदा के स्त्री पात्र कृष्णा सोबती की कहानियों के स्त्री पात्रों से अधिक सशक्त है। ऊषा प्रियम्वदा की स्त्रियों ने संघर्ष करना सीखा है। रूढ़िवादिता के पारम्परिक कलेवर से बाहर निकलकर वे अपना रास्ता स्वयं चुनती है। उनकी एक प्रमुख कहानी है 'मान और हठ' इस कहानी की पात्र अमृता एक स्वाभिमानी स्त्री है। वह अपने पति के किसी दबाव को स्वीकार नही करती है। वह पितृसत्ता को चुनौती देती है और भविष्य स्वयं गढ़ती है। इसी तरह तुफान के बाद, संबंध, प्रतिध्वनि, आधा शहर नई कहानी आंदोलन को नया आयाम देती हुई कहानियाँ है, जिनमें स्त्री मुक्ति के अनेक प्रश्न अवगुंठित है।

संदर्भ- १,स्त्रीः उपेक्षिता, सीमोन द बाउवर, पृ०सं० ३३

२. वोल्गा से गंगा, राहुल सांस्कृत्यायन, पृ०सं०४७

३. वही - पृ० ४७-४८

४. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ० १५२-१५३

५. भारतीय विवाह संस्था का इतिहास, विश्वनाथ काशीनाथ, राजवाड़े, पृ.२७

६. सीमान्तनी उपदेश लेखिका एक अज्ञात हिन्दू औरत,सं० धर्मवीर, पृ.११

७. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.१५२-१५३

८. वाग्धारा,वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ.५५

९. नई कहानी भी भूमिका,कमलेश्वर, पृ.४३

१०. वही

डा स्नेह लता नेगी, एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग ,दिल्ली विश्वविद्यालय

डा सरोज कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग, विवेकानन्द कालेज दिल्ली विश्वविद्यालय

193

Scanned with CamScanner

शोध-ऋतु

Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

Open Transparent PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE-31 **VOLUME-4** ISSN-2454-6283 **Jan.-March.–2023**

IMPACT FACTOR - **(IIJIF-8.712)** **(COSMOS– 2019-4.649)**

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक

डॉ.सुनील जाधव ,नांदेड

9405384672

तकनीकी सम्पादक

अनिल जाधव, मुंबई

पत्राचार हेतु पता–

महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड-431605

210

Scanned with CamScanner

–डॉ.शुभ चंद्र झा..........48
18.योजना काल में पूर्वी उत्तर प्रदेश की औद्योगिक कार्य–नीति..........50
–सतीश कुमार..........50
19.फणीश्वरनाथ रेणु का कथा साहित्य: मानवीय संवेदनाओं का पर्याय..........52
–डॉ.सिन्धु सुमन..........52
20.नरेंद्र मोहन कृत अभंग–गाथा सामाजिक चेतना का संवाहक..........56
– [1]प्रा.अरूण वामन आहेर, [2]प्रो.डॉ.शिवाजी रामकिसन सांगोळे..........56
21.हिन्दी क्षेत्र से राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जन–विसर्जन और हिन्दी भाषा का विकास..........59
–डॉ.साधना तोमर..........59
22.आदिवासी समाज की नई संभावनाओं की ज़मीन तलाशती कविताएं..........61
–डॉ.स्नेह लता नेगी..........61
1.Multicultural Perspective of social science research..........65
-Ritesh kumar Jaiswal..........65
2.Conceptual Framework of State and Market in Kautilya's Arthasasth..........67
-Dr. Rakesh Tiwari..........67
3.Indian Society, Single Woman and Way of Living..........70
-Anil Kumar..........70
4.Blasphemy - Meaning & Concept:An Overview..........72
-Prof. Ashok Kumar Rai..........72
Head & Dean, Faculty of Law..........72
5.A Conceptual Research Study On Effect Of Traditional V/S Brain Based Learning Strategies On Academic Achievement..........76
-[1]Saloni [2]Prof. Arun Kumar Kulshrestha..........76

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

Scanned with CamScanner

22.आदिवासी समाज की नई संभावनाओं की ज़मीन तलाशती कविताएं

-डॉ.स्नेह लता नेगी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

कविता का संसार अपने आंचल में हर भाव को समाए रखता है। जैसे जैसे भाव के क्षेत्र का अतिक्रमण कर लिया गया वैसे-वैसे अकादमिक संसारों में कविता की निर्भरता के प्रति विचार बढ़ता गया। कविता ने भी ऐसी संभावनाओं का हाथ थाम कर एक नई ज़मीन की सृजना शुरू कर दी। इस ज़मीन पर उन भावों की उपेक्षा अधिक थी जो मुख्यधारा के हाशिए पर धकेल दिए गए थे। ऐसे में आदिवासी कविताएं अपनी भाषा व्यवहार परिवेश आदि सभी को अपने हाथों से निकलते हुए देख रही हैं। जहां न प्रकृति से जुड़ी कविताएं प्रकृति की गोद से प्रतीक चुनकर भाषा में जनजीवन या जीवन का संचार करती हैं। भारत के प्रतिभाशाली आदिवासी समाज में जसिंता केरकेट्टा का नाम बड़े प्रभावशाली ढंग से हिंदी साहित्य जगत अंकित हुआ है। उनका पहला कविता संग्रह 'अंगोर' 2016 में प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने आदिवासी समाज की चिंताओं और नई सभ्यता के सांस्कृतिक क्षेत्र से जुड़े द्वन्द्व से टकराते अपने प्रकृतिपूर्ण मन के बीच संघर्ष, आदिवासियों के विस्थापन व सांस्कृतिक अलगाव को अपनी भावगत चेतना द्वारा रूप दिया। उनका दूसरा कविता संग्रह 'जड़ों की ज़मीन' 2018 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं द्वारा उनका भाव जगत अकादमिक विमर्श के युग से काफी ज्यादा विस्तृत हो गया। और 2022 में 'ईश्वर और बाज़ार' काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। जसिंता केरकेट्टा के तीनों ही काव्य संग्रह देश के भीतर पल रहे प्रतिरोधी स्वर, सत्ता और तंत्र की विद्रूप चेहरों को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ अभिव्यक्त करती है। अपनी कविताओं के माध्यम से आदिवासी जीवन के राग-रंग, संघर्ष पीड़ा, राजनीति और सांस्कृतिक चेतना के फलक का विस्तार इनकी रचनाओं में मिलता है। जसिंता की कविताओं में आदिवासी जीवन समग्रता से उभर कर आया है। आदिवासी जीवन और मनुष्यता से जुड़े सवालों से इनकी कविताएं टकराती हैं और यह हमें सोचने पर विवश करती है कि आज जब हर तरफ खामोशी बढ़ती जा रही है ऐसे में चुप्पी साधना कितना घातक है ऐसे में जसिंता की कविताओं का मिजाज प्रश्नात्मक है जो एक बेहतर जनतांत्रिक समाज की परिकल्पना करती है इनकी कविताएं में मनुष्यता और विश्वास पर सवाल उठाती हैं' ईश्वर और बाजार कविता इस संग्रह में

उल्लेखनीय है –"आदमी के लिए/ ईश्वर तक पहुंचने का रास्ता/बाजार से होकर क्यों जाता है?"1

जसिंता की कविताओं से गुजरते हुए हम यह पाते है कि यहा पहचान का प्रश्न भाषा, संस्कृति, प्रकृति, परिवेश, व्यापार और स्वाभिमान से घनिष्ट रूप में जुड़ा हुआ है। हम देखते है वर्तमान में विकास व समृद्धि के चक्रवात मे फंसी यह सब चीजें अपना रंग स्पर्श सब खोती जा रही है। तथा यह प्रक्रिया इतनी तीव्र है कि पैरो के नीचे की जमीन की स्थिरता का पता नहीं चलता। इसके कारण आदिवासी समाज में जो अलगाव आया है, पुराने अर्थ की स्मृति ओझल होती गई है। परिवेश से टूटने की कसक है तथा निरंतरता से खत्म की जा रही अपनी अपनी संस्कृति व उसके चिन्हों के प्रति एक गहरा अनुराग है। जसिन्ता केरकेट्टा के इस संग्रह में हमारे सामने जो विचार सबसे पहले आता है वह है संक्रमण के इस दौर मे अपनी पहचान को बनाए रख पाने की तीव्र इच्छा से प्रेरित भाव। अपने भीतर धीरे-धीरे मरते अपने सांस्कृतिक मानव और स्वयं के व्यवहार में आ रहे परिवर्तनों के कारण एक भाव से अलगाव की कैद में आ जाता है। लेकिन जसिन्ता केरकेट्टा का सघन भाव हमे अपराध बोध की ऊपरी सतह से काफी नीचे ले जाता है। महानगरीय संस्कृति का दबाव कितना भीषण होता है उसका प्रभाव कोमलता में समाता नहीं है। वह प्रत्येक दूसरे मे से दूसरे होने की संभावना इस स्तर तक आपादित कर लेता है कि उसकी जड़ों तक से तोड़ने में लग जाता है। यही कारण है कि अलगाव भाव शून्यता अकेलापन आत्महत्या आदि सभी शहरी क्षेत्र के मुहावरे हैं। यह शहरी सभ्यताएं विकास और समृद्धि के कुचक्र में व्यक्ति को ऐसा सम्मोहित कर लेती है कि उनमें से जीवन व संस्कृति का संपूर्ण रस कहीं छूट जाता है। अपनी इस स्थिति के प्रति जब बौद्धिक स्तर पर व्यक्ति चिंता करता है तब उससे भाषा में जो व्यक्त होता है वह यही है 'किसी ने नहीं देखा मुझे' कविता में जसिन्ता लिखती है–'किसी ने नहीं देखा मुझे/सिर्फ मेरे हाथों की सफाई जानती है/मेरे गुनाह कितने बड़े हैं।'2 यहां पाठक पाता है कि यह जो गुनाह है वह, भेद संस्कृति के उस रूप की झलक है जो हर अलग लगने वाली संस्कृति को धीरे-धीरे दबाता जा रहा है। हमारे समाज में प्रभावी हो चुके इस भाव संस्कृति भक्षक आर्थिक सामाजिक ढांचे का प्रभुत्व इतना प्रबल है कि यह स्वयं से अलग हर चीज का विनाश कर देता है। आर्थिक शक्तियों की एक अधिकारी बन चुकी व्यवस्था मानवीय जीवन के हर क्षेत्र का अतिक्रमण कर जाती है। भाव और भाषा के रिश्ते भी इससे बच नहीं पाए। आदिवासी समाज की एक विशेषता भाषा परिवेश व संस्कृति के अनूठे रिश्ते भी है किंतु इस आर्थिक दबाव के समय में उनकी भाषा उनकी संस्कृति के साथ ही हाशिए पर धकेल दी गई है। स्थिति यह है कि वर्तमान की आर्थिक गोलबंदी से बचने के लिए उनके समक्ष एक ही विकल्प छोड़ा गया है वह है उनकी मातृभाषाओं का बलिदान इसके लिए एक पूरा वातावरण तैयार है। जो हर पल आदिवासियों में अभाव बनाए रखता है क्योंकि भाषाएं उपयोगिता के दायरे से बाहर है। इसी दबाव से कुंठी मानसिकता के बाद अपनी भाषा से टूटने का चित्र हमारे सामने आता है। कवियत्री ने अपनी 'मातृभाषा की मौत' में यह उतारा है– 'मां के मुंह में ही/मातृभाषा को कैद कर दिया गया/और बच्चे/उसकी रिहाई की मांग करते करते/बड़े हो गए।'3

जसिंता केवल भाषा का चित्र खींचकर ही नहीं रह जाती है बल्कि वह उस कसक की व्यंजना व्यक्त करती है जो पीड़ित ने अपनी पीड़ा की अज्ञानता के कारण उठाई है–'मां को लगता है आज भी/एक दुर्घटना थी/मातृभाषा की मौत।'4 सामान्यता अधिकतर विमर्श की कविताएं इन्हीं बाहरी तत्व तक सिमट कर रह जाती है। किंतु यहां से जसिंता एक कदम आगे बढ़कर उभरे काफी भीतर तक उसके प्रभावों को टटोलती है। इस व्यवस्था के गलियारों मे आगे बढ़ते हुए वह जब मानव मन पर पड़ी इस की घाव को देखती है और उसे अपनी भाषा में पिरो कर हमारे सामने लाती है तो वह विचार ही नहीं बल्कि भाव की गहराइयों के एक नए संसार की ओर हमें ले जाती है। स्मृति हमारे जीवन का वह स्थान है जहां परंपरा भाषा संस्कृति व परिवेश सभी के द्वारा हमें चलाया जाता है। जसिन्ता की कविताओं से हमें बोध होता है कि यह शोषणकारी व्यवस्था हमारी संस्कृति तक के भाव को सुखाने तक पर उतारू है। स्मृति से संस्कृति को खींच कर हमें भाव शून्यता की उस सीमा तक ले जाती है जहां परिवेश से जुड़ी यादें तो होती है पर उनका कोई अर्थ नहीं बचता 'यहीं कहीं इसी शहर' में कविता में वह लिखती है –'इसके अंदर दम तोड़ रही है नदियां/और अपनी स्मृतियों में/वह रख लेता है उन्हें जिंदा/ताकि अपने बच्चों की कल्पनाओं में/खींच सके कोई/जीवित रेखाचित्र किसी नदी का'5 शास्त्रवादियों की दुनिया में देखा जाता है कि किस ओर चेतना का भाव होते हुए भी इसकी ओर नजरअंदाज कर दिया जाता है। इस पक्ष के प्रति चेतना व गंभीर चिंतन की आवश्यकता है। इस समाज की उदासीनता एक विडंबना व विरोधाभास के रूप में हमारे सामने आती है।

जसिन्ता की कविताओं से गुजरते हुए हम यह महसूस कर सकते हैं कि आज के माहौल में एक विपक्ष की भूमिका निभाती मजबूत आवाज के रूप में जसिन्ता अपनी कविताओं के माध्यम से सवाल खड़ा करती है जो हमारी नजरों से ओझल हो रहे है। उनकी रचनाओं मे व्यापक दुनिया की चिंता नजर आती है जो तेजी से सिकुड़ रही है और मनुष्य के भीतर की संवेदनाओं को दफन होने से बचाने की कवायद 'जब कुछ महसूस नहीं होता' कविता मे है देखा जा सकता है। 'पहले मिट्टी पानी पेड़ मारे गए/ किसी ने कुछ महसूस नहीं किया/ जिन्हें कुछ महसूस नहीं होता/ वह बहुत पहले मर चुके होते है /बाद में वे सिर्फ दफनाए जाते हैं।'6 जसिन्ता की कविताओं मे हमारे समाज के बीच की है। धर्म, लोकतंत्र, राष्ट्र और विकास के नाम पर पैदा हो रहे विद्रूप चेहरों को देखा जा सकता है जो मनुष्यता

Scanned with CamScanner

को बचाने और व्यवस्था के साथ संघर्ष करते हुए अपने भीतर की इंसानियत और विवेक को बचाये रखने की निरंतर कोशिश है।'इंतजार' कविता में सभ्यता और इंसानियत को स्पष्ट किया है –"वे हमारे सभ्य होने के इंतजार में हैं, और / हम उनके मनुष्य होने के।"7 अपनी कविताओं में कवियित्री आदिवासी समाज को जागृत होने संघर्ष करने और आंदोलन में शामिल होने का आह्वान करती है। ताकि प्रकृति, पर्यावरण, आदिवासी भाषा, संस्कृति, जल जंगल बच सकें। कवयित्री का मानना है कि इनके लिए किए जा रहे जन आंदोलनों से ही आदिवासियों के जल–जंगल–जमीन, पहाड़ को बचाने और उनकी स्वायत्तता की रक्षा हो सकती है। इसके लिए जसिंता मुख्यधारा से भी विनम्र आग्रह करती है कि वह भी इन संघर्षों में आदिवासियों का साथ दें, आदिवासियों का भाषा संस्कृति और प्रकृति के साथ के सहचर्या के संबंध को खुली मानसिकता के साथ समझने का प्रयास करें। जसिंता की कविताएं मनुष्यता और संपूर्ण सृष्टि को बचाए रखने के संकल्प लिए हुए हैं। 'चिड़िया और आदमी' कविता में वह लिखती हैं कि "उस दिन, तूफान के खिलाफ, आदमी और चिड़िया दोनों लड़े, चिड़िया अपने टूटे घोंसले को बार–बार बनाती रही तूफान के खिलाफ, और आदमी तूफान रोक देने की जद्दोजहद में लगा, महीनों लगा रहा सालों लगा रहा सदियों लगा रहा, एक दिन तूफान रुका जश्न मना, मगर अब आदमी अपना घर बनाने का हुनर भूल गया था, चिड़िया का नया घोंसला भर जीवित बचा था।"8 'अंगोर' कविता संग्रह में शहर के लोगों के नजरिए लड़ाई–झगड़ा तथा गांव के लोगों के सद्भाव और एकतापूर्ण व्यवहार को रेखांकित किया है– "शहर का अंगार / जहां गिरता है जलाता है / फिर राख हो जाता है।/ गांव के अंगार एक चूल्हे से / जाते हैं दूसरे चूल्हे तक और / सभी चूल्हे सुलगा देते हैं।"9

यहां कवियित्री आज के समय में शहरों में पनप रहे नफरत और वैमनस्य से भरे माहौल की ओर इशारा करती है। जहां छोटी सी बात पर भी मारपीट हाथापाई और आगजनी की घटनाएं घटती हैं। अपनी कविताओं में जसिंता आदिवासी अस्मिता और उसकी पहचान को छीनने तथा उनकी भाषाओं उनकी बोलियों की और घृणित दृष्टि से देखने के कुत्सित प्रयासों का भी विरोध करती है। कवियित्री एक ओर आदिवासी पहचान और भाषा पर मंडराते खतरों की बात करती है तो वहीं औद्योगिकरण के कारण कल कारखानों और रासायनिक फैक्ट्रियों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों और खतरनाक रसायन जो नदियों में मिलकर संपूर्ण प्रकृति को नष्ट कर रही है, जिसके प्रभाव से मनुष्य भी अछूता नहीं है इस ओर गहरी चिंता जताती हैं। 'सभ्यताओं के मरने की बारी' कविता के माध्यम से इन खतरों को समझा जा सकता है–"ऑक्सीजन की कमी से बहुत सी / नदियां मर गईं। पर किसी ने ध्यान नहीं / दिया, कि उनकी लाशें तैर रही हैं।/ मरे हुए पानी में अब भी।"11 आज बड़े बड़े कारखानों के अपशिष्ट रसायन हमारी नदियों को दूषित कर रहे हैं जो पर्यावरण के प्रति मनुष्य के उदासीन रवैये को दिखाता है। पर्यावरण को सुरक्षित रखना हम सबकी जिम्मेदारी है ताकि इस पृथ्वी पर जीवन बचा रहे– "नदी की लाश के ऊपर / आदमी की लाश डाल देने से / किसी के अपराध धुली से / धुल नहीं जाते।"11 जसिंता की कविताओं में आदिवासियों की प्रकृति जल जंगल जमीन के प्रति आस्था और अपनत्व के भाव को देखा जा सकता है उनकी कविताएं अपने समाज, प्रकृति और उनसे जुड़ी संवेदनाओं को चित्रित करती हैं – "क्यों महुए तोड़े नहीं जाते पेड़ से?" कविता में मां और कवयित्री के बीच का संवाद बेहद मार्मिक है– "मां तुम सारी रात, क्यों महुए के गिरने का इंतजार करती हो?/ क्यों नहीं पेड़ से ही सारा महुआ तोड़ लेती हो ?"/ उनकी बात सुनकर मां कहती है–/" पेड़ जब गुजर रहा हो / सारी रात प्रसव पीड़ा से / कोंचो कैसे डाल हिला दें ज़ोर से?/ बोलो कैसे तोड़ लें हम / जबरन महुआ किसी पेड़ से ? / हम सिर्फ इंतजार करते हैं / इसलिए कि उनसे प्यार करते हैं।"141 "ईश्वर और बाजार " जसिंता केरकेट्टा का 2022 में प्रकाशित नवीनतम काव्य संग्रह है। जहां धर्म सत्ता और राजसत्ता का एक ऐसा गठजोड़ दिखाया गया है जहां लोकतंत्र दम तोड़ देता है और सांस भी लेने के लिए बाजार पर निर्भर होना पड़ता है–" राजा ने खुद ही एक दिन / ईश्वर का कारिंदा घोषित कर दिया / और प्रजा की सारी संपत्ति को / ईश्वर के लिए / भव्य प्रार्थना स्थल बनाने में लगा दिया / उसके नाम पर बाजार सजा दिया/ भूखी असुरक्षित बेरोजगार पीढ़ियां / अपने पुरखों की संपत्ति / और समृद्धि वापस मांगते हुए / उन भव्य प्रार्थना स्थलों के दरवाजे पर/ सर झुकाए बैठी हैं "13 वर्तमान में यह इतना बड़ा सवाल और मुद्दा है कि इस पर सभा सेमिनार चिंतन मनन खूब किया जा सकता है। परंतु यहां तक आते–आते भारत भूमि के एक बड़े जनसमूह ने प्रतिरोध की जमीन भी खो दी है। जसिंता केरकेट्टा की कविताएं इसी खोई हुई जमीन की तलाश और पहचान करती हैं। इस समय देश विडंबना भरी परिस्थितियों से गुजर रहा है। देश का विकास तथाकथित धार्मिक और आध्यात्मिकता की दिशा में हो रहा है जबकि जनकल्याण रोजगार विकास और जीडीपी की दिशा में बहुत सारे सवाल मुंह बाए खड़े हैं। आदिवासी कविता विशेषकर जसिंता केरकेट्टा की कविताएं केवल आदिवासियों के मुद्दों तक सीमित नहीं रहती वह देश की स्थितियों का भी संज्ञान लेती है। अपनी कविता 'पूजा–स्थल की ओर ताकता देश ' में इस विडंबना को इस प्रकार बयान करती है –"जिस देश के भीतर देश/ भूख , गरीबी ,बीमारी से मरता है / और देश अपने बचे रहने के लिए/ किसी पूजा– स्थल की ओर ताकता है / तब असल में वह अपनी असाध्य बीमारी के / उस चरम पर होता है / जहां खुद को सबसे असहाय पाता है/ ऐसा असहाय देश / अपनी बीमारी का इलाज / अगर किसी पूजा –स्थल में ढूंढता है / तब उसे अपने ही हाथों / मरने से कौन बचा सकता है ?"14 क्या इसे न्यायसंगत करने की आवश्यकता है कि एक तरफ हजारों प्राथमिक विद्यालय बंद हो रहे हैं। पब्लिक फंडिड एजुकेशन खतरे में है। धन का अभाव जताया जा रहा है। दूसरी तरफ करोड़ों अरबों रुपए मंदिर और मूर्तियों पर अपव्यय

Scanned with CamScanner

किए जा रहे हैं। गांव कस्बों की सड़क बनने से महत्वपूर्ण धार्मिक स्थलों के कॉरिडोर बनना देश का विकास प्रचारित प्रसारित किया जा रहा है। धार्मिकता और वह भी बहुसंख्यक धार्मिकता के आधार पर तथाकथित देशभक्ति का जो वितान खड़ा किया गया है उसका दुष्परिणाम भी इस रूप में सामने आ रहा है कि अपने ' पड़ोस में देशद्रोही ढूंढते लोग ' स्पष्ट तौर पर दिखाई पड़ते हैं –' धर्म झूठी देशभक्ति/और राजनीति की धूर्तता के नशे में धुत/शाम शहर में कोई धुत निकलता है/जो अभी भी भारत-पाकिस्तान के/उसी विभाजन काल में खड़ा है/पाकिस्तान की सीमा दरअसल है किधर है/यह जानने की जहमत नहीं उठाता है/मोहल्ले से बाहर की यात्रा कभी की नहीं /इसलिए अपने मोहल्ले में ही पाकिस्तान ढूंढता है '15 वर्तमान राजनीति विभाजन की विभीषिका में भी वोट बैंक के अवसर तलाश रही है। इस देश की उपलब्धि गंगा जमुनी तहज़ीब है जब भी हम उसे अपनी संकीर्ण मानसिकता और निजी स्वार्थ के लिए नष्ट करेंगे वहीं राष्ट्रवाद का फलक संकुचित और क्षुद्र उद्देश्य की पूर्ति मात्र है और वह राष्ट्रप्रेम के असली मायने से कोसों दूर हो जाता है। ' प्रेम में डूबे लोगों का जात- धर्म ' नहीं होता और न ही जात धर्म में उनका विश्वास होता है। जेसिंता केरकेट्टा प्रेम के मूल अर्थ को देश के साथ जोड़कर देखती हैं। तब देश प्रेम का मूल भाव उभर कर आता है–' ठीक है , अभी आप देश के प्रेम में हैं/इससे बड़ी बात क्या है ?/पर मैं समझ नहीं पाती /प्रेम में कोई कैसे/रोज जात धर्म करते हुए उठता है/रोज जात धर्म करते हुए सोता है '16

जात धर्म और नफरत के कारण जिस तरह का राष्ट्रवाद बनता दिखाई पड़ता है वह बेहद खतरनाक है। छोटे लक्ष्यों सत्ता प्राप्ति को ही राजनीति तथा देश भक्ति मानने मनवाने वाले लोग इस भयानक सच को या तो समझ नहीं रहे या जानबूझकर अनजान बन रहे हैं। सत्ता वर्चस्व कायम रखकर सच को दबा देना चाहते हैं। केवल चार पंक्तियों में ही जसिंता केरकेट्टा 'राष्ट्रवाद' के वह खूनी अर्थ समझा देती हैं जो हमारे सामने खड़ा हुआ है –' जब मेरा पड़ोसी /मेरे खून का प्यासा हो गया /मैं समझ गया /राष्ट्रवाद आ गया '17 नफरत और द्वेष का यही नतीजा निकल कर आता है। तथाकथित राष्ट्रवाद अल्पसंख्यक, आदिवासी, दलित और स्त्रियों की ऐसी छवि सोशल मीडिया पर गढ़ी जाती रही है कि उसके बाद उग्र राष्ट्रवादी ही जनता को ठीक जान पड़ते हैं। आदिवासी समाज की मूल भावना दो पंक्तियों में दिखाई पड़ती है। वर्चस्ववादी सत्ता संस्कृति के दंश से पीड़ित आदिवासी समाज आज भी ' इंतजार' कर रहा है–'वे हमारे सभ्य होने के इंतजार में हैं /और हम उनके मनुष्य होने के '18 यह एक सनातन इंतजार है। दलित आदिवासी समाज आज भी इंतजार कर रहा है कि येन केन प्रकारेण सत्ता प्राप्त कर चुका वर्ग समता समानता बंधुत्व का पालन करेगा। संवैधानिक प्रावधानों का सम्मान करेगा। जब भी पीड़ित वर्ग शासन प्रशासन वर्चस्वशाली वर्ग की आलोचना करता है, कहीं उनको प्रतिक्रियावादी ठहरा दिया जाता है। कहीं नक्सली कह कर मार दिया जाता है। कहीं स्त्रियों को डायन बताकर हत्या कर दी जाती है और कहीं शास्त्रों का उल्लेख करते हुए श्रमशील समाज को पुन उन्हीं ब्राह्मणवादी सामंती व्यवस्था में धकेलने का प्रयास किया जाता है। जेसिंता केरकेट्टा की कविताएं इन सभी प्रयासों को बेनकाब करती हैं। हमारे समय और समाज की आंखें खोलती हैं। और वह भयानक सच जिसे कवियित्री महसूस करती है एकदम स्पष्ट रूप से देख रही है परंतु समाज उससे अनभिज्ञ है , उस खूनी सच को हमारे सामने लेकर आती हैं जैसिंता केरकेट्टा की कविताएं। यदि हम कवि की आंख से नहीं देखेंगे तो अपना शोषण और अपनी हत्या भी होते हुए नहीं देख पाएंगे।

संदर्भ ग्रंथ–(1)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –11 (2)जसिंता केरकेट्टा, जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृष्ठ –12 (3)जसिंता केरकेट्टा, जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृष्ठ –20 (4)जसिंता केरकेट्टा, जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृष्ठ –20 (5)जसिंता केरकेट्टा, जड़ों की जमीन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018, पृष्ठ –16 (6)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –37 (7)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –200 (8)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –113 (9)जसिंता केरकेट्टा, अंगोर, अनुज्ञा प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृष्ठ –148 (10) जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –36 (11) जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –36 (12)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –141 (13)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –11 (14)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –35 (15)जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ– 96 (16) जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –148 (17) जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –198 (18) जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ –200

Scanned with CamScanner

सहृदय

(भाषा, साहित्य, संस्कृति, संवेदना और शोध का त्रैमासिक)
(यू.जी.सी. की रैफर्ड पत्रिका सूची में शामिल)
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के
आंशिक वित्तीय सहयोग से प्रकाशित)

मानव-मूल्य और हिंदी साहित्य

(भाग-2)

वर्ष-12 जुलाई-दिसंबर 2020 विशेषांक : 45-46

संपादक : प्रो. पूरनचंद टंडन

सह-संपादक : डॉ. विनीता कुमारी

संपादन सहयोग

डॉ. रोशन लाल मीणा
डॉ. सुरेश चंद मीणा
डॉ. ममता चौरसिया
विवेक शर्मा
निधि मिश्रा
साक्षी जोशी

'नव उन्नयन'
'संकल्प', डी-67, शुभम् एन्क्लेव, पश्चिम विहार
नई दिल्ली-110063

विषय-क्रम

दो पेज का संपादकीय अभी आना वाकी है / **संपादकीय** -- (v)

साहित्य और मानव-मूल्य / **प्रो. पूरनचंद टंडन** -- 281

मानवतावाद की भारतीय परंपरा और द्विवेदी युग का काव्य / **डॉ. रामनारायण पटेल** -- 291

निर्गुण भक्तिकाव्य में मानव-मूल्य / **डॉ. करुणा शर्मा** -- 297

दिनकर के कुरुक्षेत्र में मानवीय मूल्य / **डॉ. सविता** -- 305

भक्तिकाव्य में मानव-मूल्य / **डॉ. पूनम यादव** -- 311

'अंधा युग' में नैतिक मूल्यों का विघटन / **डॉ. ललिता मीणा** -- 316

मानव-मूल्य और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया / **डॉ. चारू आर्या** -- 321

मानव-मूल्य और हिंदी साहित्य / **सविता रानी** -- 328

अंधा युग और मानव-मूल्य / **डॉ. मंजू रानी** -- 335

नीति काव्य में मानव-मूल्य / **देविंदर सिंह** -- 341

मूल्य क्षरण के युग में रीतिकालीन शृंगार-कविता में मानव-मूल्यों की प्रासंगिकता / **मीनाक्षी** -- 347

लोक-साहित्य में चित्रित मानव-मूल्य के विविध रूप / **डॉ. रामकिशोर यादव** -- 359

रीतिकालीन काव्य में मानव-मूल्य / **रेखा** -- 366

भक्तिकालीन कविता और मानव-मूल्य / **डॉ. संगीता कुमारी** -- 372

हिंदी नाट्य साहित्य में मानव-मूल्य और स्त्री-चिंतन / **बरखा** -- 376

मानव-मूल्य और हिंदी साहित्य / **डॉ. पूनम रानी** -- 381

हिंदी निवंध साहित्य में मानव-मूल्य / **प्रियंका चौहान** -- 391

विद्यासागर नौटियाल के कथा-साहित्य में मानवता और मानव-मूल्य / **कपिल सेमवाल** -- 396

'शाम की झिलमिल' उपन्यास में बदलते जीवन-मूल्य (वृद्धों के संदर्भ में) / **मुख्त्यार सिंह** -- 403

डॉ. रामनारायण पटेल

मानवतावाद की भारतीय परंपरा और द्विवेदी युग का काव्य

"यदि मैं जी सकूँ
किसी पीले पड़े मुख को कांतिमान वनाने के लिए और देने के लिए
किसी अश्रु-पूरित नयन को नई चमक,
या केवल दे सकूँ --
किसी व्यथित हृदय को आराम की एक धड़कन
या किसी राह चलते थकी आत्मा को प्रफुल्लित कर सकूँ
यदि मै दे सकूँ
सबल हाथ का सहारा गिरे को
या रक्षा कर पाऊँ अधिकार की
एक ईर्ष्यालु दवाव के विरोध में
तो मेरा जीवन भले ही यह रहित है
शायद उन अधिकांश चीजों से
जो प्रिय और सुंदर लगती हैं, हमें धरती पर
व्यर्थ नही रहेगा।"

-- डॉ. राधाकृष्णन (अनु.)

मानवतावाद का यह भाव भारतीय संस्कृति की पहचान है। हमारे यहाँ तो 'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म' का आदर्श रहा है। यही आदर्श मानवतावाद का मूल आधार है।

मानवतावाद सभी धर्मों व मानव जाति की सहृदयता का परिचायक है। यह सद्वृत्तियों की सत्ता व परहित की भावना को लेकर चलता है। यह प्रत्येक काल व परिस्थितियों में उन्नयन का भाव लिए रहता है। प्राचीन काल से लेकर अब तक इसे विविध रूप-रागों में देखा जा सकता है। ऋग्वेद में जो समानता और परस्पर प्रेम-भाव को प्रतिष्ठित किया गया था उसे बाद के ग्रंथों में अधिक स्पष्ट धरातल पर व्यक्त किया गया। जैसा कि 'अथर्ववेद' में कहा गया है --

समानी व आकूतिः समानी हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[1]

कैंपस संधान

न दैन्यम् न च पलायनम्।

वर्ष : 22 | अंक : 100 | पत्रकारिता पाठ्यक्रम : 2021-2022 | सितम्बर-अक्टूबर 2022 | सहयोग राशि : 10 | पृष्ठ : 8

संक्षिप्त खबरें

एक साथ दो कोर्स कर सकेंगे छात्र, कोर्स छोड़ने के बाद फिर उसी मे पढ़ने की छूट

[illegible]

'उड़ान' साहित्योत्सव का आयोजन

[illegible]

100 वां अंक

"मुझे यह बधाई संदेश देते हुए अत्यंत हर्ष और [illegible] का अनुभव हो रहा है कि 'कैंपस संधान' अपना 100 वाँ अंक पूर्ण करते हुए अपने सूत्र वाक्य 'न दैन्यम न च पलायनम' के आदर्श की [illegible] और [illegible] को स्थापित कर रहा है। यह सुखद संयोग ही है कि शताब्दीय संस्करण की इस मधुर बेला में दिल्ली विश्वविद्यालय भी अपने स्थापना की सौवीं वर्षगाँठ मना रहा है। इस अंक के डिजिटल माध्यम से पत्र के प्रकाशन के [illegible] अनंत शुभकामनाएं। विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए उन्हें इस पवित्र कार्य हेतु [illegible] देता हूं।

प्रो. [illegible] सिंह 'बैंसेन'
[illegible] प्रोफेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष
दिल्ली विश्वविद्यालय

कैंटीन बंद होने से नॉर्थ कैंपस के छात्र परेशान

स्टोरी हाइलाइट्स

- कोरोना काल से बंद पड़ी हुई आर्ट्स फैकल्टी की कैंटीन
- खाने-पीने के लिए छात्रों को जाना पड़ता है कैंपस से बाहर
- कई छात्र रहते है दिनभर भूखे, नहीं मिल रहा है हाइजीनिक खाना

[illegible]

कैंटीन बंद पड़ी है। जैसे अभी गर्मी का समय चल रहा है और जब हमें प्यास लगती है तो हमें पानी के लिए अपना काम छोड़कर दूसरे डिपार्टमेंट में जाना पड़ता है जो कि काफी दूर-दूर है।

हमें 50 मिनट का फ्री टाइम मिलता है उसके लिए हमें कैंटीन चाहिए जो कि बंद है तो टाइम में हमें इधर-उधर भटकना पड़ता है। तो टाइम में हमारा टाइम खराब जाता है और अलग से हम टाइम भी नहीं मिलता है।

उनका कहना है कि हमें इस बारे में कुछ जानकारी नहीं है और किससे बात करनी है इस बारे में भी हमें कोई आईडिया नहीं देता है। अगर हमें कोई ये भी बता दे की आप कैंटीन की समस्या को ले कर यहां जा कर बात कर लें तो हम वहां जा कर भी बात कर सकते हैं।

अगर ये कैंटीन खुल जाए तो हमारे लिए बहुत अच्छा होगा।

अंदर के पृष्ठ

- हॉस्टल न मिलने की समस्या से जूझ रहे छात्र .....
- कौशल को निखारने का माध्यम है कैंपस संधान ...
- स्वाध्याय-भारत मां के माथे की बिंदी है हिंदी...
- भारत की बेटियों का प्रतिनिधित्व करता है मिरांडा हाउस....
- मुगलों का आखिरी स्मारक है सफदरजंग का मकबरा....
- हिंदी को मिले राष्ट्र भाषा वाला सम्मान...
- डीयू के कॉलेजों में फ्लोरी लाइब्रेरी ऑन व्हील्स...

तीन साल से वीरान पड़ा हुआ है डीयू का सामुदायिक रेडियो

भारत भूषण

- [illegible] बार बंद होने से [illegible] से वंचित हो रहे छात्र
- अप्रैल 2019 के बाद नहीं दिया [illegible] को प्रशिक्षण
- छात्रों के लिए आयोजित किये जाते थे [illegible] सांस्कृतिक और [illegible] से जुड़े तमाम कार्यक्रम

[illegible] वर्ष 2007 में [illegible] दिल्ली विश्वविद्यालय सामुदायिक रेडियो स्टेशन पिछले [illegible] तीन सालों से बंद है। [illegible] छात्रों में निराशा का माहौल भी देखा जा रहा है। जबकि विश्वविद्यालय ने पहले घोषणा की थी कि शताब्दी वर्ष में अपनी कई पहलों के अंतर्गत दिल्ली विश्वविद्यालय सामुदायिक रेडियो (DUCR) को भी फिर से शुरू किया जाएगा। रेडियो स्टेशन न होने से कई छात्र जो रेडियो में [illegible] कहानी, नाट्य आदि [illegible] के लिए अभ्यास करते थे, वो सभी इससे वंचित हो गए हैं।

[illegible]

[illegible] ज्योति नहीं किया गया।

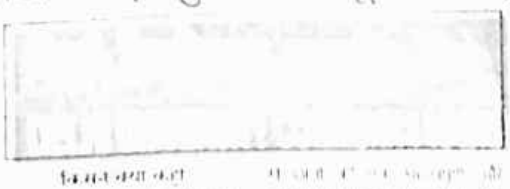

सामुदायिक रेडियो में अभ्यास करने वाले छात्रों से बातचीत की कहना है कि दिल्ली विश्वविद्यालय सामुदायिक रेडियो स्टेशन बंद होने [illegible]

[illegible] इतने पैसे नहीं है कि हम प्राइवेट संस्थानों में जाकर रेडियो की तकनीक को सीख सकें। हम सभी ने [illegible]

[illegible] ने बहुत कोशिश की कि रेडियो [illegible] पर उन्होंने कोई ठोस कदम नहीं उठाया।

[illegible] का कहना है कि दिल्ली विश्वविद्यालय का सामुदायिक रेडियो [illegible] रूप से सक्षम छात्रों के लिए ही नहीं बल्कि शारीरिक रूप से दिव्यांग छात्रों के लिए भी एक सुनहरे अवसर की तरह था। मैं कई दृष्टि बाधित छात्रों को भी डीयूसीआर में भविष्य के लिए प्रयासरत देखा है।

कैंपस संधान के 99 वें संस्करण का विमोचन

भीम तिवारी

दिल्ली विश्वविद्यालय दक्षिणी परिसर से हिन्दी पत्रकारिता के छात्रों द्वारा निकाले जाने वाला कैंपस संधान समाचार पत्र के 99 वें विमोचन समारोह में मुख्य अतिथि [illegible] के हिन्दी विभाग अध्यक्ष वरिष्ठ प्रोफेसर श्यौराज सिंह बैचेन ने कहा कि पत्रकार समाज के सजग प्रहरी होते है और पत्रकारिता से देश की व्यवस्था को सुधारा जा सकता है। हिन्दी पत्रकारिता ने विद्यार्थियों को रोजगार के नये अवसर प्रदान किये है। कैंपस संधान के जरिये छात्र बहुत कुछ सीख रहे है। विमोचन समारोह में प्रो मोहन, प्रो मंजू मुकुल कांबले, प्रो स्नेह लता नेगी, अखिलेश चंद्र सहित पत्रकारिता के तमाम छात्र उपस्थित रहे।

हिंदी का राष्ट्रीय संदर्भ

प्रो. रामनारायण पटेल

मित्रो ! यह महीना भारतवासियों के लिए उत्सव का महीना है और इस अवसर पर हमें हिंदी के बहाने अपने आप को देखने-समझने की आवश्यकता है । हम यह भली-भांति जानते है कि किसी भी राष्ट्र के मूल आधार होते है वहाँ की भाषा और संस्कृति। इसीलिए भाषा के संदर्भ में और राष्ट्रीय एकता में निज सुख, निज स्वार्थ और निज हित के लिए कोई स्थान नहीं होता, स्वदेश प्रेम और स्व-भाषा की भावना ही प्रमुख होती है। यह बहुत सुखद बात है कि भारत जैसे विशाल देश मे अनेक संस्कृतियों, जातियों और सम्प्रदाय के होते हुए भी एकता है। यह इसकी अखंडता का प्रमाण है ।

हम यह जानते हैं कि हमारे यहाँ की सांस्कृतिक एकता, राजनीतिक एकता से बहुत प्राचीन है। वैदिक ऋचा के ऋत्विज, यज्ञ के आरम्भ में ही- 'इडा, सरस्वती, मही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः'- कहकर तीन देवियों का आह्वान किया करते थे । 'मही' यानी भूमि, 'सरस्वती' यानी भाषा (वाणी) की देवी और 'इडा' यानी बौद्धिक संस्कृति । भूमि, भाषा और संस्कृति- ये देश की स्वतंत्रता और अखण्डता के अनिवार्य अंग हैं । और भाषा, देश की एकता और संस्कृति के। आशय यह कि राष्ट्र की अक्षुण्ण एकसूत्रता के लिए व्यापक रूप से स्वीकृत एक भाषा की अनिवार्यता होती है । भाषा जन और जन-संस्कृति के बीच एक सेतु का कार्य करती है । यह केवल भावों का सम्प्रेषण ही नहीं करती, चरित्र का उत्थान भी करती है- व्यक्ति-चरित्र का भी और राष्ट्र-चरित्र का भी। इस प्रकार भाषा व्यक्ति और समाज को जोड़ती भी है और उसे धारण भी करती है । प्राचीन काल में यह कार्य संस्कृत कर रही थी, आज उसकी उत्तराधिकारिणी हिंदी कर रही है। आज जिसे हम हिंदी कहते है, वह एक सार्वदेशिक मानक भाषा है। यह अपना मानकता और रूप निर्मिति की दृष्टि से उदार तो है ही, इसमें विभिन्न भू-भागों की जन-आकांक्षा और जन-अभिव्यक्ति को सवहन करने की शक्तियां है। अतः हिंदी के राष्ट्रीय संदर्भ को समझने के लिए हमें प्राचीन और आधुनिककाल की धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक और साहित्यिक परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए । हम जानते है कि 8 वीं शताब्दी में हुए धार्मिक-सांस्कृतिक आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिंदी का जन्म हुआ । इस समय संत-भक्त दूर-दराज के क्षेत्रों में घूम-घूम कर अपने धर्म और विचारों का प्रचार किया करते थे । हिंदी तब देशीय भाषा थी, फिर भी उसमें सर्वजन सुलभता और सर्वजन-बोधगम्यता थी। अपने इन्हीं गुणों के कारण बाद में यह राजनीतिक आन्दोलनों में और आर्थिक मामलों में एकता और अभिव्यक्ति की भाषा बनी । 19 वीं शताब्दी तक आते-आते इसका स्वरूप बहुत कुछ बदला। नवजागरण के पुरस्कर्ताओं और समाज सुधारकों के साथ-साथ साहित्यकारों और पत्रकारों ने हिंदी की सर्वव्यापी महत्ता को समझा । भारतेंदु ने यह घोषणा की, कि- 'परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो, अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।' उनकी यह प्रसिद्ध पंक्तियाँ- 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल, बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल' में भाषाई एकता के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता का भाव भी छिपा हुआ था । इस समय राष्ट्र प्रेमियों ने माना कि जब तक समस्त भारतवासियों की एक भाषा नहीं होगी और स्वदेशी वस्तु और संस्कृति को वे नहीं अपनाएंगे, तब तक न समाज की प्रगति होगी, न देश की, और न ही एकता का भाव आएगा । इसीलिए उन्होंने शिक्षित वर्ग को साधारण जनता से एकता कायम करने की सीख दी और हिन्दुओं और मुसलमानों को परस्पर भेद-भाव भुलाकर देशोद्धार के लिए एक होने का सन्देश भी दिया। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'हिंदी-हिन्दू-हिंदुस्तान' का नारा बुलंद किया ।

दूसरी बात यह कि इस समय हम पाश्चात्य सभ्यता और साहित्य के सम्पर्क में आये। इससे एक नवीन चेतना का जन्म हुआ । इस नवीन चेतना के फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक- सभी क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और जनसभाओं और आन्दोलनों के माध्यम से अशिक्षित और सुप्त जनता को जगाया गया । ध्यान दीजिये, यह समय अंग्रेजों के अत्याचार और अनाचार का था। वे सामाजिक-सांस्कृतिक एकता के साथ-साथ भाषाई एकता को भी तोड़ रहे थे । इन विषम परिस्थितियों में भारतवासियों का एक होना आवश्यक था- 'मिलें सब भारत सन्तान, एक तन-मन प्राण, गाओ भारत यशगान' तथा 'आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवें मरें' (बालमुकुन्द गुप्त)- जैसे स्वर बुलन्द किये जा रहे थे और स्वदेशी भाषा और स्वदेशी वस्तु अपनाने का आग्रह किया जा रहा था- 'भजसि मन हिंदी-हिन्दू-हिन्द / जननी सदृश मातृभाषा है, कहिंा कोटिक विन्द' (गोपालशरण सिंह) ।

मित्रो! भारत सदा एक रहा है, एक रहेगा । यह मिट्टी का एक भू-खण्ड मात्र नहीं है, यह मानवता की भूमि है । यहाँ प्रेम और सौहार्द का पाठ पढ़ाया जाता है। इस पवित्र भूमि में कितने विरोधी तत्त्व आये, खाई पैदा की, भ्रम उत्पन्न किया, भाव और भाषा के स्तर पर भी हमें तोड़ने का प्रयास किया, पर हमारी एकता बनी रही । डॉ. रामविलास शर्मा ने इस संबंध में उचित ही कहा है कि 'भारत विभिन्न जातियों द्वारा निर्मित संघ नहीं है, वह ऐतिहासिक विकास-क्रम में सुगठित एक राष्ट्र है । भारतीय जनता में राष्ट्रीय एकता की भावना विश्व-इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है ।'

मत-सम्मत

प्रस्तुति : रुखसाना, सोनाली

युवाओं में दिखी चिंता की लहर

शैक्षणिक संस्थानों में रोजगार के अवसर और प्लेसमेंट की चिंता को लेकर छात्रों के मत -

परवेज़ अहमद (एम.ए हिंदी) जामिया मिल्लिया इस्लामिया

सभी शैक्षणिक संस्थानों में लगभग रोजगार और प्लेसमेंट को लेकर स्थिति चिंताजनक है। अधिकांश विद्यार्थी को रोजगार के अवसर नहीं मिल पाते और जिनको प्लेसमेंट मिल भी रही है उन्हें ना तो योग्यतानुसार काम मिलता है और न ही वेतन।

मीडिया के विद्यार्थियों की स्थिति और चिंताजनक है। कुछ शैक्षिण संस्थाओं की खराब नीतियों, अधिकारियों में इच्छाशक्ति की कमी और उद्योग जगत से न्यूनतम संपर्क के चलते स्थिति बहुत चिंताजनक है।

ज्योति राठौर (एम. ए सामाजिक विज्ञान की छात्रा)

लंबे समय से विद्यालयो मे शिक्षा के साथ-साथ व्यवसायिक शिक्षा की माग भी चली आ रही है। व्यवसायिक शिक्षा व्यक्ति को किसी कार्य या व्यवसाय से सम्बंधित तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करती है। जिससे व्यक्ति उस कार्य या व्यवसाय से अपनी जीविका का उपार्जन कर सके और सरकारी नौकरियों पर कम से कम निर्भर हो सके। हर शैक्षणिक संस्थानों मे बेरोजगारी को ध्यान मे रखते हुए प्राइवेट जॉब के लिए भी प्रशिक्षण के लिए अलग से तैयारी करवानी चाहिए ताकि विद्यार्थी का भविष्य अंधकार में धूमिल न हो।

नबी हसन पी.एच.डी. स्कॉलर (जामिया मिलिया इस्लामिया)

यदि कुछ शिक्षण संस्थानों और गिने-चुने विद्यार्थियों को छोड़ दिया जाए तो रोजगार और प्लेसमेंट को लेकर स्थिति बहुत बेहतर नहीं है। बहुत से संस्थान अभी भी कोरोना को ही जिम्मेदार ठहरा रहे है। शिक्षण संस्थानों मे प्लेसमेंट के अवसर बहुत ही कम विद्यार्थियों को मिल पाते है। लाखों रुपये की फीस देने वाले जिन विद्यार्थियों को प्लेसमेंट मिलती भी है, उनकी सैलेरी बहुत कम होती है वो खुद जॉब छोड़ देते है।

अनुज दिलीप वाजपेई (एम. ए. इन डिजास्टर स्टडीज जे.एन.यू)

इस विषय को लेकर मेरा मानना है कि हमें दो बिंदुओं पर जोर देना होगा। सर्वप्रथम, कोरोना महामारी के कारण से अर्थव्यवस्था में जो मन्दी

दिल्ली विश्वविद्यालय मे परास्नातक हिंदी के छात्र अमन प्रताप सिंह

आज के दौर मे जिस रफ्तार से समाज मे बेरोजगारी बढ़ी है उसके अनेक कारणों मे से कहीं न कहीं शिक्षा व्यवस्था की बदहाली जिम्मेदार है। न तो विद्यार्थियों को उस स्तर की

7

ISSN No. : 2395-4000

प्रयाग-पथ

अक्टूबर-2019

राजेन्द्र कुमार

शब्द और कर्म की समन्विति

अनुक्रम

सम्पादक की ओर से : साहित्य का एक सत्याग्रही व्यक्तित्व

आत्मकथ्य : राजेन्द्र कुमार-1

संग-प्रसंग

लघुता में अवकाश : विश्वनाथ त्रिपाठी-14/कवि-आलोचक राजेन्द्र कुमार : गोपेश्वर सिंह-17

कविता-कोठार

कविता का एक और चेहरा : विजय बहादुर सिंह-20/जिन्हें अभी पथ मिला नहीं उन पावों की आहट हैं राजेन्द्र कुमार : हरीशचंद्र पांडेय-22/कवि के सरोकार और लोहा-लक्कड़ : ओम निश्चल-27/ पत्थर सिर्फ़ पत्थर नहीं, हम सबकी जड़ हो गई ज़बान है-वैचारिक धरातल पर अडिग कविता की सुंदर कविताएँ : लाल्टू-30/जागे अरु रोवै : पी. रवि-33/दृश्य और दृष्टि से संवाद : राजेन्द्र कुमार की कविताएँ : दामोदर खड़से-42/ईमानदार अभिव्यक्ति की कविताएं : अरुण होता-44/अन्तर्दृष्टि की चिंगारियाँ : भरत प्रसाद-49/राजेन्द्र कुमार की कविताएँ : कुछ नोट्स : बसंत त्रिपाठी-53/फ़िर भी यह विषाद निरन्तर क्यों बना हुआ है? : संतोष चतुर्वेदी-59/राजेन्द्र कुमार की कविताओं से गुज़रते हुए : कौशल किशोर-64/साहित्य और रचनात्मकता का अंतर्द्वंद्व : जीतेन्द्र गुप्ता-70/फासीवादी राष्ट्रवाद को ध्वस्त करती कविता : आईना द्रोह : विंध्याचल-76/कम से कम इंसान तो बना ही रह सकूँगा : अवनीश यादव-83/प्रेमगीत के आलोक में जीवनानुभव : नीलाभ कुमार-87

लोचन-आलोचन

बौद्धिक और आलोचक होने की तमीज़ : नित्यानंद तिवारी-92/वैचारिक प्रखरता, सहजता और आत्मीयता की यह त्रिवेणी : विजय कुमार-95/प्रतिबद्धता का विवेक : अवधेश प्रधान-100/राजेन्द्र कुमार का आलोचना-कर्म : मधुरेश-105/यथार्थ और कथार्थ का अंतःसंबंध : जवरीमल्ल पारख-112/आन्दोलनधर्मी आलोचक : राजेन्द्र कुमार : कमलानन्द झा-119/युगबोध की आलोचना भूमि और राजेन्द्र कुमार : विनोद शाही-128/सामाजिक बोध की पहचान और आलोचक राजेन्द्र कुमार : अरूण कुमार-136/आलोचक की प्रतिज्ञाएँ : अनिल राय-141/आलोचक राजेन्द्र कुमार : कुशल की अपेक्षा ईमानदार : विनोद तिवारी-146/राजेन्द्र कुमार होने का अभिप्राय : कुमार वीरेन्द्र-155/राजेन्द्र कुमार की दृष्टि में 'निराला होने का अर्थ' : प्रभाकर सिंह-161/कथार्थ के रास्ते यथार्थ की परख : नीरज खरे-164/राजेन्द्र कुमार : आलोचकीय व्यक्तित्व : सरोज सिंह-169/साधारण में असाधारणता के द्रष्टा आलोचक : राजेन्द्र कुमार : महेन्द्र प्रसाद कुशवाहा-174/यथार्थ और कथार्थ के आलोचक राजेन्द्र कुमार : अर्जुन कुमार-183/मुक्ति-आकांक्षा के पक्षधर आलोचक : राजेन्द्र कुमार : मयंक भार्गव-189

शब्द-समय

समय को उसकी पीठ की तरफ से देखने की कवायद : मिथिलेश-196/अपने समय में होने का अर्थ : संजय गौतम-208

उत्तर कथा

कहानी का पारदर्शी संसार : रोहिणी अग्रवाल-211

रंग-प्रसंग

बैठा हूँ इंतज़ार में : अनिल रंजन भौमिक-218

राजेन्द्र कुमार : एक परिचय-222

आलोचक राजेंद्र कुमार : कुशल की अपेक्षा ईमानदार

विनोद तिवारी

राजेंद्र कुमार बतौर लेखक एक कवि के रूप में अपने को प्रस्तुत करते हैं जबकि हिंदी जगत में उनकी पहचान एक कवि के रूप में नहीं बल्कि एक आलोचक के रूप में ही मान्य है – आलोचक राजेंद्र कुमार। कवि-आलोचक वाला प्रचलित विशेषण भी उनके साथ नहीं लगाया जाता, जैसा कि कई हिंदी कवियों के साथ लगाया जाता है। राजेंद्र कुमार अपने 'आलोचक होने का दम नहीं भरते'। जबकि, हिंदी कविता में बतौर कवि उनकी गिनती आलोचक-गण कहीं नहीं करते। एक लेखक के लिए ही नहीं उसके पाठकों के लिए भी यह कैसा सुखद अंतर्विरोध है। एक लेखक अत्यंत ही आग्रह के साथ जब यह कहता है कि 'आलोचना मेरे लेखन के केंद्र में कभी नहीं रही', 'मेरी सबसे आत्मीय विधा कविता ही रही' तो उसके इस आत्मस्वीकार को उसकी सहजता और आलोचना-कर्म के लिए ईमानदार प्रस्तावना के रूप में ही देखा जाना चाहिए – 'कवि न होहिं नहिं चतुर कहावऊँ' की तरह। यह साल राजेंद्र सर के 75 वर्ष पूरे होने का साल है। जसम की ओर से आलोचक प्रणय कृष्ण ने राजेंद्र कुमार पर बहुत ही आत्मीय गद्य में एक संस्मरण लिखा है – 'राजेंद्र कुमार : जैसा मैंने देखा'। इस संस्मरण में व्यक्त भावनाएँ प्रणय जी की मार्फत, राजेंद्र जी के लिए उनके सभी शिष्यों की भावनाएँ हैं। यह सच है कि उनका अलंकरण मुश्किल है, उनके बारे में अतिशयोक्ति संभव नहीं। प्रणय जी से बेहतर, उतने भावनात्मक और आत्मीय तरलता के साथ हममें से कोई दूसरा शिष्य 'राजेंद्र सर' की छवि को नक्श नहीं कर सकता।

यह लेख, राजेंद्र कुमार की आलोचना-दृष्टि को पढ़ने-समझने के प्रयास में लिखा गया है। राजेंद्र कुमार जब यह कहते हैं कि आलोचना उनके लेखन के केंद्र में कभी नहीं रही तो वे अपनी रक्षा नहीं कर रहे होते हैं बल्कि पूरी ईमानदारी और साफगोई के साथ आलोचना के महत्व और उसकी ज़िम्मेदारी की रक्षा की चिंता कर रहे होते हैं। यह पारदर्शी ईमानदारी और यह निर्भ्रांत साफ़गोई ही राजेंद्र कुमार की आलोचना की विशिष्टता है। यह सच है कि, राजेंद्र कुमार ने एक 'प्रोजेक्ट' लेकर संपूर्णता के साथ आलोचनात्मक लेखन का कार्य नहीं किया। समय-समय पर मित्रों, संपादकों और अध्यापक होने के नाते कभी-कभी छात्रों के लिए छिटपुट लेखन किया है। इसके अलावा 'अभिप्राय' पत्रिका के वे संपादकीय हैं, जो अपने समय की गूँजों-अनुगूँजों से वाबस्ता हैं। जब मेरे जैसा पाठक इन लेखों से होकर गुजरता है तो पाता है कि अपने समय के साथ एक अध्यापक, एक आलोचक, एक संपादक किस बौद्धिक सजगता के साथ संवाद बनाए हुए है। आज ये सभी लेख और संपादकीय, 'प्रतिबद्धता के

ISSN : 2231-5187

साखी

प्रेमचंद साहित्य संस्थान का त्रैमासिक

श्रद्धांजलि : केदारनाथ सिंह

क्या आप विश्वास करेंगे	पंकज चतुर्वेदी	247
कविता में कहानी	सूर्यनाथ सिंह	263
केदारनाथ सिंह की कविताओं में दांपत्य प्रेम	राजेश मल्ल	269
क्रूरता के अँधेरे में मनुष्यता का उजाला अर्थात्		
केदारनाथ सिंह का काव्य-वैभव	जितेंद्र श्रीवास्तव	275
हिंदी की 'सोनारतरी'	मधुप कुमार	297
केदारनाथ सिंह की कविता और संप्रेषणीयता के माध्यम	अभिज्ञात	320
केदारनाथ सिंह की परवर्ती कविताएँ	ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह	338
उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ	शिव प्रकाश दास	352
अब जाओ मेरी कविताओं सामना करो तुम दुनिया का	सुनील कुमार पाठक	360
दुनिया को हाथ की तरह गरम और सुंदर होना चाहिए...	अविचल गौतम	369
केदारनाथ सिंह के काव्य-चेतना का स्वरूप	संजय कुमार	374

कविताओं पर एकाग्र

झरने लगे नीम के पत्ते	प्रयाग शुक्ल	385
कविता की ओट में 'बाघ'	उदय प्रकाश	390
'बाघ' के बहाने समाजवाद की त्रासदी का आख्यान	जगदीश्वर चतुर्वेदी	404
खून : रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं काइल	राजेश जोशी	417
बनारस : अद्‌भुत है इसकी बनावट	अवधेश प्रधान	419
सृष्टि पर पहरा	मदन कश्यप	424
त्रिनिदाद : स्वयं में आप्रवासी	रघुवंश मणि	427
बुद्ध की मुस्कान : भाषा का ध्वंस माने संस्कृति का ध्वंस	ए. अरविंदाक्षन	432
तत्सम के पड़ोस में तद्‌भव का दुःख	विनोद तिवारी	436
पानी की प्रार्थना	अमिताभ राय	447
शहर एक स्त्री की अनुपस्थिति का दूसरा नाम है	सियाराम शर्मा	454
पांडुलिपियाँ : सभ्यता से संवाद	प्रभाकर सिंह	461
जे.एन.यू. में हिंदी	निशांत	465
बर्लिन की टूटी दीवार को देखकर	दीपक रूहानी	471
जैविक संबद्धता की खोज है माँझी का पुल	आशीष मिश्र	474
स्मृतियों में टँगा हुआ घर 'मंच और मचान'	रुद्र प्रताप सिंह	479
'बुद्ध से' संवाद	विहाग वैभव	483

कवि का गद्य

केदारनाथ सिंह का आलोचनात्मक गद्य	रामचंद्र तिवारी	486
कवि के विचार-गद्य में समय और साहित्य	अनिल राय	491
कविता की अदालत में खड़ा एक कवि	कमलानंद झा	497
केदारनाथ सिंह की आलोचना दृष्टि	तरुण कुमार	503

तत्सम के पड़ोस में तद्भव का दुःख

(केदारनाथ सिंह की चार कविताएँ : कुदाल, फसल, दाने और रोटी)

◆

विनोद तिवारी

छायावाद के विभूतिमय संसार, प्रयोगवाद के प्रयोग और अन्वेषण की तथाकथित नवता, प्रगतिवादी-यथार्थवादी रेटॉरिक, नई कविता के झिलमिल प्रभामंडल और अकविता के बोहेमियन मिजाज से मुक्त होकर हिंदी कविता जिस नई काव्यभाषा और नये मुहावरे के साथ आठवें-नवें दशक में सामने आती है उसे एक शाश्वत नाम दे दिया जाता है—समकालीन कविता, जो आज तक चल रहा है। 'तीसरा सप्तक' (1959) और 'अभी बिल्कुल अभी' (1960) से एक कवि के रूप में केदारनाथ सिंह की पहचान बन चुकी थी। पर, दो दशकों के लंबे विराम के बाद वे 'जमीन पक रही है' (1980) की पुख्ता जमीन के साथ 'समकालीन कविता' में वापसी करते हैं और 'समकालीन' बने रहते हैं। पर उनके इस समकालीन बने रहने पर भी कविता की प्रस्थान भूमि पर ही अभी चक्कर काटते एक आलोचक का कटाक्ष देखने लायक है—'केदार जी छवियाँ सुंदर गढ़ते हैं लेकिन गढ़ने की कला प्रायः आधुनिकता के पुराने नुस्खों वाली होती है। अमूर्तन चातुर्य के भीतर लोक का चित्रण—जैसे राजा की फुलवारी। बहरहाल, केदारनाथ सिंह की सबसे बड़ी सामर्थ्य समकालीन बने रहने में है।' आधुनिकता के पुराने नुस्खे या आधुनिकतवाद के खैर, नुस्खे व पथ्य तो पुराने और आजमाये हुए ही होते हैं। जो नया होगा वह नुस्खा कैसे होगा? नये का अन्वेषण और प्रयोग तो प्रयोगवादी कर चुके थे। इसलिए 'समकालीन' बने रहने की सामर्थ्य या कोशिश की भंगिमा में जो व्यंग्य है वह साफ है। किसी तरह से 'समय' में मौजूदगी 'समकालीनता' नहीं। दूधनाथ सिंह का 'छायावाद' के बाद के पंत जी के बारे में लिखा हुआ एक कथन है—'एक लेखक समय के समग्र शिल्प में जीवित रहता है उसके किसी एक भाग में नहीं। जो लेखक समय के समग्र शिल्प में जीवित नहीं रहता उसकी विकलांगता निश्चित है।' मुझे लगता है केदारनाथ सिंह ने जब तक लेखन किया वे 'समय के समग्र शिल्प में' उपस्थित रहे।

अंक : 60

आलोचना

त्रैमासिक

नामवर सिंह
(1926-2019)

आलोचना 60
त्रैमासिक

सम्पादकीय

पार्टीशन जारी है... **संजीव कुमार** 5

विभाजन की कविताएँ

• अमितोज 11 • जोगा सिंह 12 • सुरजीत पातर 13 • अहमद राही 14 • अहमद सलीम 15
• सरवण मिन्हास 15 • निरुपमा दत्त 16 • अमृता प्रीतम 16 • अहमद सलीम 17
• कुमार विकल 18 • गुलज़ार 20 • साहिर लुधियानवी 20 • अहमद नदीम कासमी 21

इतिहास

दो-राष्ट्र सिद्धांत और मुसलमान : सन्दर्भ-बिहार : **मोहम्मद सज्जाद** 24
पूरब में विभाजन : महा-आख्यान के पन्ने : **गोपाल प्रधान** 32
संविधान ही धर्म की रक्षा करता है : डॉ. भीमराव आंबेडकर और मुस्लिम प्रश्न : **रमाशंकर सिंह** 39
क्या लिखूँ, क्या याद करूँ? : विभाजनकालीन हिंदी पत्रकारिता के कुछ आदर्श
और कुछ समस्याएँ : **गौतम चौबे** 44

साहित्य

लाहौर, दिल्ली और आज़ादी का कड़वा सच : **वसुधा डालमिया** 51
विभाजन पर चार उपन्यासों के बहाने कुछ बातें : **प्रियंवद** 73
राही मासूम रज़ा : हमारे सेकुलर विधान की एक जीती-जागती अलामत : **विनोद तिवारी** 83
सआदत हसन मंटो : अपने समय का एक तर्कशील गवाह : **आयेशा जलाल** 94

राही मासूम रज़ा : हमारे सेकुलर विधान की एक जीती-जागती अलामत

विनोद तिवारी

"जो लोग इतिहास, राजनीति और समाज विज्ञान के विद्यार्थी नहीं हैं, जिस सामान्य पाठक को सांप्रदायिकता के सैद्धान्तिक विचार और धारणा की कोई समझ नहीं है, वह राही मासूम रज़ा के उपन्यास पढ़कर यह समझ विकसित कर सकता है।"

दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एसोसिएट प्रोफ़ेसर, प्रतिष्ठित आलोचक और *पक्षधर* पत्रिका के सम्पादक।

सम्पर्क : tiwarivinod4@gmail.com

'नफ़रत!

शक!

डर!

इन्हीं तीन डोंगियों पर हम आज की नदी पार कर रहे हैं। यही तीन शब्द बोये और काटे जा रहे हैं। यही शब्द दूध बनकर माँओं की छातियों से बच्चों के हलक में उतर रहे हैं। दिलों के बंद किवाड़ों की दराजों में यही तीन शब्द झांक रहे हैं। आवारा रूहों की तरह ये तीन शब्द आँगनों पर मँडरा रहे हैं, चमगादड़ों की तरह पर फड़फड़ा रहे हैं और रात के सन्नाटे में उल्लुओं की तरह बोल रहे हैं। कुटनियों की तरह लगाई-बुझाई कर रहे हैं और गुंडों की तरह ख्वाबों की कुँवारियों को छेड़ रहे हैं और भरे रास्तों से उन्हें उठाए लिए जा रहे हैं। तीन शब्द! नफ़रत, शक, डर। तीन राक्षस।'

हिंदुस्तान के आज के हालात की शिनाख़्त करते दर्द, उदासी और हताशा के साथ भरे हुए दिल से आज से 50-60 साल पहले कहे गए ये अल्फ़ाज़ राही मासूम रज़ा के हैं। वही गंगौली वाले राही मासूम रज़ा, जिन्होंने सदा से घुल-मिलकर रहने वाले, एक-दूसरे की ख़ुशी और ग़म में शरीक होकर सुख और दुख बाँटने वाले दो समुदायों के परस्पर प्रेम को अपने गाँव गंगौली में जिया था। जो यह मानते थे कि क़ौम का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता है; हिंदुस्तान का हर नागरिक हिन्दुस्तानी है, वह चाहे हिंदू हो या सिख, चाहे ईसाई हो या मुसलमान या ब्रह्मोसमाजी। क़ौमें देशों से बनती हैं, धर्मों से नहीं। धर्म अपनी सीमाएँ पार करते हैं, क़ौमें अपनी ही सीमा में रहती हैं। गंगौली में एक छोटी-सी घटना और उसके तात्कालिक तनाव को महसूस करते हुए वे तड़प उठते हैं : 'इधर कुछ दिनों से गंगौली में गंगौली वालों की संख्या कम होती जा रही है, सुन्नियों, शीओं और हिंदुओं की संख्या बढ़ती जा रही है।'[2] आज जिस तरह से हिंदुस्तान का माहौल बना दिया गया है और यहाँ रहने वाले लोगों को जिस तरह से और अधिक हिंदू, और अधिक मुसलमान या और अधिक ईसाई बना दिया गया है, वह अत्यंत दुःखद और इस देश के अमन-चैन में ज़हर घोलने जैसा है। यह देखना चाहिए कि आज भारतीय मुसलमानों, ईसाइयों या अन्य अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों और दलित-दमित जातियों के दिलों में एतमाद की जगह ख़ौफ़ और गहरा शक क्यों है? क्यों आज मुसलमानों और ईसाइयों को अपने ही देश में सिर्फ़ एक मज़हब की नुमाइंदगी करनेवाले बाहरी लोगों की तरह देखा जा रहा